नये भारत की खोज

अनुक्रम

1. आत्मघाती पलायनवाद..2
2. वैज्ञानिक चिंतन की हवा..19
3. आत्मघाती परंपरावाद..37
4. असली और नकली का फर्क...52
5. आत्मघाती आदर्शवाद..71
6. हिंसक राजनीतिज्ञ..83
7. कुछ और...99
8. अच्छे लोग और अहित..120

नये भारत की खोज
पहला प्रवचन

आत्मघाती पलायनवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक अंधेरी रात में आकाश तारों से भरा था और एक ज्योतिषी आकाश की तरफ आंखें उठा कर तारों का अध्ययन कर रहा था। वह रास्ते पर चल भी रहा था और तारों का अध्ययन भी कर रहा था। रास्ता कब भटक गया, उसे पता नहीं, क्योंकि जिसकी आंख आकाश पर लगी हो, उसे जमीन के रास्तों के भटक जाने का पता नहीं चलता। पैर तो जमीन पर चलते हैं, और अगर आंखें आकाश को देखती हों तो पैर कहां चले जाएंगे, इसे पहले से निश्चित नहीं कहा जा सकता। वह रास्ते से भटक गया और रास्ते के किनारे एक कुएं में गिर पड़ा। जब कुएं में गिरा, तब उसे पता चला। आंखें तारे देखती रहीं और पैर कुएं में चले गए। वह बहुत चिल्लाया, अंधेरी रात थी, गांव दूर था। पास के एक खेत से एक बूढ़ी औरत ने आकर बामुश्किल उसे कुएं के बाहर निकाला। उस ज्योतिषी ने उस बुढ़िया के पैर छुए और कहाः मां, तूने मेरा जीवन बचाया, शायद तुझे पता नहीं मैं कौन हूं। मैं एक बहुत बड़ा ज्योतिषी हूं। और अगर तुझे आकाश के तारों के संबंध में कुछ भी समझना हो तो तू मेरे पास आ जाना। सारी दुनिया से बड़े-बड़े ज्योतिषी मेरे पास सीखने आते हैं। उनसे मैं बहुत रुपया फीस में लेता हूं, तुझे मैं मुफ्त में बता सकूंगा।
उस बूढ़ी औरत ने कहाः बेटे, मैं कभी तुम्हारे पास नहीं आऊंगी। क्योंकि जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखाई पड़ते, उसके आकाश के तारों के ज्ञान का कोई भरोसा नहीं है।
भारत की समस्याएं तो पृथ्वी की हैं और भारत की आंखें सदा से आकाश पर लगी रही हैं। भारत तारों का अध्ययन कर रहा है और जमीन पर उसके सारे रास्ते भटक गए हैं। और उस ज्योतिषी को तो पता भी चल गया कि कुएं में गिर पड़ा, भारत को अभी भी पता नहीं चल सका है कि हम हजारों साल से कुएं में ही पड़े हैं। लेकिन आंखें तो कुएं में से भी आकाश को देखती रह सकती हैं। आंखें आकाश के तारों की ही बात सोचती रहती हैं और जीवन हमारा कुएं में पड़ गया है। बल्कि कुआं हमें दिखाई न पड़े, इसलिए हम कुएं की तरफ देखते ही नहीं हैं, हम आकाश की तरफ ही देखते रहते हैं। कुएं की तकलीफ दिखाई न पड़े, इसलिए आकाश की तरफ देखते रहते हैं। और धीरे-धीरे हमने यह भूलने की कोशिश की है कि कुआं है भी! आचार्य शंकर जैसे लोगों ने यह समझाने की कोशिश की है कि यह सब संसार माया है। ये सब गड्ढे माया हैं, ये सारी समस्याएं माया हैं। जिन लोगों ने इस देश के जीवन की सारी स्थिति को माया कहा है उन्होंने समस्या को हल करने में कोई भी साथ नहीं दिया, समस्या को भुलाने में सहयोग दिया है। जीवन की समस्याएं बहुत वास्तविक हैं। आकाश के तारों से कम वास्तविक नहीं हैं जीवन के रास्ते, कुएं और गड्ढे। और आंखों से कम वास्तविक नहीं हैं पैर। आंखें तो सपना भी देखती हैं और झूठ में उतर जाती हैं, पैर कभी सपना नहीं देखते, और जब भी चलते हैं ठोस जमीन पर ही चलते हैं।
इस छोटी सी कहानी से मैं अपनी इन तीन दिनों की बात शुरू करना चाहता हूं। क्योंकि मेरे देखे समस्याएं संसार की हैं और भारत की जो प्रतिभा है, भारत की जो बुद्धिमत्ता है, वह मोक्ष की तरफ झुकी हुई है। समस्याएं शरीर की हैं और भारत की जो प्रतिभा है वह आत्मा से नीचे बात नहीं करती है। समस्याएं जीवन की हैं और भारत की प्रतिभा कहती है कि जीवन माया है, इल्यूजन है। समस्याएं यहां की हैं और भारत की प्रतिभा वहां दूर आकाश की तरफ देखती रहती है। इस भांति हमारी समस्याएं भी इकट्ठी होती गई हैं। हमने कोई समस्या हल नहीं की। और हमारी प्रतिभा भी विकसित होती गई है। ये दोनों अदभुत घटनाएं एक साथ घट गई हैं। प्रतिभा भी विकसित हुई है, हमने बुद्ध और महावीर जैसे प्रतिभाशाली लोग पैदा किए हैं। और भारत जैसा गरीब, भुखमरा और दीन-हीन देश भी पैदा किया है।
एक तरफ प्रतिभा भी पैदा होती चली गई, दूसरी तरफ हमारी समस्याएं भी इकट्ठी होती चली गईं। हमारी प्रतिभा और हमारी समस्याओं में कोई तालमेल भी

है। हमारी जिंदगी कहीं और है और हमारा मन कहीं और है। हमारा बुद्धिमान आदमी बातें कुछ और करता है, और जीता कहीं और है। हमारे जीने में और हमारे विचार में एक बुनियाद द्वैत, एक विरोध पैदा हो गया है। हमारा विचार एक तरफ चलता है, हमारा जीवन दूसरी तरफ चलता है। हमारा विचार और हमारा जीवन एक-दूसरे की तरफ पीठ किए हुए हैं। इसलिए विचार भी विकसित हो जाता है और जीवन अविकसित रह जाता है।
भारत की समस्याओं में पहली समस्या यही है कि हमारे विचार और हमारे जीवन में कोई तालमेल नहीं है। हमारा जीवन वैसा ही जीवन है, जैसा पृथ्वी पर किसी और का! लेकिन हमारे विचार जीवन के यथार्थ को छूने वाले नहीं हैं। और हम निरंतर उन लोगों से ही पूछते हैं समाधान, जो समस्याओं को ही इनकार करते हैं।
मैंने सुना है, न्यूयार्क में एक घुड़दौड़, एक रेस हो रही थी। पांच मित्र संयुक्त रूप से उस घुड़दौड़ में दांव लगाने के लिए गए हुए थे। उन पांचों मित्रों ने बैठ कर तय किया कि किस घोड़े पर दांव लगाया जाए? गागरिन नाम के घोड़े पर दांव लगाना है, यह उन्होंने तय किया, और अपने एक साथी को, बर्मन नाम के एक युवक को कहा कि वह जाकर पांचों की तरफ से दांव लगा आए। वह युवक गया। वह दांव लगा कर वापस लौटा। लेकिन उसने कहा कि मैं दांव तो गागरिन नाम के घोड़े पर लगाने गया था, लेकिन वहां मुझे एक आदमी मिल गया बंस्कीन और उसने कहा, पागल हुए हो! गागरिन आने वाला ही नहीं है! तू विक्टोरिया नाम की घोड़ी पर दांव लगा दे। तो मैं विक्टोरिया नाम की घोड़ी पर दांव लगा आया हूं। थोड़ी देर में पता चला¬गागरिन आ गया नंबर एक और विक्टोरिया नाम की घोड़ी का कोई पता नहीं चला। पांचों मित्रों ने सिर ठोक लिए।
फिर उन्होंने दूसरे दांव पर तय किया। अपोलो नाम के घोड़े पर लगाने के लिए फिर भेजा मित्र को। वह वापस लौटा और उसने कहा, मैं गया, बंस्कीन मुझे फिर दरवाजे पर मिल गया आफिस के और उसने कहा, पागल हो गए हो! अपोलो कभी आया ही नहीं, कभी आ भी नहीं सकता। ज्योतिषियों का कहना हैं कि जैड नाम का घोड़ा आने वाला है, तुम उस पर दांव लगा दो। मैं जैड पर ही दांव लगा आया हूं। थोड़ी देर बाद खबर आई, अपोलो नंबर एक आ गया है, जैड का कोई पता ही नहीं है। पांचों मित्रों ने सिर पीट लिए।
फिर उन्होंने तीसरी बार दांव लगाने उसी मित्र को भेजा। उसने लौट कर फिर आकर बताया कि बंस्कीन मिल गया था और उसने बताया है कि यह घोड़ा तो आने वाला नहीं है, मैं दूसरे घोड़े पर लगा आया हूं। ऐसे चार दांव वे हार गए और उनके सारे पैसे खत्म हो गए। और चारों बार उन्होंने जिस घोड़े को सोचा था, वह घोड़ा आया। लेकिन उस पर तो दांव नहीं लगाया गया था। फिर उन पांचों के पास इतने ही पैसे बचे थे कि उन्होंने कहा, अब तो अच्छा यही है कि जाकर तुम कुछ काजू खरीद लाओ, हम काजू खा लें और घर चल पड़ें। उस मित्र को भेजा। वहां से वह मूंगफली खरीद कर वापस लौटता था। उन्होंने कहाः मूंगफली खरीद लाए? उसने कहा, बंस्कीन मैट अगेन, वह बंस्कीन फिर मिल गया, उसने कहा, काजू! पागल हो गए हो! काजू खाने से आदमी बीमार पड़ जाता है। और मूंगफली में वे सभी चीजें हैं जो काजू में होती हैं। मूंगफली सस्ती मिलती है। तो मैं मूंगफली खरीद लाया हूं।
लेकिन एक बड़े मजे की बात है, पांचों बार उसे एक ही आदमी मिल गया और पांचों बार वह उसी की बात मानता गया और हर बार हारता चला गया। और फिर उसी की बात मानता चला गया और फिर हारता चला गया।
हमें उस आदमी पर हंसी आती है कि पागल था वह! लेकिन अगर हम भारत की पूरी कथा उठा कर देखें तो हम हैरान होंगे! जिन लोगों की बात हम मानते जाते हैं और दांव लगाते जाते हैं, हर दांव हारते जाते हैं। फिर उन्हीं के पास पूछने जाते हैं, फिर दांव हार जाते हैं। यह हजारों साल से चल रहा है। भारत अब तक कोई दांव जीता नहीं है, और भारत कभी दांव जीतेगा भी नहीं। क्योंकि वह बंस्कीन फिर मिल जाता है उसे दरवाजे पर। जिनसे हम पूछते हैं जीवन की समस्याओं के हल, वे लोग गलत हैं, क्योंकि वे वे लोग हैं, जो कहते हैं जीवन असार है। और जिन लोगों ने यह मान रखा हो कि जीवन असार है, वे जीवन की

समस्याओं के हल कैसे बता सकते हैं? जब जीवन असार है तो समस्याएं भी असार हो गईं। और असार समस्याओं के समाधान नहीं खोजने पड़ते हैं। उन समस्याओं के समाधान खोजने पड़ते हैं जो सार हों। और जब जीवन ही असार है तो इसकी कोई समस्या सार्थक नहीं है, सब व्यर्थ है। और भारत हजारों वर्ष से जीवन को माया कहने वाले लोग जीवन को व्यर्थ कहने वाले लोगों से, मोक्ष को सत्य कहने वाले लोग और पृथ्वी को असत्य कहने वाले लोगों से अपनी समस्याओं का समाधान मांग रहा है। हर बार दांव हार जाता है। और फिर हम उन्हीं के पास हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं समाधान मांगने के लिए। और कोई भी यह नहीं सोचता कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमने गलत दरवाजे पर खटखटाना शुरू किया है?
मेरी अपनी दृष्टि में हमारी पहली समस्या यही है कि हम गलत जगह समाधान खोज रहे हैं। जो लोग जीवन को यथार्थ नहीं मानते हैं, उनसे जीवन की कोई समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। जीवन की समस्याओं का समाधान वे लोग कर सकते हैं जो जीवन को यथार्थ मानते हैं, जो मानते हैं कि जीवन एक सत्य है। जब समस्या असत्य है तो समाधान की क्या जरूरत है?
एक आदमी को सपने में किसी ने गोली मार दी। वह आदमी जागा और वह आपसे पूछता है कि में अदालत में मुकदमा चलाऊं, सपने में एक आदमी ने मुझे गोली मार दी है? हम कहेंगे, तुम पागल हो, सपना झूठा है, और अदालत में मुकदमा चलाने की कोई भी जरूरत नहीं है। सपना ही झूठा है, तो सपने के भीतर जो गोली मारी गई है वह भी झूठी है, जिसने गोली मारी है वह भी झूठा है। वह सब झूठ है। भारत ने अपने समस्याओं का समाधान नहीं खोजा है, समस्याओं को इनकार करने की व्यवस्था खोजी है। और जो समाज समस्याओं को इनकार कर देता है, वह कभी हल नहीं कर पाता। बल्कि यह भी हो सकता है कि शायद हम हल नहीं कर पाते हैं इसलिए हमने इनकार करने की व्यवस्था खोज ली है। शायद हम हल नहीं कर सकते हैं, नहीं कर पाते हैं, नहीं सोच पाते हैं, कैसे हल करें? तो हम कहते हैं, यह समस्या ही नहीं है।
शुतुरमुर्ग रेत में मुंह गड़ा कर खड़ा हो जाता है, अगर दुश्मन उस पर हमला करे। रेत में मुंह गड़ाने से दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, तो शुतुरमुर्ग सोचता है, जो दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, वह नहीं है। जो दिखाई नहीं पड़ता, वह हो कैसे सकता है? लेकिन शुतुरमुर्ग के सिर खपा लेने से, रेत में आंख बंद कर लेने से दुश्मन मिटता नहीं है। बल्कि शुतुरमुर्ग आंख बंद कर लेने से और कमजोर हो जाता है। खुली आंख में बच भी सकता था, भाग भी सकता था, लड़ भी सकता था। लेकिन बंद आंख, शुतुरमुर्ग क्या करेगा? दुश्मन के हाथ में और भी खिलवाड़ हो जाता है। लेकिन शुतुरमुर्ग का लॉजिक यह है, तर्क यह है कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह नहीं है। वह दुश्मन को, दुश्मन से पैदा हुई स्थिति को हल करने में नहीं लगता, दुश्मन को भूलने में लग जाता है। आंख बंद करके भूल जाता है कि दुश्मन है।
भारत अपनी समस्याओं के प्रति एस्केपिस्ट है, पलायनवादी है। वह कहता है, समस्याएं हैं ही नहीं। संसार माया है। यह सब झूठ है, जो दिखाई पड़ रहा है। और सत्य? सत्य वह है, जो दिखाई नहीं पड़ रहा है। सत्य वह है, जो आकाश में है। सत्य वह है, जो मृत्यु के बाद है। सत्य परमात्मा है। और प्रकृति? प्रकृति बिल्कुल असत्य है। जब कि सचाई उलटी है, प्रकृति परिपूर्ण सत्य है। और अगर परमात्मा भी सत्य है, तो वह प्रकृति की ही गहराइयों में खोजने से उपलब्ध होगा, प्रकृति के विरोध में खोजने से नहीं। अगर परमात्मा भी सत्य है तो वह इसी जीवन की गहराइयों में मौजूद होगा, इस जीवन की दुश्मनी में किसी आकाश में नहीं। अगर परमात्मा सत्य है तो वह भी मेरे भीतर सत्य होगा और आपके भीतर सत्य होगा; पत्थर में सत्य होगा, पौधे में सत्य होगा। उसका सत्य भी जीवन को इनकार करने में सिद्ध नहीं हो सकता। लेकिन हमने एक होशियारी, एक चालाकी की बात की है। और वह चालाकी की बात यह है कि जीवन के पूरे के पूरे रूप को हमने कह दिया, असत्य है, माया है, इल्यूजन है। और जब सारा जीवन एक सपना है, तो समस्याओं को हल करने की जरूरत क्या है? समस्याएं हैं ही नहीं। जो हल करता है, वह पागल है। तो हिंदुस्तान में वे लोग बुद्धिमान हैं, जो हल नहीं करते और भाग जाते हैं। और वे पागल हैं, जो

जिंदगी में जूझते, हल करते हैं, वे नासमझ हैं, वे अज्ञानी हैं। ज्ञानी तो भाग जाता है।
हिंदुस्तान में ज्ञानी वह है, जो भाग जाता है और अज्ञानी वह है, जो जूझता है, लड़ता है, जिंदगी को बदलने की कोशिश करता है। अगर आप किसी बीमारी का इलाज कर रहे हैं तो पागल हैं, नासमझ हैं, अज्ञानी हैं। ज्ञानी तो कहता है, बीमारी है ही नहीं, क्योंकि शरीर ही असत्य है। अगर आप गरीबी को मिटाने की कोशिश कर रहे हैं तो आप अज्ञानी हैं। गरीबी है ही नहीं, आत्मा न गरीब होती है, न अमीर होती है। बाहर जो दिखाई पड़ रहा है, वह सब झूठ है, एक सपना है। न कोई अमीर है, न कोई गरीब है। वह भीतर जो आत्मा है, वह न अमीर है, न वह गरीब है। इसलिए हिंदुस्तान हजारों साल से गरीब है। और गरीब रहेगा, जब तक उसको बंस्कीन मिलता रहेगा। जब तक इन लोगों से वह जाकर पूछता रहेगा कि हम क्या समाधान करें? वे कह देंगे कि जिंदगी तो झूठ है। इसलिए हिंदुस्तान हजारों साल से गरीब रहने के बाद भी गरीबी को दूर नहीं कर पाया। और न ही दूर कर पाएगा। क्योंकि गरीबी को कौन दूर करेगा? बीमारी को कौन दूर करेगा? जिंदगी में इतने दुख हैं, इतना कलह है, इतनी कांफ्लिक्ट हैं, इतना संघर्ष है, इतनी कुरूपता है, सारा जीवन एक नरक हो गई है। इस नरक को कौन बदलेगा? इस नरक को वे लोग ही बदल सकते हैं, जो इस नरक को यथार्थ मानते हों। यथार्थ मानते हों, तो बदलने के रास्ते खोजे जा सकते हैं। और अगर यह यथार्थ ही नहीं है, तो बात समाप्त हो गई। फिर एक ही काम है, आंख बंद करके बैठ जाने का। हिंदुस्तान की प्रतिभा आंख बंद करके बैठी है। हम आंख बंद करके बैठने वाले लोगों को आदर भी बहुत देते हैं। हम समझते हैं, जो आदमी आंख बंद करके बैठ जाता है वह धार्मिक हो जाता है। हम सोचते हैं, जो आदमी जिंदगी की तरफ पीठ कर लेता है वह ज्ञानी हो जाता है। हम उसके पैर छूते हैं, क्योंकि इस आदमी ने संसार का त्याग कर दिया, क्योंकि इस आदमी ने जीवन को इनकार कर दिया। जो आदमी जीवन का दुश्मन है, उसे हम सम्मान देते हैं। भारत में जीवन-विरोधी प्रतिभा को सम्मान मिल रहा है, इसलिए जीवन की समस्याओं का हल करने का कोई रास्ता नहीं है।
जीवन की समस्याएं कौन हल करेगा? प्रतिभा से, बुद्धि से जीवन की समस्याएं हल होती हैं। और अगर बुद्धि ने इनकार करने का रास्ता पकड़ लिया हो तो समस्याएं कैसे हल होंगी? हम एक स्कूल में बच्चों को एक सवाल दें, और वे सारे बच्चे उठ कर कहें सवाल मिथ्या है, माया है। क्यों हल करें, जो है ही नहीं? तो उस स्कूल में फिर गणित विकसित नहीं होगा। गणित के विकास की क्या जरूरत रहेगी? सवाल को सही माना जाए तो सवाल को हल करने की कोशिश की जा सकती है। और सवाल को इनकार कर दिया जाए, तो हल करने का क्या सवाल है?
भारत जीवन के सवालों को इनकार कर रहा है। बात ही नहीं कर रहा है। और अगर कभी कोई बात भी करता है, तो वह बात एक्सप्लेनेशन होती है, व्याख्या होती है, समाधान नहीं होता।
जैसे भारत गरीब है, हजारों साल से गरीब है आदमी। और गरीबी को मिटाया
जा सकता है। धन पैदा करना आदमी के हाथ में है। धन को बांटना आदमी के हाथ में है। धन की सारी व्यवस्था आदमी के विचार से निष्पन्न होती है।
लेकिन भारत ने एक व्याख्या खोज रखी है। वह कहता है, आदमी, पहली तो बात
यह है कि सब झूठ है, जो बाहर दिखाई पड़ता है। गरीबी भी एक सपना है, अमीरी भी एक सपना है। और जब दोनों ही सपने हैं, तो फर्क क्या है? सपनों को बदलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। भूख भी एक सपना है और पेट भरा होना भी एक सपना है। पेट भरे होने वाले आदमी के लिए तो यह बात बहुत अच्छी है, लेकिन भूखे आदमी के लिए बहुत खतरनाक है। पेट भरा आदमी कहता है कि बिल्कुल ठीक कहते हैं महाराज, सब जिंदगी सपना है। क्योंकि पेट भरे आदमी को यह व्याख्या बहुत सहयोगी है। जब सभी सपना है तो वह लोगों को लूटता चला जाए, लोगों का खून पीता चला जाए, लोगों को नंगा और भूखा करता चला जाए। जब सभी सपना है तो हर्ज क्या है?
पेट भरे आदमी के लिए यह व्याख्या ठीक है। लेकिन भूखे आदमी के लिए यह व्याख्या जहर है, अफीम है। क्योंकि भूखा आदमी भूखा रह जाएगा। और भूख बहुत सत्य है, शरीर बहुत सत्य है। यह जो पदार्थ है, बहुत सत्य है। यह जो चारों

तरफ दिखाई पड़ रहा है, यह बहुत सत्य है, यह असत्य नहीं है। इस जगत में कुछ भी असत्य नहीं है। इस जगत में जो भी है, वह सत्य है। और इस जगत के पूरे सत्य को जो जान लेता है, वही परमात्मा को भी जान पाता है।
जगत के सत्य को अस्वीकार करने से नहीं। लेकिन, या तो हम, एक तरकीब है हमारे पास कि हम कह दें, सब झूठ है, एक दूसरी तरकीब है कि हम कुछ व्याख्याएं खोज लें। हम गरीब आदमी को कहें कि तू अपने पिछले जन्मों के पापों का फल भोग रहा है, इसलिए हम क्या कर सकते हैं?
कल मैं जिस ट्रेन में था, तीन आदमी मेरे डिब्बे में और थे। तीनों पढ़े- लिखे लोग थे। वे तीनों बड़ी देर से विवाद कर रहे थे। फिर एक आदमी ने कहा कि इस साल भी ऐसा मालूम पड़ता है कि पानी नहीं गिरेगा, जगह-जगह अकाल होगा। दूसरे आदमी ने कहा, होने ही वाला है, सब हमारे पापों का फल है। पानी नहीं गिर रहा, वह हमारे पापों का फल है। बिहार में अकाल पड़ा, तो गांधी जी ने कहा कि बिहार के लोगों ने हरिजनों के साथ जो पाप किए, उसका फल भोग रहे हैं। जैसे हिंदुस्तान भर के लोगों ने हरिजनों के साथ पाप नहीं किए हैं?
हमारी हजारों साल की व्याख्या यह है कि जिंदगी की समस्या को इनकार करने के लिए कोई व्याख्या दे दो। आदमी गरीब क्यों है? उसने पिछले जन्मों में बुरे पाप किए हैं, बुरे कर्म किए हैं, इसलिए गरीब है। बात खत्म हो गई। क्योंकि पिछले जन्मों के कर्मों को अब तो नहीं बदला जा सकता। अब तो भोगना ही पड़ेगा। हां, इस जन्म में बुरे कर्म न करे वह आदमी, तो अगले जन्म में वह भी सुख भोग सकता है। अब अगले जन्म का कोई पता नहीं है। और पिछले जन्म के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। फिर इस गरीबी के साथ क्या किया जाए? सिवाय स्वीकार करने के कोई रास्ता नहीं है। हमारी व्याख्याएं स्वीकृति सिखाती हैं। बदलाहट नहीं, क्रांति नहीं, परिवर्तन नहीं। एक गरीब आदमी क्या करे गरीबी मिटाने के लिए?
पहली तो बात यह है, गरीबी उसके कर्मों का फल है, और कर्म अब नहीं बदले
जा सकते हैं। जो उसने पिछले जन्म में किए हैं, उनका फल भोगना पड़ेगा। मैंने अगर आग में हाथ डाल दिया है, तो मेरा हाथ जलेगा और मुझे जलन भोगनी पड़ेगी। पिछले जन्म में कर्म किए थे, उनकी गरीबी मुझे इस जन्म में भोगनी पड़ेगी। अब एक ही रास्ता है, मैं अगले जन्म को सुधार सकता हूं, जिसका कोई भी पता नहीं है। और वह में कैसे सुधार सकता हूं? वह मैं अभी कोई बुरे कर्म न करूं।
और क्रांति भी एक बुरा कर्म है, यह ध्यान रहे। बदलाहट की चेष्टा भी एक बुरा कर्म है। अस्वीकार करना, विद्रोह करना भी एक बुरा कर्म है। किसी को दुख पहुंचाना भी एक बुरा कर्म है। और अगर जिंदगी को बदलना है तो कुछ लोगों को दुख पहुंचेगा। जो लोग जिंदगी की छाती पर सवार हैं, उन्हें उतारने में दुख पहुंचेगा।
तब एक ही रास्ता है कि मैं अपनी गरीबी को भोगूं और भगवान से प्रार्थना करूं कि अगले जन्म में मुझे गरीब न बनाए। फिर इस गरीबी को बदलने का कोई उपाय नहीं रह गया। गरीबी भोगनी पड़ेगी। समस्या को झेलना पड़ेगा। और अगर बहुत कठिन हो जाए समस्या, तो समझना पड़ेगा, यह सब माया है, यह सब खेल चल रहा है, यह सब सपना है, यह सब सच नहीं है।
जैसे एक आदमी बहुत मुसीबत में होता है, और शराब पी लेता है। कभी आपने सोचा कि आदमी शराब क्यों पी लेता है? आदमी शराब इसलिए पी लेता है कि शराब पीकर मुसीबत सपना मालूम पड़ने लगती है, झूठ मालूम पड़ने लगती है। एक आदमी की पत्नी बीमार है, और वह दवा नहीं ला पाता है, और वह इलाज नहीं करवा पाता है, और पत्नी मरने के करीब पड़ी है। वह आदमी शराब पीकर बैठा है। अब पत्नी भी झूठ है, मकान भी झूठ है, सारी दुनिया झूठ है। अब वह मजे में है। अब न पत्नी की चिंता है, न बीमारी की चिंता है, न दवा का इंतजाम करना है। वह आदमी शराब पीकर क्या कर रहा है? वह शराब पीकर सारी दुनिया को झूठ कर रहा है। वह शराब पीकर सारी जिंदगी की चिंताओं को भूलने का उपाय कर रहा है।
शराब पीकर एक आदमी जो करता है, पूरे भारत ने जिंदगी को झूठ कह कर वही काम किया है। पूरी कौम ने शराब पी ली है। और तब फिर समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता है। एक शराबी आदमी कैसे समस्याओं को हल करेगा? वह तो समस्याओं को इनकार कर रहा है। वह तो यह कह रहा है, समस्याएं हैं ही नहीं।

शराब पीआ हुआ आदमी जिंदगी को नहीं बदल सकता। क्योंकि जिस जिंदगी को बदलना है, उसे तो शराब पीकर उसने झूठ कर दिया, उसको भूल गया, उसका विस्मरण कर दिया।
भारत ने एक तरह की शराब पी रखी है। भारत की पूरी प्रतिभा एक तरह की शराब पीए हुए बैठी है। और वह शराब है इस बात की कि हम समस्याओं से घबड़ा कर समस्याओं को इनकार कर दिए हैं। इसलिए पांच हजार सालों के इतिहास में हमने एक भी समस्या हल नहीं की। कोई भी समस्या हल नहीं की। हल करने का हमने सवाल ही नहीं उठाया।
अगर आदमी की उम्र कम है, तो हम कहते हैं, भाग्य में इतना लिखा हुआ है। सारी दुनिया में उम्र बढ़ती चली जाती है, सिर्फ हमारे भाग्य में उम्र लिखी हुई है। रूस के भाग्य में उम्र नहीं लिखी हुई है? स्विटजरलैंड के भाग्य में उम्र नहीं लिखी हुई है? अमरीका के भाग्य में उम्र नहीं लिखी हुई है? उन्नीस सौ सत्रह में रूस में क्रांति हुई, तब वहां की औसत उम्र तेईस वर्ष थी। आज उनकी औसत उम्र अड़सठ वर्ष है। उनकी उम्र भाग्य में लिखी हुई नहीं है? भारत की उम्र भाग्य में लिखी हुई है! यहां का पढ़ा-लिखा आदमी भी चार आने के, किनारे रास्ते पर बैठे ज्योतिषी से अपनी उम्र पूछता है। पढ़ा- लिखा आदमी, उम्र पूछने एक चार आने के आदमी के पास जाता है और उम्र का पता लगाता है। उम्र कितनी भी हो सकती है। उम्र कितनी भी की जा सकती है। उम्र को बदला जा सकता है। उम्र को लंबाया जा सकता है, छोटा किया जा सकता है। हिरोशिमा पर एटम बम गिरा, एक लाख बीस हजार आदमी मर गए। उन सबकी हाथ की रेखाएं समान नहीं थीं। उन एक लाख बीस हजार लोगों के हाथ उठा कर देख लें, उनके हाथ की रेखाएं उसी दिन समाप्त नहीं होती थीं। सभी की समाप्त नहीं होती थीं। शायद ही किसी एकाध आदमी की उम्र की रेखा उस दिन वहां समाप्त हो रही हो, वह संयोग की बात होगी। एक लाख बीस हजार आदमी मर जाते हैं एक घड़ी भर में, एक बम उनके जीवन को समाप्त कर देता है। लेकिन हम इस देश में उम्र की समस्या को लेकर बैठे हैं और हमने मान रखा है कि उम्र तो तय है।
जनसंख्या बढ़ती चली जाती है। हम कहते हैं, वह तो भगवान देता है बच्चे। हमसे ज्यादा बेईमान प्रतिभा खोजनी मुश्किल है। बहुत कनिंग माइंड है हमारा। जो भी हम नहीं बदलना चाहते हैं, उसको हम भगवान पर, भाग्य पर, संसार के ऊंचे-ऊंचे सिद्धांतों पर थोप देते हैं।
जापान अपनी संख्या सीमित कर लिया, फ्रांस ने अपनी संख्या सीमित कर ली। फ्रांस पर मालूम होता है भगवान का कोई वश नहीं चलता। वे तय करते हैं कि कितने बच्चे पैदा करने हैं। हम पर ही भगवान का वश चलता है? या तो ऐसा मालूम पड़ता है कि भगवान का वश सिर्फ कमजोर और नासमझों पर चलता है। और ऐसे भगवान की कोई जरूरत नहीं है जो कमजोरों पर वश चलाता हो।
लेकिन सच्चाई उलटी है। भगवान का इससे कोई संबंध नहीं है। जिस भगवान
की हम बातें कर रहे हैं, वह भी हमारे भीतर बैठा हुआ काम कर रहा है। हमारे हाथों से वही कर रहा है, वह हमसे अलग होकर नहीं कर रहा है। अगर हम उम्र बड़ी कर लेंगे, अगर हम गरीबी मिटा देंगे, अगर हम बच्चे कम पैदा करेंगे, तो यह भी भगवान ही कर रहा है हमारे द्वारा। वह जो भी करता है, हमारे द्वारा करता है। हमारे द्वारा के अतिरिक्त उसके पास और कोई उपाय भी नहीं है। क्योंकि हम वही हैं, हम उसके ही हिस्से हैं। हम जो भी कर रहे हैं, वही कर रहा है। रूस में भी वही कर रहा है, और फ्रांस में भी वहां कर रहा है, और भारत में भी वही कर रहा है। लेकिन हमने यहां एक भेद कर रखा है। हमने जिंदगी जैसी है, उसका जो स्टेट्स-को है, जैसी हो गई है स्थिर, उसको वैसा ही बनाए रखने के लिए भगवान का सहारा खोज रखा है। और हम कहते हैं कि उम्र भगवान की, बीमारी भगवान की। अंधा आदमी पैदा हो, काना आदमी पैदा हो, तो सब भाग्य का, भगवान का जिम्मा।
ये कोई भी जिम्मे भाग्य और भगवान के नहीं हैं। ये सारी बातें होती रही हैं, क्योंकि आदमी अज्ञान में है। और आदमी का ज्ञान बढ़े तो किसी आदमी के अंधे पैदा होने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी आदमी के लंगड़े-लूले पैदा होने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी आदमी के बेवक्त मर जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि आदमी के शरीर को देख कर ऐसा लगता

है कि इस शरीर को कितने ही लंबे समय तक जिंदा रखा जा सकता है। इस शरीर के भीतर मर जाने की कोई अनिवार्यता नहीं है, कोई इनइविटेबिलिटी नहीं है कि यह शरीर मरे ही। आज रूस में डेढ़ सौ वर्ष के उम्र के सैकड़ों बूढ़े हैं। अभी एक स्त्री की मृत्यु हुए, जिसकी उम्र एक सौ अठहत्तर वर्ष थी। आज रूस में किसी को यह कहना कि तुम सौ वर्ष जीओ, आशीर्वाद देना, वह आदमी नाराज हो जाएगा। क्योंकि उसका मतलब है कि आप जल्दी मर जाने की कामना कर रहे हैं।
हम अपनी समस्याओं को अयथार्थ कह कर, अनरियल कह कर उनसे बच गए हैं। बच जाने से समस्याएं मिट नहीं गईं, समस्याएं इकट्ठी होती चली गई हैं।
भारत के पास जितनी समस्याएं हैं, उतनी दुनिया के किसी देश के पास नहीं हैं। क्योंकि भारत ने पांच हजार वर्षों में समस्याओं का ढेर लगा दिया है।
सब समस्याएं इकट्ठी होती चली गई हैं। कोई समस्या हमने हल ही नहीं की।
बैलगाड़ी जब बनी थी, उस जमाने की समस्या भी मौजूद है, और जेट बन गया, उस जमाने की समस्या भी मौजूद है। वह सारी समस्याएं इकट्ठी होती चली गई हैं। उन सबका बोझ हमारी छाती पर है। और उनको हम हल नहीं कर पाएंगे, जब तक हम आधारभूत सिद्धांतों को न बदल दें, जिनकी वजह से वे इकट्ठी हो गई हैं। उनमें पहली बात आपसे कहना चाहता हूं इस पहले दिन, वह यह है, भागने से काम नहीं चलेगा, पलायन से काम नहीं चलेगा, एस्केपिज्म से काम नहीं चलेगा, इनकार करने से काम नहीं चलेगा, जिंदगी को माया कहने से काम नहीं चलेगा, और जिंदगी को माया कहने वाले लोगों से पूछने से काम नहीं चलेगा। जिंदगी एक यथार्थ है। और कितने आश्चर्य की बात है कि जिंदगी के यथार्थ को भी सिद्ध करना पड़ेगा! यह भी कोई सिद्ध करने की बात है!
एक अंग्रेज विचारक था, बर्कले। वह कहता था, सब झूठ है, सब माया है। वह डाक्टर जॉनसन के साथ घूमने निकला था एक रास्ते पर। रास्ते में वह बात करने लगा कि यह सब जो दिखाई पड़ रहा है, सब झूठ है। डाक्टर जॉनसन ने रास्ते के किनारे का एक पत्थर उठा कर बर्कले के पैर पर पटक दिया। बर्कले पैर पकड़ कर बैठ गया, पैर से खून बहने लगा। जॉनसन ने कहाः क्यों बैठ गए हो पैर पकड़ कर? उठो! सब झूठ है, पत्थर भी झूठ है और चोट भी झूठ है। पैर पकड़ कर क्यों बैठ गए हो? लेकिन बर्कले उतना चालाक नहीं था। अगर वह भारत में पैदा हुआ होता तो जॉनसन इस तरह उत्तर नहीं दे सकते थे।
मैंने सुना है, एक दार्शनिक को, जो कहता था, जगत असत्य है। एक राजा के दरबार में बुलाया गया। और उसने सिद्ध कर दिया कि जगत असत्य है। सिद्ध करने की तरकीबें हैं। सिद्ध किया जा सकता है। सच तो यह है कि सत्य को सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं होती, सिर्फ असत्य को ही सिद्ध करने की जरूरत पड़ती है। सत्य तो है, उसे सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं। असत्य को सिद्ध करने के लिए शास्त्र लिखने पड़ते हैं, तर्क और आर्ग्युमेंट और विवाद देने पड़ते हैं। मेरी दृष्टि में सिर्फ असत्य को ही सिद्ध करने की जरूरत पड़ती है, सत्य को सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। यह बात सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है कि दीवाल है। वह आप जानते हैं। लेकिन अगर दीवाल नहीं है, यह सिद्ध करना हो, तो फिर बड़े प्रयास करने पड़ेंगे, बड़े तर्क देने पड़ेंगे।
उस विचारक ने बड़े तर्क दिए। और उसने कहा कि सब असत्य है। तर्क क्या है असत्य सिद्ध करने के? पहला तर्क तो यह है कि हम कभी भी चीजें जैसी हैं उनको नहीं जान सकते, चीजों को हम जान ही नहीं सकते। जो भी हम जानते हैं, पिक्चर्स जानते हैं, चित्र जानते हैं। मैं आपको देख रहा हूं, पता नहीं आप वहां हैं या नहीं। सिर्फ मुझे मेरी आंख के भीतर चित्र दिखाई पड़ रहा है कि कुछ लोग यहां बैठे हुए हैं। ये कुछ लोग वहां हैं या नहीं, मुझे क्या पता? रात को सपना देखता हूं, तब भी मुझे लोग दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह दिखाई पड़ते हैं, जिस तरह आप दिखाई पड़ रहे हैं। कोई फर्क नहीं होता। रात सपने में भी आप दिखाई पड़ते हैं, दिन में भी दिखाई पड़ते हैं। दोनों में फर्क क्या है? दोनों हालतों में मुझे चित्र दिखाई पड़ते हैं। आपका मुझे कोई पता नहीं है कि आप हैं भी या नहीं। अगर हम कहें कि मैं आपको छूकर देख सकता हूं, तो भी वह दार्शनिक कहता है, छूता हाथ है, मैं तो छूता नहीं आपको। हाथ छूता है और खबर भीतर जाती है। वह खबर झूठ भी हो सकती है, वह खबर सच भी हो सकती है। उस खबर का

क्या भरोसा किया जाए? हाथ सच कह रहा है या झूठ कह रहा है, कौन जानें? और कैसे हम मान लें कि हाथ जो कहता है, वह सच कहता है? कुछ नहीं कहा जा सकता। उस वैज्ञानिक ने, उस विचारक ने बड़े ही तर्कों से सिद्ध किया कि नहीं
है जगत, सब माया है।
उस राजा ने कहाः मैं मान गया, सब माया है--उसने कहा, लेकिन ठहरिए, आखिरी प्रयोग और हो जाए। उस राजा के पास एक पागल हाथी था। उसने अपने महावतों को कहा कि उस पागल हाथी को ले आओ और इस दार्शनिक को पागल हाथी के सामने छोड़ दो। महल के दरवाजे पर वह पागल हाथी ले आया गया। सब द्वार बंद कर लिए गए। रास्ते पर वह पागल हाथी छोड़ दिया गया और उस दार्शनिक को छोड़ दिया गया। वह दार्शनिक चिल्लाता है, भागता है, हाथ-पैर जोड़ता है कि मुझ बचाओ, मैं मर जाऊंगा। वह हाथी उसके पीछे भाग रहा है। वह दार्शनिक चिल्ला रहा है। वह राजा के सामने हाथ गिड़गिड़ा रहा है। राजा अपने महल के ऊपर खड़ा है और हंस रहा है। फिर बामुश्किल उसे हाथी से बचाया गया। वह पसीना-पसीना हो गया, आंख से उसके आंसू बह रहे हैं, उसकी छाती धड़क रही है। राजा ने उससे कहाः कहिए, हाथी सत्य था? उस दार्शनिक ने कहाः महाराज, हाथी भी असत्य था और वह आदमी जो चिल्ला रहा था, वह भी असत्य था। और मेरी यह जो धड़कन है, यह भी असत्य है। सभी कुछ असत्य है। आपने मुझे बचाया, यह भी असत्य है। जब सभी कुछ असत्य है, तो हाथी भी असत्य है, उसका रोना भी।
लेकिन बर्कले को यह पता नहीं था। नहीं तो वह डाक्टर जॉनसन से कहता कि
यह पैर मैं खून बह रहा है, यह भी असत्य है। यह मैं पकड़ कर बैठा हूं, यह भी असत्य है। यह आपने पत्थर मारा, यह भी असत्य है। सभी कुछ असत्य है।
सभी कुछ असत्य सिद्ध किया जा सकता है, लेकिन उससे हल क्या होता है? उससे जिंदगी कहां बदलती है? जिंदगी वैसी की वैसी चली जाती है। गरीबी गरीबी की जगह होगी। बीमारी बीमारी की जगह होगी। दुख दुख की जगह होगा। समस्या समस्या की जगह होगी। जिंदगी को असत्य कहने से हल क्या होगा? सवाल यह है कि जिंदगी को असत्य कहने से समाधान क्या है?
जिंदगी को असत्य कहने से सिर्फ एक समाधान है और वह यह है कि मैं आंख बंद कर लूं, जो असत्य है, भूल जाऊं उसे, जो असत्य है, ख्याल छोड़ दूं उसका, जो असत्य है। लेकिन तब भी क्या फर्क होगा? मेरे आंख बंद करने से भी गरीब गरीब होगा, बीमार बीमार होगा, समस्याएं अपनी जगह होंगी।
भारत ने असत्य कह कर कुछ भी हल नहीं किया। और इसीलिए तो भारत पर दुश्मन आए। भारत पराजित हुआ, गुलाम बना, और भारत का साधु समझाता रहा, यह सब माया है, यह सब संसार है, यह सब चलता रहता है। भारत दुश्मनों के सामने हारा, उस हार में भारत की कमजोरी नहीं थी, भारत की फिलासफी थी, भारत का दर्शन था। जब सभी असत्य है तो हार भी असत्य है, जीत भी असत्य है। कौन जीतता है, कौन हारता है, कोई फर्क नहीं है। कौन दिल्ली के सिंहासन पर बैठता है, कोई फर्क नहीं है। कौन राज्य करता है, कौन पराजित होता है, कौन शोषक है, कौन शोषित है, कोई फर्क नहीं है।
भारत ने जो जीवन-दर्शन विकसित किया है जगत को माया बताने वाला, उस जगत
को माया बताने वाले भारत की दृष्टि ने ही भारत को हजारों साल तक गुलाम रखा। वह दृष्टि अब भी मौजूद है। उस दृष्टि के कारण हम जिंदगी की सभी समस्याओं को अस्वीकार कर देने में समर्थ हो गए। जो भी हुआ, हमने अस्वीकार कर दिया कि सब असत्य है। हमें एक तरकीब हाथ लग गई, एक ऐसी तरकीब हाथ लग गई, जिससे हम हर चीज को इनकार कर सकते हैं। और इनकार कर देना हमेशा आसान है, क्योंकि स्वीकार करने पर श्रम करना पड़ता है। इनकार करने में कुछ भी नहीं करना पड़ता। स्वीकार करने पर श्रम करना पड़ेगा, बदलने की चेष्टा करनी पड़ेगी, बदलने के उपाय खोजने पड़ेंगे।
कौन उठाए यह झंझट? भारत की प्रतिभा ने झंझट उठाने से इनकार कर दिया है। इसलिए भारत का प्रतिभाशाली आदमी जंगल भाग जाता है। वह कहता है, कौन उठाए यह झंझट? दुनिया के प्रतिभाशाली लोग झंझट को बदलने की कोशिश करते हैं, भारत का प्रतिभाशाली जंगल भाग जाता है! वह कहता है, कौन उठाए झंझट? भारत की प्रथम कोटि की जो प्रतिभा है, वह जंगल चली जाती है। द्वितीय
और तृतीय कोटि की प्रतिभाएं संसार को चलाती हैं। दुनिया के दूसरे मुल्कों

की प्रथम कोटि की प्रतिभा जीवन को चलाती है। इसलिए हम दुनिया के किसी भी मुल्क का मुकाबला नहीं कर सकते। हमेशा पिछड़ते चले जाएंगे। उनका फर्स्ट रेट माइंड दुनिया को चलाता है। हमारा सेकेंड रेट और थर्ड रेट माइंड दुनिया को चलाता है। हम उनके सामने खड़े नहीं हो सकते।
हमारा प्रथम कोटि का विचारक तो भागता है। प्रथम कोटि के विचारक अगर दो-चार भाग जाएं, तो सब कुछ गड़बड़ हो जाता है। शायद आपको पता न होगा? हो सकता था, एक आदमी आइंस्टीन जर्मनी से न भगाया गया होता, तो शायद दुनिया का इतिहास दूसरा होता। एक आइंस्टीन को जर्मनी से भगा देने का परिणाम यह हुआ कि जो एटम बम जर्मनी में बन सकता था, वह अमरीका में बना। सारी दुनिया का इतिहास अब और ही होगा। अगर हिटलर जीतता और जापान और जर्मनी जीतते तो दुनिया का इतिहास बिल्कुल दूसरा होता। हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि दुनिया का नक्शा कैसा होता आज?
लेकिन एक विचारक, एक प्रथम कोटि की प्रतिभा का जर्मनी से भागना, सारे इतिहास को बदलने का कारण हो गया। वह आदमी अमरीका पहुंच गया। वह जो एटम की शोध जर्मनी में चलती थी, वह अमरीका में जाकर पूरी हुई। और उसी एटम ने घुटने टिकवा दिए जापान के और जर्मनी के। वह एटम जर्मनी में भी बन सकता था। सिर्फ एक आदमी के भाग जाने के कारण अब दुनिया का इतिहास बिल्कुल दूसरा होगा। हिंदुस्तान से कितने प्रथम कोटि के लोग भाग गए हैं, इसका हमें पता है?
हम एक भी आइंस्टीन पैदा नहीं कर सके, एक भी न्यूटन पैदा नहीं कर सके। हमारे पास प्रतिभाओं की कभी नहीं थी। कोई बुद्ध, महावीर या शंकर या नागार्जुन के पास कम प्रतिभा नहीं हैं। लेकिन प्रतिभा की दिशा भागने की है। प्रतिभा की दिशा जीवन से जूझने की नहीं है। जीवन को बदलने की और संघर्ष करने की नहीं है। आंख बंद कर लेने की, खो जाने की है।
शायद हम दुनिया में सबसे ज्यादा बड़ा वैज्ञानिक समाज पैदा कर सकते थे। लेकिन यह नहीं हो सका। क्योंकि विज्ञान वहां पैदा होता है, जो जिंदगी को यथार्थ मानते हैं। जो जिंदगी को अयथार्थ, अनरियल मानते हैं, वहां विज्ञान पैदा नहीं होता। साइंस का मतलब यह है कि जिंदगी सत्य है और उस सत्य के हमें भीतर प्रवेश करना है। जिंदगी के सत्य में प्रवेश करने की कला का नाम साइंस है। लेकिन जिंदगी असत्य है तो प्रवेश करने का सवाल नहीं है। इसलिए भारत में साइंस पैदा नहीं हो सकी। भारत में आज भी साइंस पैदा नहीं हो रही। आप कहेंगे, यह मैं क्या बात कर रहा हूं? हमारे न मालूम कितने बच्चे विज्ञान पढ़ रहे हैं, विज्ञान के ग्रेजुएट हो रहे हैं, एम एससी हो रहे हैं, बी एससी हो रहे हैं। हिंदुस्तान में न मालूम कितने लोग विज्ञान का अध्ययन कर रहे हैं, कितने वैज्ञानिक पैदा हो रहे हैं। और मैं कहता हूं कि हिंदुस्तान में विज्ञान अभी भी पैदा नहीं हो रहा। और मैं कुछ कारण से कहता हूं, बहुत सोच कर कहता हूं।
हिंदुस्तान में विज्ञान तब तक पैदा नहीं होगा, जब तक हिंदुस्तान का फिलसफा, हिंदुस्तान की जीवन की फिलासफी नहीं बदलती। हिंदुस्तान में वैज्ञानिक शिक्षण हो रहा है, ट्रेनिंग हो रही है, हिंदुस्तान में टेक्नालॉजी समझाई जा रही है, बच्चे साइंस पढ़ रहे हैं, लेकिन फिर भी उनका माइंड साइंटिफिक नहीं है।
बी एससी पढ़ रहा है एक लड़का, और परीक्षा के वक्त हनुमान जी के मंदिर के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाएगा। उसका बी एससी पढ़ना, उसका साइंस का पढ़ना और हनुमान जी के मंदिर के सामने हाथ जोड़ने में, उसे कोई कंट्राडिक्शन नहीं दिखाई पड़ेगा, कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ेगा।
मैं कलकत्ते में एक डाक्टर के घर में मेहमान था। वे एक बड़े फिजिशियन हैं। इंग्लैंड रहे हैं, पश्चिम से डिग्रियां लेकर आए हैं। वे मुझे मीटिंग में ले जाने के लिए बाहर निकले। उनके पोर्च में मैं निकल ही रहा था कि उनकी छोटी बच्ची को छींक आ गई। उस बड़े डाक्टर ने कहाः एक मिनट रुक जाइए। मैंने कहाः क्यों? उसने कहा, आप देखते नहीं, बच्ची को छींक आ गई है। मैंने कहाः तुम्हारी बच्ची को छींक आए, इससे मेरे रुकने का क्या संबंध? और तुम डाक्टर हो, तुम भलीभांति जानते हो कि छींक के आने का कारण क्या होता है? तुम भी यही कह रहे हो? एक गांव का ग्रामीण यह कहता, तो माफ किया जा सकता था।

तुम्हें माफ नहीं किया जा सकता। तुम्हें तो, हिंदुस्तान के पास अगर किसी दिन कोई सच में अदालत होगी, उसके सामने खड़ा किया जाना चाहिए। और तुम्हारे सारे सर्टिफिकेट छीन लेने चाहिए, और तुम्हारी डाक्टरी को जुर्म करार दे देना चाहिए, तुम डाक्टर नहीं हो सकते। क्योंकि जो आदमी छींक आने से रुकता है, वह आदमी डाक्टर कैसे हो सकता है?
लेकिन वे डाक्टर बड़े हैं। वह डाक्टरी एक तरफ है, और उनका वह जो ग्रामीण मस्तिष्क है, वह एक तरफ है, वे दोनों अब एक साथ चल रहे हैं। वह एक साथ दोनों काम चल रहा है। वह एक तरह की टेक्नालॉजी जो उन्होंने सीख ली कि नश्तर कैसे लगाना, फलां बीमारी में फलां दवा देनी, वह सब उन्होंने सीख लिया है। वह तोतारटंत है। लेकिन उनके पास साइंटिफिक माइंड नहीं है, वैज्ञानिक का मन नहीं है। नहीं तो मुझे रोकने के पहले वे खुद सोचते कि छींक न आने से रुकने का क्या संबंध हो सकता है? नहीं, लेकिन यह प्रश्न उनके मन में नहीं उठा। यह प्रश्न उठा ही नहीं। मुझसे कह दिया, और जब मैंने प्रश्न उठाया तो उन्होंने कहा, हां, आप ठीक कहते हैं। लेकिन हर्ज क्या है, रुक भी गए तो हर्ज क्या है? क्या बिगड़ गया? मैंने उनसे कहा, बहुत कुछ बिगड़ गया। तुम्हारे रुकने का सवाल नहीं है। पूरे मुल्क की प्रतिभा रुक गई! तुम्हारे रुकने का सवाल नहीं है, तुम तो बिल्कुल रुक जाओ, अब इस छींक के बाद घर से निकलो ही मत, तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन पूरे मुल्क का दिमाग अगर इस तरह सोचेगा तो इस मुल्क में कभी भी विज्ञान का जन्म नहीं हो सकता। मैं जालंधर में एक घर में अभी था। एक मित्र ने एक बड़ा मकान बनाया। वे
एक इंजीनियर हैं, पंजाब के बड़े इंजीनियर, और बहुत अच्छा मकान बनाया। मुझसे कहा कि उनके मकान का उदघाटन कर दूं। मैं गया, उनका फीता काटा। देखा कि नये मकान में सामने एक हंडी लटकी हुई है काली, और हंडी के ऊपर बाल वगैरह लगे हैं और आदमी का चेहरा बना हुआ है। मैंने पूछा, यह क्या है? उन्होंने कहा कि मकान को नजर न लग जाए इसलिए लटकानी पड़ती है।
अब यह आदमी इंजीनियर है! यह आदमी शानदार मकान बनाता है और मकान के सामने एक हंडी लटका देता है, नजर न लग जाए! मकान को नजर लगती है? तो इस आदमी को वैज्ञानिक नहीं कह सकते। यह आदमी टेक्नीशियन है। इस आदमी ने विज्ञान का तंत्र समझ लिया, लेकिन विज्ञान इसकी आत्मा नहीं बन सका। इसके पास वैज्ञानिक का सोच-विचार नहीं है, इसके पास वैज्ञानिक की जिज्ञासा नहीं है। इसके पास आस्था तो धार्मिक की है और शिक्षण वैज्ञानिक का है। और यह बड़ी खतरनाक बात है। इसका हार्दिक हिस्सा भीतर तो पुराने धार्मिक का है, और उसके ऊपर का मस्तिष्क वैज्ञानिक का है। इसके भीतर एक स्प्लिट पर्सनैलिटी है। दो हिस्सों टूट गया यह आदमी। जहां तक इससे सलाह लोगे मकान बनाने के संबंध में, यह वैज्ञानिक की तरह व्यवहार करेगा। और जहां जिंदगी का सवाल उठेगा, यह बिल्कुल अवैज्ञानिक हो जाएगा। यह गंडे-ताबीज बंधवा सकता है, यह जाकर कुछ भी कर सकता है, इसका कोई भरोसा नहीं है। यह आदमी विश्वास के योग्य नहीं है।
भारत में विज्ञान की शिक्षा चल रही है, लेकिन भारत की आत्मा में वैज्ञानिक प्रतिभा पैदा नहीं हो पा रही है। इसलिए हमारा विज्ञान नकल से ज्यादा नहीं हो सकता। हम पश्चिम की नकल कर सकते हैं और नकल से कभी विज्ञान पैदा नहीं होता। नकल से क्या हो सकता है? वे पश्चिम में कुछ बनाएंगे, उसकी नकल करके हम भी बना लेंगे। लेकिन जब तक हम नकल कर पाएंगे, तब तक वे हमसे बहुत आगे निकल जाएंगे। अब ऐसा मालूम पड़ता है कि हम सदा ही पीछे रहेंगे। शायद अब हम कभी भी उनके सामने खड़े नहीं हो सकते। हम कितने ही दौड़ेंगे तो हम पीछे रहेंगे, क्योंकि हम बुनियादी बात भूले हुए बैठे हैं। हमारे पास वैज्ञानिक चिंतन नहीं है।
और वैज्ञानिक चिंतन न होने का कारण? न होने का कारण है, हमने जगत और जीवन की जो रियलिटी है, वह जो यथार्थ है जीवन का, वह जो पदार्थ की सत्ता है, वह जो मैटर का, पदार्थ का होना है चारों तरफ, हम उसको ही इनकार करके बैठे हुए हैं। तो उसकी खोज कौन करे? उसको जानने कौन जाए? उसके रहस्यों का कौन आविष्कार करे? कौन उसके कानून खोजे? कौन उसके नियम खोजे? और जो समाज वैज्ञानिक नहीं, वह समाज धीरे-धीरे शक्तिहीन हो जाता है। शक्ति विज्ञान

से पैदा होती है। विज्ञान से शक्ति पैदा होती है, चाहे किसी तरह की शक्ति हो। धन विज्ञान से पैदा होता है, चाहे किसी तरह का धन हो। जीवन का, स्वास्थ्य का, समृद्धि का सारा स्रोत विज्ञान से आता है।
हमने पांच हजार सालों में किस तरह का विज्ञान पैदा किया? किसी तरह का विज्ञान पैदा नहीं किया। जो भी हमने सीखा है, वह सब उधार है। शायद बैलगाड़ी के बाद हमने कोई आविष्कार नहीं किया। और पता नहीं, बैलगाड़ी भी हमने आविष्कार की या वह भी हमने कभी सीख ली होगी। उसका भी कोई भरोसा नहीं है। और अभी भी हमारे सोचने का जो ढंग है, वह बैलगाड़ी वाला ही है। सोचने का जो ढंग है, सोचने का ढंग हमारा बैलगाड़ी से आगे विकसित नहीं हुआ। हम वहीं सोच रहे हैं। बल्कि हमारे बीच तो कई लोग हैं, जो उससे भी पीछे हैं, वे पद यात्रा करते हैं। वे कहते हैं, बैलगाड़ी! बैलगाड़ी भी खतरनाक है, पैदल ही चलना चाहिए।
सारी दुनिया धीरे-धीरे आटोमैटिक यंत्रों पर चली जा रही है। सारी दुनिया धीरे-धीरे सारे यंत्रों को स्वचालित बना लेगी, आदमी को उन्हें चलाने की भी जरूरत न रह जाए। लेकिन हमारे समझदार लोग कहते हैं कि हमें चर्खा और तकली पर निर्भर रहना चाहिए। हमको ये बातें अपील भी करती हैं। ये बातें हमारे समझ में भी आती हैं। क्यों? इसलिए नहीं कि ये बातें ठीक हैं, बल्कि इसलिए कि हमारी प्रतिभा विकसित नहीं हो पाई। इसलिए अविकसित बातें हमारी समझ में आती हैं, विकसित बातें हमारी समझ में नहीं आती। जब भी हमें कोई बैलगाड़ी की दुनिया की बातें कहे, तो हमें अपील करता है, क्योंकि हमारी बुद्धि वहीं तक विकसित हो पाई है। और जब हमसे कोई आगे की दुनिया की बातें कहे, तो हमें बहुत घबड़ाहट होती है। क्योंकि उस अनजान दुनिया में हम असुरक्षित पाते हैं अपने को। वहां हमारी कोई सुरक्षा नहीं मालूम होती। हमें डर लगता है, भय लगता है, क्योंकि हम कुछ भी नहीं जानते उस दुनिया के बाबत।
लेकिन भयभीत रह कर हम जी नहीं सकेंगे। और अब आने वाले जगत में या तो हमें अपनी समस्याएं हल करनी पड़ेंगी या हमारी समस्याएं हमारी हत्या कर देंगी। उन्होंने करीब-करीब हमें मार डाला है। हमारी समस्याओं ने हमें करीब-करीब मार डाला है। और इसलिए इस मुल्क में न कोई आदमी प्रसन्न दिखाई पड़ता, न कोई आदमी आनंदित दिखाई पड़ता, न जिंदगी में जिसको हम जीवन का रस कहें कि कोई आदमी जीने का रस भोग रहा है¬कि उसके पैर में कोई गर्मी है, कि उसके हृदय में कोई उल्लास है, कि उसके प्राणों में कोई गीत है, ऐसा कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। हर आदमी उदास और बोझ से भरा हुआ है। हर आदमी ऐसा दबा हुआ है कि न मालूम कितने पहाड़ उसके सिर पर रखे हुए हैं। हर आदमी ऐसे चल रहा है कि कब गिर पड़े, तो गिरते ही सुख मालूम हो! कब खत्म हो जाए, तो अच्छा! हर आदमी के भीतर यह भाव चलता है कि कब खत्म हो जाऊं, कब आवागमन से छुटकारा हो जाए, कब जीवन से छुट्टी मिल जाए।
मैं भावनगर में था। एक चौदह साल की लड़की ने मुझसे आकर कहा कि आप मुझे आवागमन से छुटकारे का रास्ता बताइए! चौदह साल की लड़की, वह पूछती है कि जीवन में न आऊं ऐसा कोई रास्ता बताइए! अब यह चौदह साल की लड़की को पूछना चाहिए कि जीवन का रास्ता बताइए कि जीवन में कैसे जाऊं? जीवन को कैसे जीऊं? जीवन का आनंद, जीवन का रस कैसे पाऊं? चौदह माल की लड़की जीवन के द्वार पर खड़े होकर पूछती है कि जीवन से कैसे बचूं, मरूं कैसे! मरने का रास्ता बताइए!
वे जो लोग पूछते हैं, मोक्ष का रास्ता बताइए? मोक्ष अच्छा शब्द है सिर्फ, मोक्ष अच्छा शब्द है सिर्फ, वे मरने का रास्ता पूछ रहे हैं। और ऐसे मरने का रास्ता पूछ रहे हैं कि अल्टीमेट डेथ, फिर न जन्मना पड़े, फिर न लौटना पड़े, आखिरी मरना हो जाए। सुसाइडल हैं वे लोग, आत्मघाती हैं वे लोग। जीवन के रास्ते से परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है, मरने के रास्ते से नहीं। अगर परमात्मा कहीं भी मिलेगा तो जीवन की गहराइयों में। लेकिन हम जीवन से भागे हुए लोग पूछ रहे हैं कि मरें कैसे, कोई मरने का सुगम रास्ता बताइए? ऐसा कुछ रास्ता बताइए कि जीते जी अधमरे हो जाएं? पहली बात। उसका नाम संन्यास रख छोड़ा है हमने। जीते जी आधा मरा हुआ आदमी हो, उसको हम संन्यासी कहते हैं। और अगर वह जरा जीवन का रस दिखाए तो गड़बड़ हो गया, भ्रष्ट

हो गया। जीवन के प्रति बिल्कुल ही वह दुष्टता का व्यवहार करे, जीवन के सब रस द्वार बंद कर दे, जीवन का सारा आनंद सब तरफ से रोक ले, जीवन के संगीत की कहीं से कोई कड़ी सुनाई न पड़ने दे, सब तरफ से बहरा, अंधा, लूला-लंगड़ा हो जाए, फिर हम उसको आदर देंगे कि यह आदमी अच्छा आदमी है। मरा हुआ आदमी अच्छा आदमी है। इसीलिए तो जब आदमी कोई मर जाता है तो हम कहते हैं, बहुत अच्छा आदमी था। जिससे हमने जिंदगी में कभी नहीं कहा कि यह अच्छा आदमी था, मरने पर सारा मुल्क कहता है, बहुत अच्छा आदमी। असल में हम मरे हुए को ही आदर देते हैं। अगर जिंदा में ही वह आदमी मर जाता तो भी हम आदर देते। अगर वह मरा-मरा जीता तो भी हम आदर देते, अगर यह उसने भूल की, नहीं ऐसा किया, तो फिर हम मरने के बाद ही सम्मान करेंगे।
जिंदा आदमी का हमारे मन में स्वीकार नहीं, क्योंकि जीवन का ही हमारे
मन में सत्कार नहीं है। जीवन ही हमें खतरनाक मालूम पड़ता है। जीवन जोखिम मालूम पड़ती है। इसलिए इस मुल्क में हम बूढ़े का सम्मान करते हैं, जवान का नहीं। जो मुल्क जितना जीवित होता है, उतना युवा का सम्मान करता है। जो मुल्क जितना मरने लगता है, उतना बूढ़े का सम्मान करता है।
बूढ़े के सम्मान का क्या मतलब है? बूढ़े के सम्मान का सिर्फ एक मतलब है
कि यह आदमी हमसे मौत के ज्यादा करीब है। यह आदमी मरने के दरवाजे के हमसे ज्यादा करीब पहुंच गया। बूढ़े का सम्मान जीवन के कारण हम नहीं कर रहे हैं। बूढ़े का सम्मान जीवन के कारण भी हो सकता है कि यह आदमी इतना जीआ, इसलिए हम सम्मान करें। लेकिन तब हम जवान का भी सम्मान करेंगे, क्योंकि जवान जितनी तेजी से जीता है, बूढ़ा कैसे जी सकता है? जवान का भी सम्मान होगा और एक बूढ़े का सम्मान इसीलिए होगा कि यह आदमी इतना जीआ। लेकिन अभी इसलिए सम्मान नहीं होता। अभी इसलिए सम्मान होता है कि इस आदमी का अब जीवन से संबंध टूटने लगा, अब यह मौत के करीब पहुंचने लगा, अब यह आदमी करीब-करीब मरा हुआ हो गया। इसका एक पैर कब्र में चला गया, अब यह आदमी आदर के योग्य है। और अगर इस पैर कब्र में गए हुए आदमी में हमें जीवन के प्रति थोड़ा रस मिल जाए, तो हम कहेंगे, अरे, इस आदमी का अभी जीवन में रस है।
हम जीवन-विरोधी हैं। और जीवन-विरोधी हम क्यों हैं? और सारा मुल्क क्यों हजारों साल से मोक्ष की कामना कर रहा है? इसका कुल एक कारण है, हम जीवन की कोई भी समस्या हल नहीं कर पाए। तो जीवन इतना गंदा हो गया है, जीवन इतना कुरूप हो गया है, जीवन इतना बोझिल हो गया है कि अब सिवाय जीवन को छोड़ने के और कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता।
इस मकान में हम बैठे हुए हैं। इस मकान को हम इतना गंदा कर लें, इतनी दुर्गंध भर लें, इतना कूड़ा-करकट इकट्ठी कर लें कि इस मकान के भीतर सांस लेना मुश्किल हो जाए, तो हर आदमी यह पूछेगा, बाहर जाने का दरवाजा कहां है? मुझे बाहर जाना है? मैं इस मकान के बाहर कैसे हो जाऊं? लेकिन काश, हम इस मकान को सुंदर कर लें, क्योंकि जो मकान असुंदर हो सकता है, वह सुंदर भी हो सकता है। जो मकान गंदा हो सकता है, वह स्वच्छ भी हो सकता है। जो मकान कुरूप हो सकता है, जो मकान अग्ली हो सकता है, वह एक सुंदर, सौंदर्य का नमूना भी बन सकता है। अगर हम इस मकान को सुंदर कर लें तो फिर कोई नहीं पूछेगा कि बाहर का रास्ता कहां है। बल्कि सड़क पर चलने वाले लोग पूछेंगे कि मकान के भीतर का रास्ता कहां है?
जब कोई कौम मोक्ष की बहुत ज्यादा चिंतना करने लगे, तो समझना चाहिए वह कौम बीमार पड़ गई है। जीते जी आदमी को जीवन की चिंतना करनी चाहिए, मरने की नहीं। जब मरेंगे, तब मरेंगे। उसके पहले क्यों मर जाएं? जब मरेंगे, तब मर ही जाएंगे। तो इतनी जल्दी क्या है? पहले से मरने का इतना आयोजन क्या है?
और मेरी अपनी समझ यह है कि जो आदमी जीवन के रस को जान लेता है, वह कभी नहीं मरता। क्योंकि जीवन के रस को जानने से वह वहां पहुंच जाता है, जहां जीवन का स्रोत है, जहां परमात्मा है। और जो लोग जीवन के रस को नहीं जान पाते और जीवन के आनंद को नहीं जान पाते, वे जीते हैं तो मेरे हुए, मरने की कामना करते हुए। और मर कर भी वे कहीं नहीं पहुंचते। क्योंकि करेगा कौन? करीब-करीब पहले ही मरे हुए थे, मरने का भी उपाय नहीं है। मरते भी तो वे हैं, जो जीते हैं। हम मर भी तो नहीं सकते ठीक से, क्योंकि ठीक से हम जीए ही नहीं।

ठीक से जीने वाला, ठीक से मर भी सकता है। और मेरी दृष्टि में ठीक से जीना भी एक आनंद है और ठीक से मरना भी एक आनंद है।
लेकिन न जीवन कोई आनंद है, न मरना कोई आनंद है। सब एक बोझ हो गया है। क्या एक-एक आदमी के सिर पर यह बोझ दिखाई नहीं पड़ता? एक बच्चा पैदा होता है और हम बोझ उसके सिर पर रख देते हैं। पैदा होते ही हम बोझ सिर पर रख देते हैं। उसको हम धार्मिक शिक्षा इत्यादि-इत्यादि अच्छे नाम बोलते हैं, कि हम धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं। हर बूढ़ा आदमी यही चाहता है कि दुनिया में कोई बच्चा पैदा न हो, बच्चे की तरह सब बूढ़े पैदा हों।
रवींद्रनाथ ने एक छोटा सा स्कूल खोला था सबसे पहले, जहां अब शांति निकेतन है। रवींद्रनाथ के पास कोई बच्चे भेजने को राजी नहीं हुआ, क्योंकि रवींद्रनाथ वहां जीवन की शिक्षा देना चाहते थे। और लोगों ने कहाः जीवन की शिक्षा! शिक्षा तो मोक्ष की होनी चाहिए, तब लोग सुधरेंगे। और रवींद्रनाथ विश्वास योग्य आदमी न मालूम पड़े। सुंदर कपड़े पहनते है। अगर नंगे होते, लंगोटी लगाते, तो ख्याल आता कि यह आदमी ठीक है। बड़े-बड़े बाल रखते हैं, आईने के सामने आधा-आधा घंटे बाल संवारते हैं।
एक बार गांधी जी रवींद्रनाथ के पास ठहरे हुए थे। दोनों घूमने जाते थे सांझ को। रवींद्रनाथ ने कहाः दो क्षण ठहरें, मैं थोड़े बाल संवार आऊं। गांधी के तो बर्दाश्त के बाहर हो गया, कोई कहे बाल संवार आऊं। बाल संवारने की जरूरत है? पहली तो बात, बाल रखने की जरूरत नहीं है। लेकिन रवींद्रनाथ से कुछ कह भी न सके एकदम से। रवींद्रनाथ भीतर चले गए। सोचा था जल्दी लौट आएंगे, लेकिन दस मिनट बीत गए हैं, उनका कोई पता नहीं हैं। वे तो लीन हो गए हैं आईने में। पंद्रह मिनट बीत गए हैं, गांधी की सामर्थ्य के बाहर हो गया। त्यागी की सामर्थ्य बहुत कम होती है। त्याग के लिए तो बहुत होती है, जीवन के रस के लिए बहुत कम होती है। खिड़की से झांक कर देखा, रवींद्रनाथ तो जैसे कि कहीं खो गए हैं, आदमकद आईने के सामने बाल संवारे जाते हैं। गांधी जी ने कहा, क्या कर रहे हैं बुढ़ापे में? चलिए अब? उनकी आंखों में दिखाई पड़ गया होगा रवींद्रनाथ को, रवींद्रनाथ हंसते हुए बाहर आए। गांधी जी ने कहा, इस उम्र में और इतना बाल संवारते हैं?
रवींद्रनाथ ने कहाः जब जवान था, बिना संवारे भी चल जाता था, तब ऐसे भी निकल पड़ता था, तब ऐसे भी सुंदर था, अब संवारना पड़ता है। और रवींद्रनाथ ने कहा कि किसी को मैं कुरूप मालूम पडूं, तो इसे मैं हिंसा मानता हूं। किसी को सुंदर मालूम पडूं, अच्छा लगूं, इसे मैं अहिंसा मानता हूं। किसी को कुरूप लगना भी तो चोट पहुंचाना है। लेकिन यह जीवन का रस वाला कहेगा। किसी को कुरूप लगना भी तो उसको दुख पहुंचाना है, किसी को सुंदर लगना भी तो उसे सुख पहुंचाना है। लेकिन यह जीवन का रस वाला कहेगा।
इस रवींद्रनाथ ने जब पहली दफा स्कूल खोला तो कोई भरोसे का आदमी नहीं
था यह। तो कौन इसके पास अपने बच्चों को भेजे? डर यही था कि बच्चे बिगड़ न जाएं? क्योंकि रवींद्रनाथ वीणा बजाएंगे, नाचेंगे, गीत गाएंगे। बच्चे क्या सीखेंगे? ये सब नाचना और गीत गाना और संगीत, यह सब ठीक बातें नहीं हैं। ये अच्छे लोगों के लक्षण नहीं हैं। फिर भी कुछ मित्रों ने बच्चे दिए। लेकिन बच्चे ऐसे थे, जो पहले ही इतने बिगड़ चुके थे कि रवींद्रनाथ उनको बिगाड़ नहीं सकते थे। इस आशा में दिए कि इनको तुम क्या बिगाड़ोगे? दस-पंद्रह-बीस बच्चों को लेकर रवींद्रनाथ ने वहां स्कूल शुरू किया।
बंगाल के एक बहुत बड़े विचारक थे, उन्होंने भी अपना बच्चा दिया हुआ था।
वे तीन-चार महीने बाद देखने गए कि क्या हालत है। देखा एक चेरी के वृक्ष के नीचे क्लास लगी हुई है। रवींद्रनाथ टिक कर बैठे हुए हैं। पांच-सात बच्चे नीचे बैठे हुए हैं, पंद्रह-सोलह बच्चे ऊपर वृक्ष पर चढ़े हुए हैं। फल पक गए हैं, बच्चे फल खा रहे हैं। पांच-सात बच्चे नीचे बैठे हैं। किताब बंद है, रवींद्रनाथ आंखें बंद किए बैठे हैं। यह क्लास लगी हुई है। क्रोध से भर गए वह मित्र, जाकर हिलाया रवींद्रनाथ को और कहा, यह क्या हो रहा है? यह स्कूल है? यह क्लास लगी हुई है? यह पढ़ाई हो रही है? यह क्या है कि लड़के ऊपर चढ़े हैं? रवींद्रनाथ ने कहा कि मैं भी दुख अनुभव कर रहा हूं, लेकिन जो ऊपर चढ़े हैं उनके लिए नहीं, जो नीचे बैठे हैं उनके लिए। फल पक गए हैं, और फल बुला

रहे हैं। मैं बूढ़ा हो गया, चढ़ नहीं सकता हूं, लेकिन आत्मा मेरी वही है। मैं इन बच्चों के लिए हैरान हो रहा हूं कि ये पांच-सात बच्चे किताबें खोलें क्यों बैठे हैं? जब फल बुला रहे हों और जब चढ़ने की ताकत हो, तब जो नीचे रह जाए, वह रुग्ण है, अस्वस्थ है, बीमार है। मैं इन बच्चों के लिए चिंतित हूं। आंख बंद करके मैं इन्हीं के लिए सोच रहा था कि क्या करूं कि ये भी वृक्ष पर चढ़ जाएं। लेकिन जिन्होंने फलों की पुकार नहीं सुनी, वे मेरी पुकार सुनेंगे?
यह जो जीवन को जीने की कला, कुछ और तरह की शिक्षा होगी। जीवन को जीने
का मार्ग बच्चों को किसी और दिशा में दीक्षित करेगा। लेकिन हम अब तक जो करते रहे हैं, वह जीवन की कला नहीं है, वह जीवन से भागने की कला है। छोटे- छोटे बच्चों को दीक्षा दी जाती है मुल्क में, इससे बड़ा कोई अपराध नहीं हो सकता।
एक संन्यासी मेरे पास मेहमान थे। उनकी उम्र होगी कोई बावन वर्ष। मेरे पास दो-चार दिन रहे, मेरी बातें समझीं, तो सरल हो गए। सीधी-सीधी बात करने लगे और मुझ से बोले कि मैं कई अड़चनों में हूं, क्योंकि जब मैं बारह साल का था, तब मुझे दीक्षा दी दे गई और मैं संन्यासी हो गया। और मेरी बुद्धि बारह साल पर ही अटक कर रह गई, क्योंकि उसके बाद मैंने कुछ अनुभव नहीं किया। जिंदगी के सब अनुभव मेरे लिए वर्जनीय हो गए। तो मैंने कहाः फिर भी तुम मुझे कहो कि तुम्हें कौन-कौन से अनुभव की इच्छा है? तो उन्होंने कहाः और सब तो बाद में कहूंगा, सबसे पहले तो मुझे सिनेमा देखना है। मैंने कहाः यह क्या कहते हैं आप? सिनेमा! उन्होंने कहा कि मैं बड़ा हैरान रहता हूं, मैं किसी टॉकीज के भीतर अब तक नहीं गया। दरवाजों पर भीड़ लगी दिखती है, टिकट घर के सामने क्यू लगा हुआ है, हजारों लोग क्या देख रहे हैं? वहां क्या है? मैं एक बार भीतर जाकर देखना चाहता हूं।
यह बारह साल के बच्चे की जिज्ञासा है, यह बावन साल के बुद्धिमान आदमी
की जिज्ञासा नहीं है। लेकिन क्रोध किस पर किया जाए, इस आदमी पर या उन नासमझों पर जिन्होंने इसे बारह साल में दीक्षा करके और संन्यासी बना दिया?
मैंने पड़ोस के एक मित्र को बुलाया और उनसे कहा कि इन्हें आप ले जाकर
आज टॉकीज दिखा लाएं। उन्होंने कहाः क्षमा करिए, जिस धर्म को मैं मानता हूं उसी धर्म के ये संन्यासी हैं। और अगर किसी ने मुझे देख लिया कि मैं इनको लेकर आया, तो मैं भी झंझट में पड़ जाऊंगा। अगर ये कोट-पतलून पहनने को राजी हों, तो मैं कोट-पतलून ले आता हूं। यह इनका डंड-कमंडल लेकर में नहीं ले जा सकता हूं।
कोट-पतलून पहनने को वे राजी न हुए। क्योंकि उन्होंने कहाः अगर कोई कोट-पतलून पहने हुए देख ले, तो फिर बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर मैंने कहाः फिर भी कोई रास्ता निकालो? क्योंकि इनकी इतनी सरल सी जिज्ञासा पूरी न हो पाए, तो ये मोक्ष नहीं जा सकेंगे। मरते वक्त भी जब चारों तरफ मोक्ष की चर्चा चल रही होगी, तब ये किसी सिनेमा, टॉकीज के आस-पास घूमते होंगे। चित्त वहां घूमता है जहां अटका रह जाता है। जिसे हम नहीं जान पाते, चित्त वहीं अटका रह जाता है।
जीवन जानने योग्य है, ताकि हम जीवन से ऊपर उठ सकें, जीवन में गहरे जा सकें। जीवन भागने योग्य नहीं है। भागा हुआ आदमी जीवन से गहरे भी नहीं जाता, ऊपर भी नहीं जाता, वहीं अटक जाता है जहां से भाग जाता।
मैंने मित्र को कहाः कुछ भी करो, यह बड़ा पुण्यकारी है, तुम इन्हें ले जाओ। बामुश्किल वे राजी हुए। फिर उन्होंने कहा कि फिर भी मैं इनको कंट्रोनमेंट एरिया में ले जा सकता हूं। वहां अंग्रेजी की फिल्म चलती है। वहां हिंदी के देखने वाले नहीं होते। और मेरी जाति के लोग सब बाजार में रहते हैं, वहां कोई जाता-वाता नहीं। और वहां जाते भी हैं तो वे ऐसे लोग जाते हैं जो बिगड़ चुके हैं। इनको मैं वहां ले जा सकता हूं। पर वे कहने लगे, वे संन्यासी अंग्रेजी नहीं जानते। वे कहने लगे, अंग्रेजी मैं नहीं जानता हूं। फिर भी मैंने कहाः कोई हर्ज नहीं, फिल्म तो देख ही लेंगे आप। यह तो पता चल जाएगा कि क्या है।

वे अंग्रेजी फिल्म ही देखने गए। लौट कर मुझसे कहने लगे, मेरे मन का इतना बोझ उतर गया, मैं भी कैसा पागल था, वहां तो कुछ भी न था।
लेकिन मैंने कहाः यह जान कर ही जाना जा सकता है। यह बिना जाने नहीं जाना जा सकता। और किसी दूसरे के कहने से भी नहीं जाना जा सकता। अब तुम जाकर किसी बच्चे को दीक्षा मत दे देना। उससे कहना कि तू जान ले। और जानने से ही जीवन में धीरे-धीरे एक फूल खिलता है जो संन्यास का है। वह संन्यास भागा हुआ नहीं होता। वह जीवन के रस और संगीत से ही आया हुआ होता है। तब वह संन्यास हंसता हुआ होता है। तब वह रोता हुआ नहीं होता। तब वह संन्यास जीवंत होता है, लिविंग होता है, तब वह डेड नहीं होता।
भारत अपने बाहर के जीवन की कोई समस्या हल नहीं कर पाया। और इसलिए भारत अपनी भीतर के जीवन की भी कोई समस्या हल नहीं कर पाया है। क्योंकि जो बाहर की ही समस्याएं हल नहीं कर सकते, वे भीतर की समस्याएं कैसे ही कर सकेंगे। बाहर की समस्याएं बहुत सरल हैं। हम वहीं हार गए। भीतर की समस्याएं बहुत जटिल हैं, हम वहां कैसे जीतेंगे?
जो समाज विज्ञान पैदा नहीं कर पाया, मैं आपसे कहना चाहता हूं, वह समाज धर्म भी पैदा नहीं कर सकता हैं। क्योंकि धर्म तो परम विज्ञान है, वह तो सुप्रीम साइंस है। जो अभी पदार्थ के ही नियम नहीं खोज पाया, वह परमात्मा के नियम नहीं खोज सकता है। जो अभी बाहर के ही जगत को नहीं समझ पाया, वह भीतर के जगत को भी नहीं समझ सकता है।
पहले विज्ञान, फिर धर्म। पहले विज्ञान का जन्म हो, तो ही एक वैज्ञानिक धर्म का जन्म हो सकता है। अन्यथा धर्म सिर्फ एक पलायन होगा, भागना होगा, बचाव होगा। समस्याओं से भागना, और तब धर्म एक जहर और अफीम का काम करता है। वह मार्क्स ने गलत नहीं कहा है कि धर्म अफीम का नशा है। वह है। यह धर्म अफीम का नशा है।
लेकिन मार्क्स गलत कहेगा, अगर वह कहे कि ऐसा धर्म हो ही नहीं सकता, जो अफीम का नशा न हो।
ऐसा धर्म हो सकता है। लेकिन वह वैज्ञानिक चिंतन से पैदा होता है। वह विज्ञान की ही प्रक्रिया को अंतर्जगत में लगाने से उपलब्ध होता है। विज्ञान एक मेथडालॉजी है, विज्ञान एक विधि है। अगर बाहर की तरफ लगाओ
तो पदार्थ के राजों को वह जान लेती है और अगर भीतर की तरफ लगाओ तो परमात्मा के राज को वह जान लेती है। बाहर से भीतर की तरफ भागना नहीं है, बाहर से भीतर की तरफ विकसित होना है। इन दोनों बातों के भेद को ठीक से समझ लेना चाहिए। बाहर से भीतर की तरफ विकसित होना है, बाहर से भीतर की तरफ भागना नहीं है। पदार्थ से परमात्मा की तरफ भागना नहीं है, पदार्थ से परमात्मा की तरफ विकसित होना है। क्योंकि पदार्थ और परमात्मा एक ही चीज के दो छोर हैं, दो चीजें नहीं हैं। आत्मा और शरीर एक ही सत्ता के दो हिस्से हैं, दो चीजें नहीं हैं। दो पहलू हैं, दो चीजें नहीं हैं। बाहर का जीवन और भीतर का जीवन एक ही जीवन के दो चेहरे हैं, दो जीवन नहीं हैं। और समस्याओं को जो हल करना चाहता है, उसे समस्याओं को स्वीकृति देनी होगी, और समस्याओं की स्वीकृति से समस्याओं को हल करने के मार्ग खोजने होंगे।
यह पहली बात आपसे कहता हूं, समस्याएं सत्य हैं। तब हम सत्य समाधान खोज सकते हैं। और जो प्रतिभा समस्याओं के सत्य को स्वीकार कर लेती है, वह बड़ी चुनौती स्वीकार करती है, बड़ा चैलेंज। क्योंकि फिर, यह ध्यान रहे, जिस समस्या को हम स्वीकार करते हैं, जब तक वह हल न हो जाए तब तक हमारे प्राणों को चैन नहीं मिलती। जो समस्या स्वीकृत हो जाएगी, वह चैलेंज बन जाती है प्राणों के लिए कि उसे हल करो। और अगर हमने समस्या को कह दिया, वह झूठ है, चुनौती खत्म हो गई। फिर हल करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जितनी ज्यादा समस्याएं हम स्वीकार करेंगे, उतनी ही ज्यादा हमारी प्रतिभा विकसित होगी उन्हें हल करने में। और यह भी ध्यान रहे, प्रतिभा हल करने में ही विकसित होती है। सामर्थ्य जूझने से विकसित होती है। चुनौती से सोई हुई शक्तियां जागती हैं। जितनी बड़ी चुनौती, उतनी ही बड़ी भीतर की शक्तियां जाग्रत होती हैं।

भारत ने बाहर की चुनौती इनकार करके भीतर की प्रतिभा को सो जाने का मौका दिया है। भारत के प्राण सो गए हैं। इसलिए बाहर की सारी समस्याएं सत्य हैं, यथार्थ हैं। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि वे ही यथार्थ हैं, और यथार्थ भी है, जो उनसे गहरा और ऊपर भी है। लेकिन जो इसी के यथार्थ को नहीं जान पाता, वह उस यथार्थ को कैसे जान पाएगा?
इसलिए भागना नहीं है, जीवन की एक-एक समस्या को हल करना है। और जितनी समस्याएं हल हो जाती हैं, हमारी प्रतिभा उतनी श्रेष्ठतर और ऊपर उठ जाती है। हम और बड़ी समस्याओं को हल करने के योग्य बन जाते हैं। लेकिन अभी उलटी हालत है। हमसे छोटी समस्याएं हल नहीं होतीं और बड़ी समस्याओं को हल करने का हम विचार करते रहते हैं। साइकिल का पंचर भी जोड़ नहीं सकते और परमात्मा की बातें करते रहते हैं। अजीब सी स्थिति है। और यह धोखा भी हमें नहीं दिखाई पड़ता कि हम एक सेल्फ-डिसेप्शन में, एक आत्म-प्रवंचना में पड़े हुए हैं। इसलिए पहला सूत्रः जीवन यथार्थ है; शरीर यथार्थ है; पदार्थ यथार्थ है। जीवन की सारी समस्याएं यथार्थ हैं।
और जो कहते हैं कि जीवन माया है, वे गलत कहते हैं, क्योंकि वे जीवन को
हल करने का मार्ग नहीं बताते। जीवन में नशे में डूब जाने, अफीम पी लेने की व्यवस्था करते हैं। और जब तक हम इन्हीं लोगों से पूछे चले जाएंगे, जब तक भारत की प्रतिभा साधु-संन्यासियों से ही पूछे चली जाएगी, तब तक भारत बार-बार हारा, बार-बार पराजित हुआ, बार-बार दुखी हुआ, बार-बार दांव चुक गया, आगे भी दांव चुकता जाने वाला है। साधुओं से नहीं, जीवन से भागे हुए लोगों से नहीं, जीवन के संघर्ष में उतरी हुई वैज्ञानिक प्रतिभा से हमें पूछना पड़ेगा, क्या है हल? क्या है समाधान? और अगर वह प्रतिभा नहीं है, तो वह हमें पैदा करनी पड़ेगी। वह प्रतिभा पैदा होती है, कैसे हो सकती है, उन सूत्रों पर कल सुबह और परसों सुबह आपसे बात करूंगा। इस संबंध में जो भी प्रश्न हों, वह आप लिख कर दे देंगे, ताकि सांझ उनकी बात हो सके।

नये भारत की खोज
दूसरा प्रवचन

वैज्ञानिक चिंतन की हवा

मेरे प्रिय आत्मन्!
सुबह की चर्चा के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं।
एक मित्र ने पूछा हैः पश्चिम से पढ़ कर आए हुए युवक विज्ञान और तकनीक
की नई से नई शिक्षा लेकर आए हुए युवक भी भारत में आकर विवाह करते हैं तो दहेज मांगते हैं। तो उनकी वैज्ञानिक शिक्षा का क्या परिणाम हुआ?

पहली तो बात यह है, जब तक कोई समाज अरेंज मैरीज, बिना प्रेम के और सामाजिक व्यवस्था से विवाह करना चाहेगा, तब तक वह समाज दहेज से मुक्त नहीं हो सकता। दहेज से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि युवकों और युवतियों के बीच मां-बाप खड़े न हों, अन्यथा दहेज से नहीं बचा जा सकता। प्रेम के अतिरिक्त विवाह का और कोई भी कारण होगा, तो दहेज किसी न किसी रूप में जारी रहेगा।
दहेज हमेशा जारी रहा है। कुछ समाजों में लड़कियों की तरफ से दहेज दिया जाता रहा है, कुछ समाजों में लड़कों की तरफ से भी दहेज दिया जाता रहा है। लेकिन दहेज दुनिया में जारी रहा है, क्योंकि विवाह की जो सहज प्राकृतिक व्यवस्था हो सकती, वह हमने स्वीकार नहीं की। समाज अब तक प्रेम का दुश्मन सिद्ध हुआ है। वह कहता है, बिना प्रेम के, सोच-विचार करके मां-बाप तय करेंगे, पंडित-पुरोहित तय करेंगे कि विवाह हो। जब तक पंडित-पुरोहित, कुंडली, जन्म और इन सारी बातों को देख कर और मां-बाप विवाह तय करेंगे, तब तक दहेज जारी रहेगा।
क्यों? क्योंकि जहां प्रेम नहीं है वहां पैसे के अतिरिक्त और किसी चीज से संबंध नहीं होता। या तो दो व्यक्तियों के बीच में प्रेम हो तो पैसा खड़ा नहीं होता और अगर प्रेम न हो तो पैसा ही एकमात्र संबंध का रास्ता रह जाता है।
सारा मुल्क इनकार करता है कि दहेज मिटाना चाहिए।
अभी कोई पंद्रह दिन हुए, प्राइमरी स्कूल के एक शिक्षक मेरे पास आए। गरीब आदमी हैं, लड़की का विवाह करना है। तो वे मुझसे कहने लगे कि एक इंजीनियर युवक से विवाह की बात चल रही है, लेकिन वह बारह हजार रुपये मांगता है। उन्होंने बहुत विरोध मेरे सामने जाहिर किया कि यह तो बहुत ज्यादती की बात है। मैंने उनसे कहा कि पहली तो बात यह है कि आप इंजीनियर लड़के से विवाह क्यों करना चाहते हैं? किसी चमार लड़के से विवाह क्यों नहीं करते? किसी मजदूर लड़के से विवाह क्यों नहीं करते? आप यह तो कहते हैं कि लड़का बारह हजार रुपये मांगता है, लेकिन लड़के को हजार रुपये महीने मिलते हैं, इसलिए आप उसके साथ विवाह कर रहे हैं। सौ रुपये वाले महीना पाने वाले लड़के से विवाह करने को आप भी राजी नहीं हैं। दुनिया में आप यह कहेंगे कि मैं तो विवाह करने को राजी हूं, लेकिन वह लड़का बारह हजार रुपये मांगता है। लेकिन आप उस लड़के की तरफ क्यों उत्सुक हुए हैं, क्योंकि उसको हजार रुपये महीने मिलते हैं। आप भी रुपये का ही विचार कर रहे हैं, वह भी रुपये का ही विचार कर रहा है।
गलती कहां है? और गलती तब तक जारी रहेगी, जब तक लड़के और लड़कियों को प्रेम से तय करने का मौका नहीं मिलता। एक बार प्रेम बीच में आ जाए, फिर पैसे का कोई सवाल नहीं है। लेकिन मां-बाप को यह बरदाश्त नहीं है। उनको दहेज बरदाश्त है, विवाह के साथ चलने वाली सारी नासमझियां बरदाश्त हैं, लेकिन प्रेम बर्दाश्त नहीं है। और प्रेम को रोकने के लिए सारा इंतजाम किया हुआ है। शिक्षकों से लेकर मां-बाप तक, युवक और युवतियों के बीच सिपाहियों की तरह तैनात हैं, उनके बीच प्रेम पैदा न हो जाए।
और बड़े मजे की बात है, वे समझते हैं कि प्रेम के पैदा हो जाने से अनैतिकता पैदा हो जाएगी। जब कि सच यह है कि जिस समाज में विवाह बिना प्रेम के होता है वह समाज बुनियादी रूप से अनैतिक हो जाता है। क्योंकि जीवन में

इससे बड़ी अनीति नहीं है कि एक व्यक्ति एक ऐसी स्त्री के साथ रहने को राजी हो जाए जिससे उसका प्रेम नहीं है। इससे ज्यादा इम्मॉरल, इससे ज्यादा अनैतिक और कोई बात नहीं हो सकती।
लेकिन अगर एक युवक और युवती में प्रेम हो और उनका बच्चा पैदा हो जाए,
तो हम कहेंगे, इल्लीगल है, नाजायज है। जब कि सच यह है, जिन पुरुष और स्त्रियों में प्रेम नहीं है और किसी पंडित ने सात चक्कर लगा कर उनका विवाह करवा दिया, उनके सब बच्चे नाजायज हैं। क्योंकि सात चक्कर लगाने से कोई बच्चा जायज नहीं हो सकता। बच्चा सिर्फ एक बात से जायज हो सकता है कि स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम का संबंध रहा हो। प्रेम के अतिरिक्त और कोई चीज जायज नहीं हो सकती। लेकिन प्रेम नाजायज है और कानून और व्यवस्था जायज है। तो जैसे ही प्रेम को बचाने की कोशिश करते हैं, पैसा उसकी जगह ले लेता है। फिर हम चाहते हैं, पैसा भी जगह न ले। यह नहीं हो सकता। यह असंभव है। इसमें कसूर विज्ञान की शिक्षा लेकर आ गए युवक का नहीं है, आपकी पूरी समाज की व्यवस्था और विवाह के संबंध में सोचने का ढंग बुनियादी रूप से गलत है-- एक बात। और दूसरी बात, जो व्यक्ति वैज्ञानिक शिक्षा लेकर आया है, जैसा मैंने सुबह कहा, वैज्ञानिक शिक्षा से कोई वैज्ञानिक नहीं हो जाता।
और ध्यान रहे, अगर आपके बेटे वैज्ञानिक शिक्षा से वैज्ञानिक हो गए, तो
आप दहेज देने से भी बड़ी मुसीबतों में पड़ जाएंगे। क्योंकि जो बच्चा वैज्ञानिक चिंतन करने लगा, वह कभी भी ऐसी लड़की से विवाह करने को राजी नहीं हो सकता जिससे उसका प्रेम नहीं है। यह बिल्कुल अवैज्ञानिक बात है। वह बेटा इस बात के लिए भी राजी नहीं हो सकता कि बाप उसके लिए पत्नी चुने। वह बेटी भी राजी नहीं हो सकती कि मां और बाप उसके लिए लड़का चुने। यह अवैज्ञानिक बात है। मां-बाप अपनी शादी चुनना, चुन नहीं पाए, वह उसका बदला अपने बेटों से ले रहे हैं।
हर आदमी को कम से कम प्रेम करने का और जिंदगी में जिसके साथ रहना है उसे चुनने का सीधा हक होना चाहिए। कोई दूसरा आदमी यह काम नहीं कर सकता। मां-बाप कितने ही समझदार हों, लेकिन समझदारी से प्रेम का कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता। गणित और हिसाब से कोई प्रेम का संबंध नहीं है। और मजे की बात यह है कि गणित में ठीक उतर कर विवाह कर लेना खतरनाक है, प्रेम में गलत उतर कर भी विवाह कर लेना ठीक है। प्रेम की गलती भी ठीक है, गणित की ठीक भी ठीक नहीं है। क्योंकि जिंदगी के रास्ते गणित के हिसाब के रास्ते नहीं हैं। लेकिन जब हमने यह हिसाब बिठा रखा है। और जो बच्चे राजी हो जाते हैं, उनके राजी हो जाने का कारण यह नहीं है कि उनको गलत शिक्षा मिली, उनके राजी हो जाने का कुल कारण इतना है कि उन्होंने विज्ञान की ऊपर से शिक्षा ले ली, भीतर से अवैज्ञानिक आदमी मौजूद है। वह जो गैर-साइंटिफिक दिमाग है, अवैज्ञानिक चित्त है, वह मौजूद है। वह शिक्षा से नष्ट नहीं होता, वह अकेली शिक्षा से नष्ट नहीं होता। उसे नष्ट करने के लिए हमारे जो मन के आधार हैं, उनको बदलना जरूरी है।
जैसे हम बच्चे को बचपन से सिखाते हैं विश्वास करो। जो बच्चा बचपन से सीखता है विश्वास करना, वह बच्चा कभी वैज्ञानिक नहीं हो सकता। क्योंकि विज्ञान का पहला सूत्र हैः संदेह करो। डाउट विज्ञान का पहला सूत्र है। और हमारी सारी शिक्षा का पहला सूत्र है, विश्वास करो। जो लड़का विश्वास करता है, बचपन से विश्वास में दीक्षित होता है, वह बच्चा स्कूल में जाता है, स्कूल का गणित का शिक्षक कहता है, दो और दो चार होते हैं, वह बच्चा इसमें भी विश्वास करता है। फिजिक्स का शिक्षक समझाता है कि जमीन में कशिश है, इसलिए चीजें जमीन की तरफ गिर जाती हैं, वह बच्चा इसमें भी विश्वास करता है। वह विज्ञान की शिक्षा लेकर लौटता है, लेकिन उसके दिमाग में डाउट पैदा ही नहीं हुआ। वह विज्ञान पर भी बिलीफ करता है। उसकी बिलीफ बदल गई है। वह गीता पर विश्वास न करके आइंस्टीन पर विश्वास करने लगा। लेकिन विश्वास करना जारी है। और जो आदमी विश्वास करता है, वह कभी वैज्ञानिक नहीं हो सकता। विज्ञान का पहला सूत्र हैः संदेह।
लेकिन न मां-बाप चाहते हैं कि बेटे संदेह करे। क्योंकि संदेह बगावती है, संदेह रिबेलियन है। अगर बेटे संदेह करेंगे तो मां-बाप का बहुत सा

ज्ञान झूठा सिद्ध होगा। और किसी आदमी का अहंकार यह मानने को राजी नहीं होता कि मेरे बेटे और मेरे ज्ञान को झूठा सिद्ध कर दे। हर बाप अपने बेटे के सामने सर्वज्ञ है। हर मां अपनी बेटी के सामने सर्वज्ञ है। हर स्कूल का शिक्षक सर्वज्ञ होने का दावा करता है। और यह सर्वज्ञता का दावा दो तरह से सिद्ध हो सकता है। एक तो यह कि यह आदमी सर्वज्ञ हो, जब कि सर्वज्ञ दुनिया में न कोई आदमी कभी हुआ है और न कभी हो सकता है। और दूसरा रास्ता यह है सर्वज्ञ सिद्ध होने का कि दूसरा सामने वाला आदमी संदेह करने वाला न हो। तो फिर हर आदमी सर्वज्ञ है।
इस दुनिया में हमने एक तरकीब जाहिर की है, शिक्षकों ने, मां-बाप ने, समाज के व्यवस्थापकों ने कि बच्चे संदेह न करें। इसलिए बचपन से ही उनको विश्वास करने का जहर पिलाया जाता, हर चीज में विश्वास करो। क्यों विश्वास करो? क्योंकि पिता कहते हैं, इसलिए विश्वास करो। क्यों विश्वास करो? क्योंकि गीता में लिखा है, इसलिए विश्वास करो। कोई पिता ने या किसी कृष्ण ने, या किसी क्राइस्ट ने, किसी महावीर ने ठेका लिया हुआ है सब आदमियों के मन का और बुद्धि का? क्यों किसी पर विश्वास करो? यह जो आथेरिटेरियन हैं, यह जो आप्तता सिखाई जाती है, यह विज्ञान विरोधी है। विज्ञान कहता, संदेह करो, सब पर संदेह करो और तब तक संदेह करो जब तक तुम खोज कर पहुंच न जाओ, किसी बात को तुम न जान लो। तो ठीक से डाउट करना विज्ञान की प्रक्रिया है।
लेकिन हिंदुस्तान में कोई बेटा संदेह करता ही नहीं। यह विज्ञान की शिक्षा लेकर आ जाता है, लेकिन उसके मन में संदेह का जन्म नहीं होता। उसका सारा मन विश्वास से ही भरा रहता है। वह वही का वही आदमी है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा हुआ है।
शिक्षा का कसूर नहीं है यह। यह जो हमारे मन की व्यवस्था है, मौलिक व्यवस्था, वह गलत है। अगर हमें इस देश को वैज्ञानिक बनाना हो, तो जिस तरह हमने अब तक विश्वास सिखाया, बिलीफ सिखाई, उसी तरह हमें अपने बेटों को, बच्चों को संदेह सिखाना पड़ेगा। हमें उन बच्चों को सिखाना पड़ेगा कि वे पूछें, जिज्ञासा करें। और जो हम नहीं जानते हैं, कहना पड़ेगा अपने बच्चों से कि हम नहीं जानते हैं। हमें खुद ही पता नहीं है। तुम जिंदगी में खोजना, हो सकता है तुम्हें पता हो जाए। और मैं आपसे कहता हूं, जो बाप झूठे ज्ञान का दावा नहीं करता अपने बेटे के सामने, बेटा जिंदगी भर उसका अनुगृहीत रहेगा। और उस पिता के प्रति उसका सम्मान सदा कायम रहेगा। क्योंकि आज नहीं कल बेटा खुद ही पता लगा लेगा कि बाप कुछ भी नहीं जानता था, लेकिन बचपन से दावे करता रहा कि मैं सब जानता हूं। और जिस दिन उसे पता चल जाएगा, उस दिन बाप सदा के लिए उसे झूठा हो जाएगा।
यह जो दुनिया में मां और बाप का आदर खत्म हो गया है, उसका कुल एकमात्र कारण है कि बच्चे जब शिक्षित होकर, बड़े होकर देखते हैं, तो पाते होंगे मां- बाप उतने ही अज्ञानी थे, जितने कोई और।
लेकिन बचपन से उन्हें धोखा दिया गया है। और हर ऐसी बात को मां-बाप ने जानने का दावा किया जिसे वे बिल्कुल नहीं जानते थे। तब श्रद्धा विलीन हो जाती है। और एक अश्रद्धा और एक अपमान पैदा हो जाता। दुनिया में मां-बाप का अपमान जारी रहेगा, जब तक मां-बाप बच्चों को धोखा देते हैं। और सब से बड़ा धोखा ज्ञान का धोखा है। किसी आदमी को हक नहीं, अगर मुझे पता नहीं है ईश्वर का, तो मुझे भूल कर कभी किसी से नहीं कहना चाहिए कि ईश्वर है। मुझे कहना चाहिए, मुझे मालूम नहीं है। कुछ लोग कहते हैं, है, कुछ लोग कहते हैं, नहीं है, मैं खुद कुछ भी नहीं जानता, मुझे कुछ भी पता नहीं है।
समझदार बाप एग्नास्टिक होगा, समझदार शिक्षक भी एग्नास्टिक होगा। वह अज्ञेयवादी होगा। वह कहेगा, जो मुझे पता नहीं है, वह पता नहीं है। वह विनम्र होगा। और यह विनम्रता जिज्ञासा पैदा करेगी और संदेह पैदा करेगी। बच्चे सोचेंगे। जरूरी नहीं कि सोचने से वे सब कुछ जान लेंगे। लेकिन जितना वे जान लेंगे, वह वैज्ञानिक होगा। जितना वे नहीं जानेंगे, वे कभी दावा नहीं करेंगे कि हम जानते हैं। वे जानने की चेष्टा करेंगे। वे नहीं जान सकेंगे, उनके बेटे जानेंगे। उनके बेटे नहीं, तो उनके बेटे जानेंगे। आगे जानने की खोज जारी रहेगी, कोई आदमी दावा कर भी नहीं सकता कि वह सब जानता

है। और जिन लोगों ने दावे किए हैं, इस जमीन पर उनसे ज्यादा खतरनाक आदमी नहीं हुए--जिन्होंने दावा किया, हम सब जानते हैं। क्योंकि उन्होंने ज्ञान की यात्रा की हत्या कर दी, छुरा भोंक दिया ज्ञान की पीठ में। उसके बाद फिर ज्ञान का बढ़ना मुश्किल हो गया।
तो हमें मन के आधार बदलने पड़ेंगे। इसमें शिक्षा का सवाल नहीं है बहुत। बचपन से ही, पहले दिन से ही संदेह का बीजारोपण होना चाहिए और स्कूल में भी संदेह के बीजारोपण को सहारा मिलना चाहिए। शिक्षक भी सहारा नहीं देता, युनिवर्सिटी के प्रोफेसर भी सहारा नहीं देते। दूसरों की तो हम बात छोड़ दें, जो लोग तर्क शास्त्र पढ़ाते हैं, वे शिक्षक भी संदेह नहीं सिखाते, वे शिक्षक भी विश्वास करना सिखाते हैं।
मैं खुद एक युनिवर्सिटी में तर्कशास्त्र पढ़ता था। जो शिक्षक मुझे तर्कशास्त्र सिखाते थे, वे भी मुझसे यह कहते थे कि हम कहते हैं इसलिए मान लो। मैंने कहाः मैं दुनिया में सबकी मान लूंगा, लेकिन लॉजिक के शिक्षक की तो नहीं मान सकता। तुम्हें तो मुझे तर्क से सिद्ध करना पड़ेगा, क्योंकि में तर्क सीखने आया हूं। आठ महीने लग गए, एक इंच आगे बढ़ना नहीं हुआ, क्योंकि वे कुछ भी सिद्ध करने में समर्थ नहीं थे। और मैंने कहा, सिद्ध नहीं कर सकते हैं, तो लॉजिक की क्लास बंद कर देनी चाहिए। कहना चाहिए, कुछ सिद्ध हो नहीं सकता, इसलिए लॉजिक बेमानी है। आखिर उन्होंने इस्तीफा लिख कर दे दिया। कि या तो मैं पढूं या वे पढ़ाएं। दो में से एक ही काम हो सकता है। मुझे उस युनिवर्सिटी से निकल जाना पड़ा, क्योंकि युनिवर्सिटी उन पुराने शिक्षक को निकालने को राजी नहीं हुई। मैंने वाइस चांसलर को कहा कि तुम्हारा यह विश्वविद्यालय कभी भी वैज्ञानिक शिक्षा का गढ़ नहीं बन सकता, हमेशा अवैज्ञानिक शिक्षा का गढ़ रहेगा। क्योंकि तुम एक बिल्कुल ज्यादती की बात कर रहे हो। तर्कशास्त्र का शिक्षक कहता कि तर्क नहीं किया जा सकता। तो फिर तो मुश्किल हो गई। तो फिर धर्मशास्त्र का शिक्षक कैसे तर्क करने देगा? तर्कशास्त्र का शिक्षक यह कहता है कि आर्ग्यु मत करो, हम जो कहते हैं, जो किताब में लिखा है वह मानो। अरस्तू ने जो कहा है दो हजार साल पहले, वह सच है। अरस्तू को मरे दो हजार साल हो गए। अरस्तू की बहुत सी नासमझियां जाहिर हो गई हैं। अरस्तू बहुत से मामलों में इतना कम जानता था, जितना हमारा प्राइमरी स्कूल का बच्चा ज्यादा जानता है। लेकिन वह दो हजार वर्ष पुरानी किताब लेकर बैठे हैं कि अरस्तू ने जो कुछ लिखा है, वह तर्क के अंतिम नियम हो गए। तो फिर अरस्तू के साथ दुनिया को मर जाना चाहिए था। आगे जिंदा रहने की कोई जरूरत नहीं रह गई।
और अरस्तू ने जो लिखा है, हम सोचें, ठीक हो, मानें, न ठीक हो, न मानें। अरस्तू की दो औरतें थीं, लेकिन अरस्तू ने अपनी किताब में लिखा है कि पुरुषों के दांत स्त्रियों से ज्यादा होते हैं। यूनान में यह अफवाह थी कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। असल में पुरुष मानने को राजी नहीं होता कि स्त्रियों में कुछ भी पुरुष से ज्यादा हो सकता है। दांत भी ज्यादा कैसे हो सकते हैं? स्त्रियों में दांत कम होने ही चाहिए। और स्त्रियां तो नासमझ हैं, उन्होंने अपने दांत कभी गिने नहीं। और पुरुष गिनते क्यों? और अरस्तू की दो औरतें थीं, एक भी नहीं। कभी भी बिठा कर मिसेस अरस्तू को कह सकता था कि जरा दांत गिनूं तुम्हारे। वे दांत उसने नहीं गिनें। लिखा किताब में, स्त्रियों के दांत कम होते हैं। और आज भी उसकी किताब में यही लिखा है। लेकिन अगर आज मुझसे कोई कहे कि यह मान लो, अरस्तू ने कहा है, तो मैं कहता हूं, इतनी स्त्रियां हैं, किसी के भी दांत गिन लो। स्त्रियों के दांत सिद्ध करेंगे कि स्त्रियों के दांत सही हैं कि अरस्तू की किताब सही है। अरस्तू का कहना सिद्ध नहीं कर सकता।
लेकिन मेरे तर्कशास्त्र के शिक्षक नाराज हो गए। उन्होंने कहा, क्या तुम अरस्तू से ज्यादा समझदार होने का दावा करते हो? मैंने कहा, मैं यह दावा नहीं करता। मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि अरस्तू ने स्त्रियों के दांत नहीं गिने, मैं गिनने का दावा करता हूं। और मैं गिन कर कहता हूं कि दांत बराबर हैं। अरस्तू ने जो लिखा है, वह गलत लिखा है।

लेकिन तर्कशास्त्र भी नहीं सिखाता, तब तो फिर बड़ी मुश्किल हो गई। तो विज्ञान कैसे पैदा होगा? विज्ञान पैदा होता है चिंतना से। चिंतना पैदा होती है संदेह से। संदेह पैदा होता है जिज्ञासा की शिक्षा से। तो जिज्ञासा की शिक्षा चाहिए कि बच्चे पूछ सकें। बच्चे पूछते हैं, क्योंकि हर बच्चा संदेह लेकर पैदा होता है। संदेह परमात्मा का सबसे बड़ा वरदान है। हर बच्चे में परमात्मा संदेह का बीज रोपता है, क्योंकि संदेह के बीज से ही ज्ञान का वृक्ष विकसित होगा।
लेकिन समाज ज्ञान नहीं चाहती, समाज अज्ञानी लोगों की भीड़ चाहती है। पुरोहित, धर्मगुरु, राजनेता, सब तरह के शोषक, वे सब चाहते हैं कि भीड़ अज्ञानी हो। क्योंकि जिस दिन ज्ञान विस्तीर्ण होगा, उसी दिन बगावत शुरू हो जाएगी।
तो भगवान तो हर आदमी में संदेह पैदा करता है। बच्चा तो जन्म से ही संदेह करने लगता है। वह पूछता है, ऐसा क्यों है? यह वृक्ष हरा क्यों है? ये बच्चे कहां से पैदा होते हैं? यह सब दुनिया कहां से आई? चांद कितने दूर है? चांद को हम हाथ में ले सकते या नहीं ले सकते? और बाप डांट-डांट कर कहता है कि चुप रहो, बकवास बंद करो। हम जानते हैं, तुम अभी कुछ भी नहीं जानते हो। हम जो कहते हैं, वह ठीक है। बच्चे की जिज्ञासा की हत्या की जाती है। फिर विज्ञान कैसे पैदा होगा? फिर विज्ञान पैदा नहीं हो सकता। बच्चे की जिज्ञासा बढ़ाई जानी चाहिए। लेकिन धर्मगुरु सदा से ज्ञान के दुश्मन रहे हैं।
बाइबिल की कहानी आपने सुनी होगी। आपने सुना होगा कि आदम को ईदन के बगीचे से क्यों निकाला गया? उसे इसलिए निकाला गया, कि बड़ी मजेदार कहानी पुरोहितों ने लिखी और वह कहानी यह लिखी है कि भगवान ने ईदन के बगीचे में आदम को कहा, तुम खूब मजे से रहो, आनंद से रहो, जीवन भोगो। लेकिन एक बात ख्याल रखना, एक झाड़ हैः ट्री ऑफ नालेज, एक ज्ञान का वृक्ष है, तुम उसके फल मत चखना। बस उसके फल चखे कि हम तुम्हें निकाल बगीचे के बाहर कर देंगे। यह बड़े मजे की बात भगवान ने की। भगवान ज्ञान का दुश्मन मालूम होता है। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि भगवान को पता नहीं होगा कि यह कहानी पुरोहितों ने गढ़ी है। पुरोहित ज्ञान के दुश्मन हैं। लेकिन रोक दिया अदम को कि मत खाना... । अब जिस चीज से रोका जाए, उसकी तरफ मन होना स्वाभाविक है। तो अदम के मन में टेम्पटेशन शुरू हो गया होगा। स्वाभाविक।
अगर पूना में एक वृक्ष हो और सारे लोगों को कह दिया जाए, इस वृक्ष के
फल मत खाना, और सब खाओ, तो और सारे वृक्ष बेकार हो जाएंगे, उसी वृक्ष की तरफ सारे लोग चल पड़ेंगे कि उसके फल खाकर देख लेना चाहिए कि मामला क्या है? पुरोहित कहते हैं, शैतान ने आदम को भड़काया। शैतान ने नहीं भड़काया। आदम की जिज्ञासा, आदम का संदेह, आदम जानना चाहता है कि ज्ञान का फल क्या है? कोई शैतान नहीं है कहीं। लेकिन पुरोहित कहते हैं, संदेह शैतान है। तो वे कहते हैं, जो संदेह करेगा, वह भटक जाएगा। और विज्ञान कहता है, जो संदेह करेगा वही सत्य को जान सकता है। इसलिए पुरोहित और विज्ञान के बीच एक दुश्मनी है, जो पूरी कभी नहीं हो सकती। जब तक पुरोहित है तब तक विज्ञान नहीं हो सकेगा और अगर विज्ञान होगा तो पुरोहित को विदा हो जाना पड़ेगा। तो पुरोहितों ने कहा कि ज्ञान का वृक्ष मत चखना।
आदम के मन में जिज्ञासा हुई होगी। स्वाभाविक। जिस चीज को इनकार किया जाता उसकी जिज्ञासा पैदा होती है। आदम तो भोले बच्चे की तरह रहा होगा। वह पहला आदमी, वह गया और उसने ज्ञान का फल चख लिया और फिर उसको निकाल बाहर कर दिया। और ईसाई पुरोहित कहते हैं कि उसी ज्ञान के फल चखने के पाप के कारण आदमियत अब तक कष्ट भोग रही हैं। हम जो कष्ट भोग रहे हैं, वह ज्ञान का फल चखने के कारण भोग रहे हैं। अगर हम पुरोहितों की मान लें और ज्ञान को जला डालें तो हम सब बड़े आनंद में हो जाएंगे, क्योंकि हम सब मूढ़ हो जाएंगे। मूढ़ तो आनंद में होता ही है। क्योंकि मूढ़ को दुख का भी पता नहीं चलता। मूढ़ तो मूढ़ है, वह बगावत भी नहीं करता। इसलिए दुनिया के पुरोहित समझदार हैं। ज्ञान मत बढ़ने दो। और ज्ञान बढ़ता है जिज्ञासा से। जिज्ञासा पैदा होती है संदेह से। इसलिए संदेह के बीज को नष्ट कर दो, उसे जला डालो। हिंदुस्तान

में कितने हजारों वर्षों से शूद्र हैं। करोड़ों शूद्र हैं, लेकिन कोई बगावत नहीं हो सकी शूद्रों की। क्यों? क्योंकि हिंदुस्तान के ब्राह्मणों ने बहुत होशियारी की। उन्होंने ज्ञान से शूद्रों को वंचित कर दिया। जहां ज्ञान वंचित हुआ, वहां बगावत नष्ट हो जाती है। शूद्र कोई बगावत नहीं कर सके, कोई विद्रोह नहीं कर सके। उनको मूढ़ता में रखा गया, इग्नोरेंस में रखा गया। उन्हें पढ़ने का हक नहीं। पढ़ना तो दूर, उन्हें धर्मशास्त्र का शब्द सुनने का हक नहीं।
गांधी जी जिन राम के राज्य को आने की चर्चा करते थे, कहानी यह कहती है
कि उन राम ने ही एक शूद्र के कानों में शीशा पिघलवा कर भरवा दिया, क्योंकि उसने एक मकान के पास से निकलते हुए, मकान के भीतर ऋषि पड़ रहे थे वेद, उसने खड़े होकर वेद के वचन सुन लिए। यह पाप है। शूद्र को ज्ञान का हक नहीं है। ऐसा राम-राज्य गांधी जी हिंदुस्तान में लाना चाहते थे। वहां शूद्रों के कानों में शीशा पिघलवा कर भरवाया जाएगा, क्योंकि शूद्र को ज्ञान का हक नहीं हो सकता। शूद्र को ज्ञान का हक क्यों नहीं है? इसलिए नहीं है कि जिस दिन शूद्र को ज्ञान मिला, उसी दिन उपद्रव शुरू हो जाएगा। उपद्रव शुरू हो गया। अंग्रेजों ने शूद्रों को शिक्षा दी, और उपद्रव शुरू हो गया। डा.अंबेदकर भारत के पूरे हजारों साल के इतिहास में पहला शूद्र है जो ठीक से शिक्षित हुआ। कोई शूद्र शिक्षित नहीं हो सका। इसलिए शूद्रों की लंबी कथा में एक भी नाम नहीं है, जो आप लेकर बता सकें कि हम नाम भी ले सकें कि कोई एक नाम पैदा हुआ हो प्रतिभाशाली, कोई एक व्यक्ति पैदा हुआ हो।
नहीं हो सका। कैसे होगा? शूद्रों में बगावत भी पैदा नहीं हुई।
इसी तरह स्त्रियों को शिक्षा से वंचित किया गया कि स्त्रियों को शिक्षा मत मिलने दो, अन्यथा बगावत हो जाएगी। इसलिए सारे पुरुषों ने यह साजिश की कि स्त्री शिक्षित न हो पाए। इसलिए दुनिया में स्त्री को अशिक्षित रखा गया। अशिक्षित स्त्री का मालिक हुआ जा सकता है। शिक्षित स्त्री का नहीं। शिक्षित स्त्री का मालिक होना कठिन है, क्योंकि कोई भी शिक्षित व्यक्ति किसी को मालिक मानने को राजी नहीं हो सकता। शिक्षित व्यक्ति अपना खुद मालिक हो सकता है। दूसरे को मालिक नहीं होने देगा। मालकियत गंदगी है और मालकियत दासता है। और पुरुष को पति होना, पति का मतलब होता हैः मालिक, स्वामी। स्त्रियां लिखती हैं चिट्ठी के नीचे, आपकी दासी। और पतिदेव बहुत प्रसन्न होते हैं। और स्त्रियां भी सोचती हैं कि बड़े प्रेम की बात लिख रही हैं। अब दासी में और स्वामी में कभी प्रेम हो सकता है? प्रेम होता है दो समान स्तर के लोगों में। दासियों और स्वामियों में क्या प्रेम हो सकता है?
पुरुष को पति होने में बहुत रस है। इसलिए तो हम देश के प्रधान को राष्ट्रपति कहते हैं। राष्ट्रपत्नी अगर कोई स्त्री बन गई तो कहने को हम राजी नहीं होंगे। कोई स्त्री राजी नहीं होगी कि राष्ट्रपत्नी! ऐसा कैसे हो सकता है? लेकिन राष्ट्रपति? राष्ट्रपति हो सकते हैं आप। क्योंकि पुरुषों की यह दुनिया है, पुरुषों ने यह दुनिया बनाई है। स्त्री एतराज नहीं करती कि राष्ट्रपति का क्या मतलब होता है। सबके पति। कोई स्त्री एतराज नहीं करती कि हम राष्ट्रपति नहीं मान सकते किसी आदमी को। क्योंकि पति के संबंध में हमारी धारणा ही भूल गई कि वह स्वामी होने की बात है। लेकिन पुरुष को अगर स्वामी रहना है तो स्त्री को अशिक्षित रखना पड़ेगा। इसलिए स्त्रियों की सारी शिक्षा बंद कर दी। उन्हें अशिक्षित रखा गया। अशिक्षित स्त्रियां विद्रोही नहीं हो सकतीं। पश्चिम में भूल हो गई पुरुषों से। स्त्रियों को शिक्षा दी और बगावत शुरू हो गई। हिंदुस्तान में भी बगावत होगी। स्त्रियां शिक्षित होंगी और बगावत होगी।
इसी मित्र ने एक बात और पूछी है, उन्होंने पूछा है कि स्त्रियां भी शिक्षित हो जाती हैं, फिर वे कुछ नहीं करतीं। सिर्फ गहने पहनती हैं, अच्छी साड़ियां पहनती हैं, और घरों में बैठ कर गपशप करती हैं और कुछ भी नहीं करती हैं।
वे गपशप करेंगी, और गहने पहनेंगी और साड़ियां पहनेंगी, क्योंकि पुरुषों ने सिवाय इसके उन्हें कुछ भी नहीं सिखाया। पुरुषों ने उन्हें

गुड्डियां बनाना सिखाया है। आदमी बनने की हिम्मत उनमें नहीं है। कोई स्त्री गुड्डी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। और स्त्री जब गहने पहनती है, तो आप यह मत समझना कि स्त्री पहनती है। स्त्री गहने पहनती है, लेकिन इज्जत पति को मिलती है। और पति चाहता है कि स्त्री गहने पहन कर उसके साथ बाजार में चले। वह पति बिल्कुल साधारणसा कमीज पहने हुए है, उसकी उसे फिकर नहीं है, लेकिन उसकी पत्नी गहनों से लदी है। यह उसकी इज्जत का मामला है। पत्नी तो खिलौना है पति का। इसलिए पत्नी कौन सी साड़ी पहनती है, उसकी इज्जत अंततः पति को मिलती है, पत्नी को नहीं। पत्नी इस भूल में न रहे। पत्नी केवल प्रदर्शन है। पति का प्रदर्शन है--पति की ताकत का, धन का, इज्जत का। और पत्नी को गुड्डी बना कर रखना है, उसमें आदमियत आने नहीं देना है, क्योंकि आदमियत आई तो बगावत शुरू हो जाएगी। तरे स्त्री क्या करे?
वह गुड्डी बन कर बैठी हुई है। वह सोचती है कि बहुत बड़ा आदर हो रहा है उसका। पति गहने लाकर दे रहा है, साड़ियां लाकर दे रहा है, उसे सोफा पर बिठाए हुए है, घर में नौकर लगा दिए, उसे कोई काम नहीं करना पड़ता। पत्नी बड़ी प्रसन्न है। उसे पता नहीं कि यह प्रसन्नता का, यह प्रसन्नता बहुत मंहगी है। उससे आदमियत छीन ली गई है। उसे केवल डिसप्ले का सामान बनाया गया है। वह सिर्फ सामग्री है, जिसका प्रदर्शन किया जा रहा है। और पति के अहंकार में एक गहना जोड़ा गया है। अब वह गुड्डी बनी बैठी है! और वह गुड्डी बनी बैठी है क्या करे? गपशप न करेगी और क्या करेगी! तो वह बैठ कर फिजूल की बातें कर रही है। वह आस-पास की पत्नियों के कपड़ों की, स्त्रियों के कपड़ों की बातें कर रही है। और किसका चरित्र कैसा है, इसका विचार कर रही है। और उसकी खुद की आत्मा खो गई है, उसका उसे पता ही नहीं है! स्त्रियों के पास आत्मा ही नहीं बची, जिस दिन उन्होंने गुड्डी बनने को वे राजी हो गईं। उनके पास कौन सी आत्मा है?
लेकिन पति चाहता नहीं कि स्त्रियों के पास आत्मा हो। क्योंकि आत्मा खतरनाक चीज है। बहुत डेंजरस है। जिसके पास आत्मा होगी, उसको गुलाम नहीं बनाया जा सकता। तब दुनिया में मित्र हो सकते हैं स्त्री और पुरुष। पत्नी और पति नहीं हो सकते। अगर दुनिया में वैज्ञानिक चिंतन लाना है तो आपको मानना पड़ेगा, समझना पड़ेगा कि यह किसी तरह की गुलामी नहीं चलेगी--न आर्थिक गुलामी चलेगी, न सेक्सुअली स्लेवरी चलेगी, न और तरह की गुलामियां चलेंगी। किसी तरह की गुलामी नहीं चल सकती। क्योंकि वैज्ञानिक चिंतन सभी तरह की गुलामी के विरोध में है।
अभी मैं अमृतसर में था। एक मित्र मुझसे कुछ पूछ रहे थे। मैंने उनसे कहा कि स्त्रियों को स्वतंत्र होना चाहिए। तो वे मित्र कहने लगे, लेकिन स्त्रियों को स्वतंत्रता की जरूरत क्या है? वे मित्र पढ़े-लिखे हैं, जज हैं, वे कहने लगे, स्त्रियों को स्वतंत्रता की जरूरत क्या? मैंने उनसे कहा, अंग्रेज भी यही कहते थे कि भारतीयों को स्वतंत्रता की जरूरत क्या है? और गलत नहीं कहते थे। मालिक कभी नहीं चाहता कि गुलाम स्वतंत्र हो। क्योंकि स्वतंत्र होने से मालिक के जितने स्वार्थ पूरे हो रहे हैं, वे सब समाप्त हो जाएंगे। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि अंग्रेजों को तो भारत के स्वतंत्र होने से सिवाय नुकसान के कोई फायदा नहीं हुआ। लेकिन मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जिस दिन स्त्रियां स्वतंत्र होंगी, उस दिन पुरुष को फायदा होगा। स्त्रियों की गुलामी से पुरुष को सिवाय नुकसान के कुछ भी नहीं हुआ। क्योंकि गुलाम स्त्री कभी भी प्रेम का संबंध पुरुष से नहीं जोड़ सकती है। उसका प्रेम भी गुलामी का हिस्सा है। उसका प्रेम भी उसकी मजबूरी है। वह देने में स्वतंत्र नहीं है, उसे देना पड़ता है। उसे देना पड़ेगा। और जब प्रेम देना पड़ता हो, मजबूरी हो, तो प्रेम कुम्हला जाता है, सूख जाता है, नकली हो जाता है।
प्रेम जब स्वतंत्रता से दिया जाता है, जब वह दान होता है, तभी जीवंत होता है, असली होता है, खिला हुआ होता है, नहीं मुरझा जाता है।
इसलिए घरों में जिनको पत्नियां बना कर बिठा लिया है, उनसे प्रेम की आशा नहीं हो सकती। उनसे खाना बनवाया जा सकता है, घर का काम करवाया जा सकता है। वे घर की नौकरानियां हो सकती हैं, लेकिन प्रेम की साथिन नहीं। हां, कलह

की साथिन हो सकती हैं। और चौबीस घंटे कलह जारी रहेगी। पति और पत्नी के बीच जितनी कलह है, उतना दुनिया में दो दुश्मनों के बीच भी नहीं होती। लेकिन चूंकि साथ रहना पड़ता है इसलिए कलह भी करनी पड़ती है और दोस्ताना भी बनाना पड़ता है। वह दोस्ताना भी कलह के बाद ही कलह से निपटने के लिए बनाना पड़ता है। वे सारी अच्छी बातें भी, जो बुरी बातें कह दी हैं, उनको पोंछने के लिए वे कहनी पड़ती हैं। सारा प्रेम अभिनय और धोखा हो गया।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़े अभिनेता की पत्नी गुजर गई। उसकी लाश जब कब्र में उतारी जा रही थी, तो वह छाती पीट-पीट कर रोने लगा। उसकी आंख से आंसुओं की धारा बही जा रही थी। उसके एक मित्र ने कहा कि तुम्हें देख कर मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हें बहुत तकलीफ हुई। मैं इतना नहीं सोचता था कि तुम अपनी पत्नी को इतना प्रेम करते हो। तुम्हारा दुख तो आश्चर्यजनक है, तुम बहुत दुखी हो, कैसे तुम्हें शांति मिलेगी?
उस अभिनेता ने कहा कि छोड़ो भी, यह तो कुछ भी नहीं है, जिस वक्त मेरे घर
से अरथी उठाई जा रही थी उस वक्त देखते। यह तो कुछ भी नहीं है, जो मैंने किया। अब अरथी उठ रही थी, तब देखते मेरे आंसुओं की धारा और मेरी आवाज और छाती का पीटना। यह तो कुछ भी नहीं है।
लेकिन अभिनेता अभिनय करे, यह तो चल सकता है। लेकिन हम सब भी बहुत तरह
के अभिनय कर रहे हैं। हमारी जिंदगी का जो सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है प्रेम, वह भी अभिनय हो गया है। क्योंकि पहली तो बात यह है कि प्रेम से हम जुड़े नहीं। प्रेम से हमारा संबंध नहीं हुआ। प्रेम को हमने एक व्यवस्था के भीतर जबरदस्ती खींच कर विकसित करना चाहा है। और स्वयं परतंत्र है, उसे प्रेम देना पड़ रहा है। इसलिए कोई स्त्री प्रेम देने में आनंदित नहीं है। मेरे पास सैकड़ों स्त्रियां आती हैं और मैं एक स्त्री को ऐसा नहीं पाता हूं, जिसने मुझे यह कहा हो कि वह अपने पति का प्रेम देकर आनंदित है। प्रेम देना भी जैसे एक बोझ मालूम होता है। यह भी एक खींचना है। खींचा जा रहा है, देना पड़ रहा है, दे रहे हैं।
जब तक स्त्री परिपूर्ण स्वतंत्र नहीं है, जब तक वह मित्र की हैसियत पर खड़ी नहीं होती, तब तक पुरुष उससे प्रेम भी नहीं पा सकता, और तब तक परिवार सुंदर नहीं बन सकता है।
पति और पत्नी विदा होंगे। दहेज भर विदा नहीं होगा, अगर वैज्ञानिक चिंतन होगा तो पति-पत्नी भी विदा हो जाएंगे, रह जाएगी एक मित्रता। लेकिन मित्रता बहुत घबड़ाने की बात है, क्योंकि मित्रता में इनसिक्योरिटी है, असुरक्षा है। और पति-पत्नी में हमने बिल्कुल सुरक्षा का इंतजाम कर लिया है। हमने सब तरह के कानून का इंतजाम कर लिया है। पुलिस और अदालत बिठाल दी है। कानून और समाज की इज्जत और सारी बातें बिठाल दी हैं। पति-पत्नी को हमने सारे सामाजिक जकड़न में बांध दिया है। सुरक्षा है। पत्नी को पत्नी रहना पड़ेगा, पति को पति रहना पड़ेगा। यह सुरक्षा के पीछे हमने जीवन का जो भी मूल्यवान है, वह सब खो दिया है।
लेकिन मेरा मानना है, प्रेम ही सच्ची सुरक्षा है, कानून सच्ची सुरक्षा नहीं है। हम सिर्फ कानून से बंधे हैं। और इसीलिए जब मैं कहता हूं कि प्रेम होना चाहिए, अगर प्रेम न हो तो किसी व्यक्ति को पति और पत्नी होने का हक नहीं है, पाप है। तो मेरे पास अनेक लोग आकर कहते हैं कि आपकी बात से तो सारा समाज विघटित हो जाएगा। तो मैं उनसे कहता हूं कि जिनको यह डर पैदा होता है कि समाज विघटित हो जाएगा, वे मेरी बात सिद्ध करते हैं। वे यह कहते हैं कि अगर लोगों को मुक्त कर दिया गया कानून से, तो पति-पत्नी अभी बिखर जाएंगे, अभी अलग हो जाएंगे। मतलब कानून से ही जुड़े हैं, और कोई जोड़ नहीं है? पुलिसवाला खड़ा हुआ है एक बंदूक लिए हुए, इसलिए आप एक-दूसरे को प्रेम कर रहे हैं? और अगर मैं कहता हूं, इस पुलिसवाले जाने दें, तो आप कहते हैं, सब गड़बड़ हो जाएगा। लेकिन हमने बड़े सूक्ष्म पुलिसवाले खड़े किए हैं, जो दिखाई नहीं पड़ते हैं। और इसलिए हम पहचान भी नहीं पाते।
वैज्ञानिक चिंतन तो जीवन के सारे पहलुओं को बदल देगा। लेकिन वैज्ञानिक चिंतन पैदा नहीं हो पाता। और नहीं पैदा इसलिए हो पाता कि हमने उसके मूल जड़ को ही काट डाला है। और हिंदुस्तान में तो यह जड़ इतने लंबे समय

से काटी गई है कि हम भूल ही गए हैं कि वह जड़ कभी थी भी। ऐसा आदमी नहीं मिलता, जो संदेह करता हो। मेरी बात सुन कर लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, हमें आपकी बातों पर विश्वास आ गया। तब तो बड़े मजे की बात है। मुझसे कहते हैं कि आप हमारे गुरु बन जाइए। हम तो आपकी बात मानेंगे, हम तो आपके पीछे चलेंगे। हद्द हो गई, हमारे भीतर से विचार की सारी संभावना समाप्त हो गई। जो आदमी हमसे विचार करने को कहे, हम कहेंगे, चलो ठीक है, तुम्हीं ठीक हो, हम तुम्हारे प्रति अंधे हुए जाते हैं, हम तुम्हीं को मान लेते हैं। अगर हमें कोई संदेह की बात भी सिखाए, तो हम उस पर भी विश्वास कर लेंगे। ऐसा मालूम होता है कि संदेह की कल्पना ही हमारे चित्त के मानस से, कलेक्टिव माइंड से, हमारे सामूहिक चित्त से उसकी जड़ ही उखड़ गई। उखड़ भी सकती है, अगर हजारों साल तक ऐसा किया गया हो तो बिल्कुल स्वाभाविक है।
लेकिन कौन कहता है यह? यह वैज्ञानिक चिंतन के पैदा होने में कौन बाधा देता है? सब तरह के स्वार्थ बाधा देते हैं। सब तरह के स्वार्थ। सब तरह के स्वार्थों का यही हित है कि मनुष्य कम से कम ज्ञानी हो, कम से कम शिक्षित हो, वह कुछ न जाने, बिल्कुल न जाने, अनजाना रहे। अनजाने आदमी पर किसी भी तरह का शोषण किया जा सकता है। फिर शोषण के कई रूप हैं--धार्मिक शोषण है, राजनैतिक शोषण है, सामाजिक शोषण है, शिक्षा का शोषण है, सब तरह का शोषण है-- गुरुओं का शोषण है, ज्ञानियों का शोषण है, सब तरह का शोषण है। इस शोषण को अगर उखाड़ फेंकना हो तो संदेह के बीच को अंकुरित करना जरूरी है। और मेरी मान्यता है, संदेह परमात्मा का दिया हुआ है, विश्वास पुरोहित का दिया हुआ है। और मेरा यह भी मानना है, और आपको कहना चाहूंगा, इस पर सोचना, जो आदमी संदेह करेगा वह किसी दिन उस जगह पहुंच जाएगा जहां सब संदेह गिर जाते हैं और जहां श्रद्धा उत्पन्न होती है।
लेकिन वह श्रद्धा बहुत दूसरी बात है। वह बिलीफ नहीं है। वह ज्ञान से आया हुआ बोध है। जो आदमी संदेह से यात्रा करता है, वह एक दिन श्रद्धा को उपलब्ध होता है, यह बड़े मजे की बात है। और जो आदमी विश्वास से यात्रा करता है, वह हमेशा संदेह में ही जीता है और मरता है। वह कभी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि उसने विश्वास कर लिया और भीतर उसके संदेह है। संदेह वह परमात्मा के घर से लेकर आया हुआ, पैदाइश के साथ लेकर आया हुआ है। भीतर संदेह है, ऊपर विश्वास है। वह भीतर संदेह बना रहेगा, छिपा रहेगा। कभी-कभी सिर उठाएगा, आप डर कर उसको दबा देना और ऊपर से विश्वास को ओढ़े रहना। वह विश्वास कभी भी आपके प्राणों तक नहीं पहुंचेगा। इसीलिए तो विश्वास करने वाले लोग बहुत डरते हैं।
हिंदू ग्रंथों में लिखा है, ऐसा ही जैन ग्रंथों में लिखा है। लिखा है हिंदू ग्रंथों में कि अगर पागल हाथी भी तुम्हारे पीछे पड़ा हो और जैन मंदिर आ जाए, तो तुम पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना ठीक समझना, लेकिन जैन मंदिर में मत जाना। क्यों? क्योंकि वहां अगर जैन शास्त्रों की बातें सुन लीं, तो संदेह पैदा हो सकता है। यही बात जैन ग्रंथों में भी लिखी है कि हिंदू मंदिर में मत जाना, पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना। क्योंकि वहां अगर गए मंदिर में और तुमने कोई ऐसी बात सुन ली कि धर्म से चित्त डगमगा जाए और भटक जाओ।
दुनिया के सब धर्म सिखाते हैं, किसी दूसरे की बात मत सुनना। यह सबूत
है इस बात का कि ये धर्म जो बातें कह रहे हैं, वे कमजोर, नपुंसक बातें हैं, इसलिए दूसरी बातें सुनने से डरते हैं। ज्ञान कभी डरता नहीं। अज्ञान हमेशा डरता है। जो धर्मगुरु कहते हैं, कान में हाथ डाल लेना, नास्तिक की बात मत सुनना, वे धर्मगुरु झूठे हैं और उनकी बातों को मानने वाले लोग अपनी आत्मा का हनन कर रहे हैं।
क्योंकि जो बात किसी की बात सुनने से नष्ट हो जाती, वह दो कौड़ी की है, उसका कोई मूल्य नहीं है। जो बात सभी संदेहों के बीच भी टिकती है और जीती और बच जाती है, वही सत्य है। संदेह की अग्नि से जो गुजर कर बच जाता है, उसी का नाम सत्य है। संदेह के गुजरने से ही जो डर जाता है, उसका नाम असत्य है। संदेह की आग से जो डरता है, वही है असत्य। और संदेह की आग से गुजरता है, वही है सत्य। सोना नहीं कहता कि मैं आग से नहीं निकलूंगा, क्योंकि मैं जल

जाऊंगा। लेकिन सोने के साथ जो कचरा लगा है, वह कहता है, नहीं-नहीं, आग से मत गुजरना, आग में बड़ी मुश्किल होती है, सब जल जाता है। सोना तो निकल जाता है आग से, कचरा जल जाता है, सोना निखर कर बाहर आ जाता है। सत्य को कोई संदेह नहीं मिटा सकता, असत्य को मिटा सकता है।
और इसलिए मैं कहता हूं, जितने लोगों ने विश्वास करना सिखाया है, उन्होंने जरूर किसी न किसी असत्य के आधार पर विश्वास का भवन खड़ा किया होगा। विश्वास की शिक्षा असत्य के लिए देनी पड़ती है। सत्य के लिए विश्वास की कोई शिक्षा नहीं है। सत्य के लिए शिक्षा है संदेह की और विज्ञान सत्य की तरफ जाने की यात्रा है।
लेकिन आप कहेंगे, फिर धर्म क्या है?
तो मैं आपसे कहना चाहता हूं, धर्म भी विज्ञान है, धर्म अंतर्विज्ञान है, वह साइंस ऑफ दि इनर है, वह जो भीतर है उसका विज्ञान है। और जिसको हम विज्ञान कहते हैं, वह बाहर का विज्ञान है, साइंस ऑफ दि आउटर, वह जो बाहर फैला हुआ जगत है। वे एक ही विज्ञान के दो पहलू हैं। अगर बाहर कोई संदेह से खोज करेगा तो जिसको हम साइंस कहते हैं, उसका जन्म होता है। और भीतर अगर कोई संदेह से खोज करेगा, तो जिसे मैं धर्म कहता हूं उसका जन्म होता है, जिसे आप धर्म कहते हैं उसका नहीं।
आप तो उसे धर्म कहते हैं, जिसे अंधा होकर मानना पड़ता है, जिसकी खोज नहीं करनी पड़ती है। जिसकी खोज कोई महावीर पहले कर चुके, जिसकी खोज कोई बुद्ध पहले कर चुके, जिसकी खोज कोई मोहम्मद पहले कर चुके, उसको मान लेना पड़ता है। ऐसा धर्म अवैज्ञानिक है। और ऐसे धर्म के लिए विश्वास की शिक्षा जरूरी है। इसीलिए धार्मिक मुल्क वैज्ञानिक नहीं हो पाते। मेरी दृष्टि में तो जो वैज्ञानिक नहीं है, वह धार्मिक भी नहीं है। झूठा है उसका धर्म। भारत जैसा देश वैज्ञानिक नहीं हो पाता, क्योंकि भारत जैसे देश के मन में झूठे धर्म की प्रतिष्ठा है। विज्ञान का जन्म कैसे होगा? झूठे धर्म को जाना पड़ेगा। विज्ञान आएगा और विज्ञान के साथ ही सच्चा धर्म भी आएगा। जो धर्म विज्ञान की कसौटी पर खरा न उतारता हो, वह धर्म कैसे सच्चा हो सकता है? कसौटी तो सदा वैज्ञानिक चिंतन है, कसौटी सदा वैज्ञानिक तर्क है, कसौटी सदा विज्ञान की, संदेह की अग्नि है।
तो जिन मित्र ने पूछा है कि क्या है आधारभूत बात, जिसकी वजह से पश्चिम
से शिक्षा लेकर भी कोई आता और वैज्ञानिक नहीं हो पाता?
वह आधारभूत बात यह है कि भारतीय मानस अवैज्ञानिक है, वह इंडियन माइंड अवैज्ञानिक है। पश्चिम की शिक्षा से क्या होगा?
और ऐसा नहीं है कि पश्चिम में भी सब चित्त वैज्ञानिक है। पश्चिम में
भी थोड़े से लोगों ने हिम्मत करके विज्ञान को जन्म दिया है। अधिकतर जनता पश्चिम में उतनी ही अवैज्ञानिक हैं, जितनी यहां। इसलिए तो यहां के योगी महाराजों के पीछे वहां पागल इकट्ठे हो जाते हैं, नहीं तो कहां से इकट्ठे हो जाएंगे। यहां का कोई पहुंच जाए तो वहां भी भीड़ इकट्ठी होती है। यह भीड़ किन लोगों की है, वह किन्हीं वैज्ञानिकों की है? वह उसी तरह के लोगों की भीड़ है जिस तरह के लोगों की यहां है। लेकिन सफेद चमड़ी का बहुत असर है। अगर दो-चार सफेद चमड़ी के पगलों को लेकर इस मुल्क में आ जाओ, तो महायोगी हो जाने में देर नहीं लगती। असल में सफेद चमड़ी के हम इतने दिन तक गुलाम रहे हैं कि हमने सफेद चमड़ी में भी कोई सुपिरिआरिटि स्वीकार कर ली है। सफेद चमड़ी होना ही कोई बहुत ऊंची बात हो गई है। तो अगर चार पश्चिम के पगले किसी आदमी के पीछे चले आएं--मुझे मेरे मित्र सहायता देते हैं कि आप यहां मेहनत मत करिए। पहले आप पश्चिम चले जाइए। वहां के दस-पच्चीस लोग आपके साथ आए, कि यहां अच्छा परिणाम होगा। मैंने कहां, वैसा परिणाम लाना इस मुल्क की गुलामी को बढ़ाना है। वैसा परिणाम लाना ही गलत ढंग है। क्योंकि उसका मतलब क्या है? उसका मतलब यह है कि सफेद चमड़ी की जो गुलामी हमारे दिमाग में है, उसको मजबूत करना है।
महेश योगी को यहां कोई पूछेगा नहीं, लेकिन बीटल पीछे चले आएंगे और सारा हिंदुस्तान दीवाना हो जाएगा। और सारे हिंदुस्तान के नेता और सारे

अखबार दीवाने हो जाएंगे। यह अंग्रेजों की गुलामी से खतम होना बड़ा मुश्किल मालूम होता है। लगता है कि हम शायद कभी गुलामी के ऊपर नहीं उठ पाएंगे। असल में विश्वास करने वाला चित्त बुनियादी रूप से गुलाम होता है। और ध्यान रहे कि जिन पंडित-पुरोहितों ने हमें गुलामी की शिक्षा दी थी, वे ही पंडित-पुरोहित अंग्रेजों की गुलामी और मुसलमानों की लंबी गुलामी का कारण बने। हम गुलामी के लिए राजी हो गए। हमारा माइंड इस स्लेवरी के लिए राजी हो गया। जो भी ताकत में, हम उसी को मानने लगे। और आज अगर आपके बेटे पश्चिम जाते हैं डिग्री लेने, तो आप यह मत समझना कि विज्ञान की शिक्षा लेने जा रहे हैं। आज पश्चिम की प्रतिष्ठा है, पश्चिम की डिग्री की प्रतिष्ठा है। और आज पश्चिम में विज्ञान की इज्जत है। आपके बेटे जो उसमें विश्वास करके उसकी शिक्षा लेने जाते हैं, उनके मन में कोई विज्ञान की खोज नहीं है। और आप भी जो उन्हें भेजते हैं, कोई विज्ञान की खोज के लिए नहीं भेजते हैं। आप उन्हें भेजते हैं कि वहां से वे डिग्रियां लेकर आते हैं--तो उनकी डिग्री की हैसियत का आदमी इस मुल्क में तीन सौ पाता है, वही आदमी इंग्लैंड और जर्मनी से डिग्री लेकर आता है, तो बारह सौ पाता है। तो आप भी जानते हैं कि पश्चिम की डिग्री की प्रतिष्ठा है। इसलिए विश्वास करके वहां चले जाते हैं। इसमें विश्वास है, इसमें कोई विज्ञान की कोई खोज नहीं है।
भारत के मानस में वह क्रांति पैदा नहीं हो पाई जिससे विज्ञान जन्मे। पश्चिम में भी थोड़े से मानस वैज्ञानिक हुए हैं, सभी मानस वैज्ञानिक नहीं हो गए हैं। और उन थोड़े से लोगों ने जिन्होंने विज्ञान को पश्चिम में जन्म दिया, बहुत तकलीफ उठानी पड़ी। हिंदुस्तान में कोई तकलीफ उठाने को राजी नहीं है। हिंदुस्तान की इतनी पुरानी व्यवस्था हो गई है कि इसमें अगर सुख और शांति से जीना हो, तो बिना किसी बात को छेड़े, जो कहा गया हो, सबको ठीक कहने से बड़ा आराम रहता है। मेरे पास आप आएं और कहें कि गीता में सब ठीक है। मैं कह दूं, सब ठीक है, गीता तो अमृत वचन है। आप मेरा पैर छुएंगे। अब मैं फिजूल की झंझट में क्यों पडूं कि कहूं कि नहीं, सब अमृत वचन नहीं है। तो मेरा पैर भी नहीं छुएंगे और आज नहीं कल डंडा लेकर मेरे पीछे घूमेंगे। फायदा क्या है? इस मुल्क के चित्त को जरा भी क्रांति की तरफ ले जाने की कोशिश करो, तो वह क्रोध से भर जाता है।
ऐसा ही पश्चिम में भी हुआ। तीन सौ साल में पश्चिम के थोड़े से लोगों ने जितनी तपश्चर्या की है, तुम्हारे हिंदुस्तान के सारे ऋषि-मुनियों ने मिल कर भी कभी नहीं की। वे थोड़े से लोग वे नहीं हैं, जो झाड़ों के नीचे बैठे हैं, वे थोड़े से लोग वे लोग हैं जिन्होंने पश्चिम की हजारों साल की मानसिक गुलामी को वैज्ञानिक चिंतन से तोड़ने की कोशिश की। तीन सौ वर्ष में थोड़े से लोगों ने जो तप किया है वहां, उस तप का फल सारी दुनिया भोग रही है। सारी दुनिया को उससे सुख मिल रहा है। लेकिन कुछ लोगों ने बहुत दुख भोगा है। गैलीलियो ने जब पहली बार कहा कि पृथ्वी चक्कर लगाती है सूरज का, सूरज नहीं लगाता चक्कर। तो सारा पश्चिम पागल हो गया। और गैलीलियो को हथकड़ियां डाल कर अदालत में लाया गया कि तुम क्षमा मांगो, तुमने गलत बात कही है। क्योंकि बाइबिल में तो लिखा है कि पृथ्वी का चक्कर सूरज लगाता है। और दिखता भी तो यही है कि सूरज रोज चक्कर लगाता है। तुम माफी मांगो लिखित। सत्तर साल का बूढ़ा आदमी, उसे सैकड़ों मील पैदल चला कर लाया गया अदालत में, और उससे कहा गया, माफी मांगी, अन्यथा फांसी हो जाएगी। वह बूढ़ा आदमी हंसा और उसने एक कागज पर लिखा, वह दस्तावेज बड़ी अदभुत है, जिसमें गैलीलियो ने लिखा, कि तुम कहते हो तो मैं मान लेता हूं कि सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता होगा, लेकिन मैं क्या कर सकता हूं, लगाती तो पृथ्वी ही सूरज का चक्कर है। मैं क्या कर सकता हूं? तुम कहते हो, झंझट हम खड़ी नहीं करते, ठीक है। लेकिन सच बात तो यही है कि चक्कर तो पृथ्वी ही सूरज का लगाती है। अब मैं इसमें कुछ कर भी नहीं सकता। हां, मैं जो कहता हूं इसके लिए माफी मांग लेता हूं, लेकिन पृथ्वी चक्कर लगाती है इसके लिए मैं कैसे माफी मांगूं? पृथ्वी लगाती है, मैं क्या कर सकता हूं?
ये तीन सौ वर्षों में थोड़े से पश्चिम के लोगों ने हिम्मत की। हिम्मत किस बात की करनी पड़ी? सबसे बड़ी हिम्मत करनी पड़ती है आदर छोड़ने की। और

हिंदुस्तान के विचारक आदर छोड़ने की हिम्मत जुटा पाते। हिंदुस्तान का कोई विचारक आदर छोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। मकान छोड़ना आसान है, धन छोड़ना आसान है, पत्नी-बच्चे छोड़ना आसान है। सबसे कठिन बात है आदर छोड़ना। और हिंदुस्तान में बेवकूफियों के मानने के लिए आदर मिलता है। और अगर उनको छोड़िए तो आदर मिलना बंद हो जाता है। तो हिंदुस्तान ने एक व्यवस्था कर रखी है, आदर उसको दो, जो तुम्हारी सारी नासमझियों को स्वीकार करता हो और जो तुम्हारी नासमझियों को इनकार करता है, उसको आदर देना बंद करो। और हिंदुस्तान में अभी इतने हिम्मतवर विचारकों की धारा खड़ी नहीं हो पाई कि वे हिम्मत करें और आदर को लात मार दें और कहें कि जो ठीक है हम वही कहेंगे, चाहे अनादर मिले और चाहे फांसी मिले।
मेरा अपना मानना यह है कि हिंदुस्तान की प्रतिभा ने अभी भी तपश्चर्या शुरू नहीं की। धूप में खड़ा होना तपश्चर्या नहीं है, सर्कस का खेल है। और दो-चार दिन खड़े हो जाएं तो अयास हो जाता है। फिर मकान के भीतर खड़े होने में तकलीफ होती है। भूखा मरना कोई तपश्चर्या नहीं है। सिर्फ अयास है। और दो- चार-दस दिन, महीने भर भूखे रह जाएं तो फिर खाना खाने में बड़ी मुश्किल होती है। इन सारी बातों को हम तपश्चर्या कह रहे हैं। तपश्चर्या सिर्फ एक है, सत्य के लिए सब तरह के सम्मान को छोड़ने की हिम्मत के अतिरिक्त प्रतिभा के सामने और कोई तपश्चर्या नहीं है।
लेकिन हिंदुस्तान ऐसी हिम्मत नहीं जुटाया पाया। या जब उसने हिम्मत जुटाई, थोड़े से लोगों ने, तो कुछ विचार पैदा हुआ। और फिर खो गया। अब जरूरत है, अगर हिंदुस्तान में वैज्ञानिक चिंतन पैदा करना है, और मैं आपसे कहता हूं, अगर वैज्ञानिक चिंतन नहीं पैदा होता है तो आने वाली सदी में हम कहीं के भी नहीं होंगे। हम धूल में मिल जाएंगे। वैज्ञानिक चिंतन पैदा करना है तो कुछ लोगों को हिम्मत जुटानी पड़ेगी कि वे सत्य के लिए बलिदान हो जाएं। असत्य के लिए तो बहुत बलिदान हो चुके। मुसलमानों के लिए बलिदान हो चुके, हिंदुओं के लिए बलिदान हो चुके, जैनियों के लिए बलिदान हो चुके, ईसाइयों के लिए बलिदान हो चुके। ये सब असत्य के लिए बलिदान हैं। सत्य के लिए बलिदान मुश्किल से हुए हैं। और सत्य के लिए बलिदान न हो, तो विज्ञान का जन्म नहीं हो सकता। कुछ लोगों को हिम्मत जुटानी पड़ेगी। कुछ लोगों को सारे सम्मान, सारे आदर की फिकर छोड़ देनी पड़ेगी, अपमानित होने की हिम्मत करनी पड़ेगी। और वह अगर नहीं होता, तो फिर कैसे विज्ञान का जन्म हो? कैसे विचार का जन्म हो? और बच्चों को संदेह की शिक्षा देनी पड़ेगी। उनके खून में संदेह भर देना पड़ेगा कि वे कभी भी किसी कीमत पर मानने को राजी न हों जब तक जान न लें। हां, न जानें, तो न मानने के लिए भी आग्रह न करें।
दो तरह के विश्वास होते हैं। एक आस्तिक का विश्वास होता है, एक नास्तिक का। आस्तिक कहता है, ईश्वर है, और मानता है, जानता नहीं। नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है, मानता है, जानता नहीं। ये दोनों विश्वास हैं। और ये दोनों खतरनाक हैं। इन दोनों से विज्ञान का जन्म नहीं हो सकता। दोनों से विज्ञान में बाधा पड़ेगी। और जहां भी विश्वास पैदा होता है वहीं विज्ञान में बाधा पड़ती है। चाहे वह विश्वास किसी तरह का क्यों न हो। अगर नास्तिक का विश्वास भी जोर पकड़ जाए तो विज्ञान में बाधा डालता है। क्योंकि विश्वास बाधा है।
एक हवा पैदा की जानी चाहिए, जिसमें हर बच्चा इस तरह बड़ा हो कि वह कहे
कि यह मैं जानता हूं, यह मैं नहीं जानता हूं, यह मैं जानने की कोशिश कर रहा हूं। और जो मैं जानता हूं, वह भी अभी तक जितना ज्ञान है मेरा, उस हिसाब से कहता हूं। कल ज्ञान बदल जाएगा, बढ़ जाएगा तो मैं जो जानता हूं उसका दावा नहीं करूंगा।
जो लोग दावा करते हैं कि हम जिंदगी भर कंसिस्टेंट रहे, बीस साल की उम्र में जो मानते थे, अस्सी साल की उम्र में भी वही मानते हैं, हम पक्के ईमानदार हैं। वे ईमानदार नहीं, सिर्फ जड़ बुद्धि हैं। बीस साल की उम्र में जो आदमी मानता है, अस्सी साल की उम्र में कैसे मान सकता है? या तो साठ साल उसने कुछ सोचा ही न हो, कुछ खोजा ही नहीं। बीस साल में ही उसकी खोपड़ी रुक गई

हो, उसका विकास न हुआ हो। और अगर विकास हुआ होगा, तो अस्सी साल में आदमी वही कैसे मान सकता है जो बीस साल में मानता था?
लेकिन आप बड़े मजे की बात देखेंगे, बच्चा हिंदू ही पैदा होता है, हिंदू
ही मरता है। बच्चा जिन नासमझियों को मान कर खड़ा होता है, उन्हीं को मरते दम तक मानता रहता है। जिस बचपन में उसको सिखाया गया था राम-राम का जाप, मरते वक्त आखिरी श्वास छोड़ता है और कहता है, और सारा मुल्क बड़ा प्रसन्न होता है कि बहुत धार्मिक आदमी था, राम राम कहते हुए मर गया। जड़ बुद्धि था, स्टुपिड था। जो बचपन में सिखा दिया गया था उसको जिंदगी भर दोहराता रहा। न उसने सोचा, न उसने खोजा, न वह आगे बढ़ा। लेकिन वह आदमी कहेगा, मैं कंसिस्टेंट हूं, मैं संगत हूं। मैंने कल जो कहा था, वही मैं आज कहता हूं। मैंने परसों जो कहा था, वही मैं आज कहता हूं। मैंने बचपन में जो कहा था, वही मैं बुढ़ापे में कह रहा हूं।
जिंदगी बहुत विकास की बात है। तो वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी यह नहीं कहता कि जो मैं आज कह रहा हूं, वही चरम सत्य है। वह यह कहता है कि आज तक मैं जो जानता हूं, उसके आधार पर यह सत्य मालूम पड़ता है। कल मैं और जान लूंगा और हो सकता है सत्य की बदलाहट हो जाए। कल मैं और जान लूं, और हो सकता है, नया ही सत्य स्थापित हो जाए। कल मैं और जान लूं और जिसे मैं आज सत्य कह रहा हूं, वह असत्य हो जाए। मैं जानता रहूंगा, मरते क्षण तक जानता रहूंगा, इसलिए दावा नहीं करूंगा कि सत्य को जान लिया है। सत्य को जानने की चेष्टा करनी चाहिए, जान लेने का दावा नहीं।
और जो कौम दावा करती है कि हमने सत्य को जान लिया, और उन कौमों में हम सबसे अदभुत कौम हैं, हमारा दावा यह है कि हम जान चुके, अब हमारा एक ही काम है कि हम दुनिया को जनावें। तो हमारे मुल्क के सारे नेता कहते फिरते हैं, सारी दुनिया हमारी तरफ देख रही ज्ञान के लिए। कोई नहीं देख रहा है किसी तरफ। हमारे गुरु समझाते हैं कि सारी दुनिया भारत की तरफ देख रही कि हमें आध्यात्मिक ज्ञान दो, मार्गदर्शन दो। कौन देख रहा है आपकी तरफ? यह खुद ही आप कहे चले जा रहे हैं। और क्यों कोई देखेगा? आपके पास है क्या जिसके लिए देखने की जरूरत है? आपको देख लेना काफी है, और उससे पता चल जाता है कि आस में कुछ भी नहीं है।
लेकिन हम दावा करते हैं कि हमने सत्य को जान लिया है। हम सत्य को जान
ही चुके हैं, जानता नहीं है कुछ, बाकी नहीं है। हमारी किताबों में सब लिखा है। और सब अंतिम सत्य लिख दिया गया है। यह अवैज्ञानिक, एंटी-साइंटिफिक, विज्ञान-विरोधी चित्त की धारणाएं हैं।
सत्य की दिशा और सत्य का अनुभव विकासमान है, इवोल्यूशनरी है। कोई जान नहीं लिया गया है। कहीं ठहर नहीं गई है दुनिया। हम जानते चले जा रहे हैं। एक यात्रा है नोइंग की, जानने की। जानते जा रहे हैं, जानते जा रहे हैं और कभी ऐसा दिन नहीं आएगा कि हम सब कुछ जान लेंगे। इतना अनंत है जगत कि हम जितना जानेंगे वह हमेशा उससे थोड़ा होगा, जो जानने को शेष रह जाएगा। इतना अनंत है विस्तार, इतना असीम है विस्तार।
और बड़े मजे की बात है, जो धार्मिक आदमी हैं, वे एक तरफ तो कहते हैं, भगवान अनंत है, और दूसरी तरफ कहते हैं, भगवान जान लिया गया। दोनों बातें बड़ी उलटी हैं। जो जान लिया जाए, वह अनंत नहीं हो सकता। जानने की वजह से सीमित हो जाता है, शांत हो जाता है, फाइनाइट हो जाता है।
सच तो यह है कि विज्ञान ने पहली दफा कहा कि सत्य अनंत है, क्योंकि कभी
भी पूरा नहीं जाना जा सकेगा। हम समुद्र में कूद सकते हैं, लेकिन हमने समुद्र पा नहीं लिया। ऐसे ही हम सत्य के सागर में कूद सकते हैं, यात्रा कर सकते हैं, लेकिन कभी ऐसा नहीं होगा कि हम कहेंगे कि हमने पूरे सत्य को पा लिया। तब हम सत्य से बड़े हो जाएंगे। तब तो सत्य हमारी मुट्ठी में हो जाएगा।
और जिन लोगों ने यह कहा कि सत्य पा लिया गया, उन्हीं लोगों ने दुनिया में मतांधता, पैनिटीशिज्म पैदा किया। क्योंकि मुसलमान कहता है, हमने सत्य जान लिया और हिंदू कहता है, हमने सत्य जान लिया है और जैन कहता है, हमने सत्य जान लिया। और तीनों के सत्य बड़े अलग-अलग हैं। अब तीनों में झंझट होती

है कि सत्य किसका है! तो तलवारें निकल आती हैं। और कोई सिद्धांत, सिद्ध करने का उपाय भी नहीं है। किसके पास बड़ी तलवार है, कौन किसकी गर्दन काट सकता है, वही सत्य है। तो मुसलमान छाती में छुरा भोंकता है, हिंदू भोंकता है, झगड़े होते हैं। और झगड़े किस बात के हो रहे हैं? झगड़े एक बात के हो रहे हैं और झगड़ा उन लोगों ने करवाया, जिन्होंने कहा कि सत्य जान लिया गया। जिन लोगों ने सत्य के जानने का दावा किया, वे दुनिया को झगड़ों में डालने का कारण बने।
विज्ञान के कारण झगड़ा नहीं हुआ। आप हैरान होंगे, धर्मों ने झगड़े करवाए, विज्ञान ने पहली दफे झगड़ों को खत्म किया। विज्ञान के पास कोई झगड़ा नहीं, क्योंकि विज्ञान दावेदार नहीं है। विज्ञान यह नहीं कहता हमने सत्य जान लिया। वह विनम्र है, बहुत हम्बल है। वह कहता है, हम जानने की कोशिश कर रहे हैं। अगर तुमने भी कुछ जाना हो तो आओ, हम शेयर कर लें, हम बांट लें। इसलिए दुनिया का वैज्ञानिक किसी कोने में जान रहा हो, उसका जाना हुआ सबका इकट्ठा हो जाता है, वह सबका जाना हुआ हो जाता है।
लेकिन ये धार्मिक गुरु? इनका जाना हुआ एक नहीं हो पाता। क्यों? क्योंकि ये विनम्र नहीं हैं। यह जान कर आप हैरान होंगे कि धर्म कहते हैं विनम्र बनो, और धर्मों ने जितना आदमी को ईगोइस्ट बनाया, अहंकारी बनाया, उतना किसी ने भी नहीं बनाया। और विज्ञान, जो कभी नहीं कहता कि विनम्र बनो। जिसको वैज्ञानिक बनना है उसे विनम्र बनना पड़ता है, उसे हम्बल होना पड़ेगा। पहली ह्युमिलिटी तो उसे यह सीखनी पड़ती है कि मैं जानता नहीं हूं। दूसरी विनम्रता उसे यह सीखनी पड़ती है कि जो भी जान लिया, वह कल गलत हो सकता है। तीसरी विनम्रता उसे यह सीखनी पड़ती है कि जो मैं जानता हूं वह बहुत अल्प है, जो मैं नहीं जानता हूं वह अनंत है। इसलिए वैज्ञानिक ईगोइस्ट नहीं हो सकता।
और धार्मिक आदमी, जिसको हम धार्मिक कहते हैं, मैं नहीं, धार्मिक आदमी एकदम अहंकारी है। वह दावे करता है कि सत्य हमारे पास है, मेरी मुट्ठी में है, और किसी की मुट्ठी में नहीं है। और जो मेरे पास आएगा, वही जा सकता है स्वर्ग, और जो मेरे पास नहीं आया, वह नहीं जाएगा। फिर उसके भक्त बेचारे सेवा-भाव के कारण दूसरों को भी उसकी मुट्ठी में लाने की कोशिश करते हैं, वह सिर्फ दया-भाव के कारण।
मुसलमान सोचता है, सब दुनिया को मुसलमान बनाओ। क्यों? क्योंकि अगर मुसलमान दुनिया न बन पाई, तो सब नरक में पड़े रहेंगे। स्वर्ग नहीं जा सकते। स्वर्ग तो मुसलमान ही जा सकता है। ईसाई सोचता है, सबको ईसा के झंडे के नीचे लाओ। यह दया के कारण, कि जो आदमी ईसाई नहीं बना, वह बेचारा भटक जाएगा। नरक की अग्नियों में सड़ेगा। ईसाई बनाओ उसे, किसी भी तरह बनाओ, पैसा देकर बनाओ, धमका कर बनाओ, जबरदस्ती बनाओ, गरीब का शोषण करके बनाओ--कोई प्रलोभन, भय, कुछ भी देकर बनाओ। यह दयावश, यह बड़ी अदभुत दया है! उसको बनाओ ताकि वह स्वर्ग जा सके।
तो सारी दुनिया में वह विश्वास और ज्ञान के दावे ने विज्ञान की हत्या की, वह विकसित नहीं हुआ। और भारत में यह हवा इतनी तेज है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। कोई भी आदमी कहता है कि मैं जगतगुरु हूं, बिना जगत से पूछे हुए।
अभी एक जगतगुरु मेरे साथ थे पटना में। कुछ बातें मैंने कहीं, वे एकदम नाराज हो गए। माइक छीन लिया और माइक पर खड़े होकर उन्होंने कहा कि मैं जगतगुरु हूं, सर्व शास्त्रों का ज्ञाता। मैं जो कहता हूं, वही ठीक है। अब जगतगुरु अगर हैं तो फिर जो कहते हैं ठीक ही है। क्योंकि फिर कोई उपाय ही नहीं रहा उनसे झंझट करने का। सर्व शास्त्रों के ज्ञाता! वे जो कहते हैं ठीक ही है, उसमें कुछ गलत हो नहीं सकता।
यह दावा वैज्ञानिक बुद्धि नहीं कर सकती। वैज्ञानिक बुद्धि सदा विनम्र है, वह कहती है, आप जो कहते हैं वह भी ठीक हो सकता है। लेकिन सोचें, विचार करें, मेरा तर्क आप सुनें, आपके तर्क को मैं सुनूं, खोजें, संदेह करें, हो सकता है जो सही हो वह विवाद से, विचार से, तर्क से निकल आए और सत्य जीत जाए। मैं भी हार जाऊं, आप भी हार जाएं, हमारे-जीतने का कोई भी मूल्य

नहीं है, सत्य जीतना चाहिए। लेकिन कहता है, मैं जीतूं की तुम। सत्य से किसी को प्रयोजन नहीं है।
पहली दफा... सत्य से प्रयोजन विज्ञान ने दुनिया को दिया है। सत्य से प्रयोजन व्यक्तियों से प्रयोजन नहीं है। न मेरा सवाल है, न किसी और का सवाल है, सवाल यह है कि सत्य क्या है? आएं हम खोजें, सोचें, विचारें, लेकिन उसके लिए तो ओपन माइंड, खुला हुआ मन चाहिए।
एक अंतिम बात और वह यह कि भारत की बुनियादी भूलों में क्लोज माइंड, बंद दिमाग एक भूल है जिसकी वजह से विज्ञान पैदा नहीं होता। वैज्ञानिक चित्त के लिए ओपननेस चाहिए, खुलापन चाहिए। कोई द्वार-दरवाजे नहीं चाहिए दिमाग के ऊपर कि हम पहले से ही बंद किए बैठे हैं, हमें पहले से ही पता है कि सत्य क्या है। जो आदमी यह मान कर चलता है कि मुझे पहले से ही पता है, वह आदमी कैसे खोज करेगा? मुझे पहले से मालूम है, आपको पहले से मालूम है, हम दोनों लड़ें, लेकिन कभी कोई निर्णय नहीं हो सकता, संवाद नहीं हो सकता, कम्युनिकेशन नहीं हो सकता। विवाद हो सकता है, आप चिल्लाते रहें, मैं चिल्लाता रहूं, कोई किसी की सुनेगा नहीं, क्योंकि दोनों पहले से तय, प्रिज्युडिस दिमाग है।
इस मुल्क का सारा आदमी, एक-एक आदमी पक्षपात से भरा हुआ है। उसने सब तय
कर रखा है। किसने तय किया हुआ है? आप एक जैन घर में पैदा हो गए, बस इतना ही आपका कसूर है, कि आपके दिमाग में जैन शास्त्र घुसेड़ दिए गए। एक आदमी हिंदू घर में पैदा हो गया, इतना ही उसका अपराध है, कि उसके दिमाग में हिंदू शास्त्र डाल दिए गए। एक आदमी मुसलमान घर में पैदा हो गया, इतनी ही उसकी भूल है, कि उसके दिमाग में कुरान डाल दिया गया। अब जिंदगी भर वह उसी को दोहराता रहेगा और कभी नहीं खोजेगा क्या है सत्य? कुरान को रखूं अलग, गीता को रखूं अलग, महावीर को नमस्कार करूं, बुद्ध को नमस्कार करूं। और मुझे भी खोजने दो, आपने अपने लिए खोज लिया, मुझ पर भी इतनी कृपा करो, आप जाओ, मैं खोजूं, मैं भी जानने का प्रयास करूं। लेकिन नहीं, हमारे दिमाग में भरा है। भरने की तरकीब आपको पता है क्या है? भरने की तरकीब आपको समझा कर नहीं भरा गया है, समझा कर गलत चीज भरी ही नहीं जा सकती, गलत चीज हमेशा बिना समझाए भरी जाती है, यह ध्यान रहे। इसलिए सब धर्मगुरु चाहते हैं कि बचपन में ही बच्चों के दिमाग में धर्म डाल दिया जाए, क्योंकि जवान होने पर समझाना जरूरी हो जाएगा। और समझाना बड़ा मुश्किल मामला है। और गलत बातें समझाना हो तो बहुत मुश्किल है।
अगर गणित पढ़ाना हो तो बीस साल के आदमी को पढ़ाया जा सकता है, क्योंकि गणित के सीधे सूत्र हैं, गणित समझाया जा सकता है।
सच तो यह है कि जितना सत्य हो, उतनी ही बड़ी उम्र में आसानी से समझाया
जा सकता है। और जितनी असत्य बातें सिखानी हो उतनी अबोध अवस्था में, जब बच्चे के पास कोई बुद्धि नहीं होती। इसलिए पाठशालाएं खुली हैं मंदिरों में, साधु-संन्यासी बैठे हैं बच्चों को बाल-बोध पढ़ा रहे हैं। वह सबसे बड़ा अपराध हो रहा है। क्योंकि उन बच्चों को बातें समझाई जा रही जिन्हें कुछ पता नहीं। उन बच्चों को समझाया जा रहा हैः निरोध होता है, आत्माएं होती हैं, भूत-प्रेत होते हैं, स्वर्ग होता है, नर्क होता है, मोक्ष होते हैं, इतने देव होते हैं, इतने रूप होते हैं। वे बच्चे बेचारे सुन रहे हैं। वे अभी बिल्कुल सजेस्टिबल हैं। अभी उनके जो भी कहा जाता है, सोचते हैं कि जो कहा जाता है वह ठीक ही कहा जाता होगा। क्योंकि यह आदमी झूठ क्यों बोलेगा। अभी उन्हें जिंदगी का कुछ भी पता नहीं है। कि यहां जिनको हम बहुत अच्छे आदमी कहते हैं, वे बहुत बुनियादी झूठ बोल रहे हैं। यहां बुरे आदमी जिनको हम इस दुनिया में कहते हैं, वे बेचारे छोटे-मोटे झूठ बोल रहे हैं और बदनाम हैं।
एक आदमी चोर है, बेईमान है, कौन सा झूठ बोलता है, छोटा-मोटा झूठ, पांच रुपये बचा लेता है। और एक आदमी स्वर्ग और नरक के मोक्ष के नक्शे समझा रहा है, और इस मजे से समझा रहा है जैसे सच बोल रहा हो, और उसे कुछ भी पता नहीं, वह सरासर झूठी बातें कर रहा है। और वह साधु है पूज्य। और बच्चों के दिमाग में यह भरा जा रहा है।

भरने की एक ही तरकीब है, समझाओ मत, सिर्फ दोहराओ, समझाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि इस झंझट में पड़े तो मुश्किल में पड़ जाओगे। सिनेमा में पोस्टर लगाओ कि बिनाका टुथपेस्ट खरीदो। फिल्म अभिनेत्री को मुस्कुराते हुए दांतों के साथ खड़ा करो कि इतने चमकीले दांत बिनाका से हो गए हैं। समझाओ मत, न कोई पूछने जाता है कि फिल्म अभिनेत्री ने कब बिनाका किया। मैंने अभी सुना कि एक बुड्ढा था फ्रांस में कोई एक सौ दस वर्ष का, उसके पास एक पत्रकार गया, उसकी एक सौ दसवीं वर्षगांठ पर, और उसने पूछा कि आपकी इतनी लंबी उम्र का राज क्या है? उसने कहाः अभी ठहरो, अभी दो तरह की कंपनियों से मेरी बात चल रही है कि मैं किस कंपनी के बिस्कुट खाता हूं, जब बात तय हो जाए, तब मैं बता सकता हूं कि किस वजह से मेरी उम्र ज्यादा है। अभी बातचीत चल रही है, अभी निगोशिएशन हो रहा है, अभी तय नहीं हुआ कि मेरी उम्र का असली राज क्या है? जो कंपनी ज्यादा पैसा देगी, उसी के बिस्किट से मेरी यह उम्र हो गई है।
तो फिर अभिनेत्री खड़ा करो, नचाओ। उसकी सेक्स अपील है, उस अपील का भी फायदा लो। और हर पुरुष भूखा है स्त्री का, इसलिए स्त्री को नंगा खड़ा करो और टुथपेस्ट बेचो। वह स्त्री की वजह से बिकेगा, और स्त्री के नंगेपन की वजह से बिकेगा। और टुथपेस्ट बिकेगा, अब स्त्री के नंगेपन से टुथपेस्ट का क्या संबंध है? कोई संबंध हो सकता है स्त्री के नंगा खड़ा करने से और टुथपेस्ट से? कोई संबंध नहीं है। लेकिन होशियार आदमी जानते हैं कि आदमी के दिमाग को कंडीशन करने की तरकीब है।
एक बच्चे को कहो कि नर्क में आग जल रही है, और आग में पड़ते हैं वे लोग
जो भगवान को नहीं मानते। बच्चा आग में जलने से डरता है, कहता है, भगवान को जो नहीं मानते वे आग में जलते हैं। और स्वर्ग में क्या होता है? जो भगवान मानते हैं, वहां कल्पवृक्ष है, उसके नीचे बैठ जाओ, जो भी कामना करो, फौरन हो जाती। बच्चा कहता, जो भी कामना करो, उसके नीचे बैठ कर कहो, खिलौना आ जाता है, तो खिलौना आ जाता है। बच्चा कहता है, फिर स्वर्ग ही जाना ठीक है। यह उसको प्रलोभन दे रहे हैं आप। उसके दिमाग को खराब कर रहे हैं, उसका चिंतन खराब कर रहे हैं, जहर डाल रहे हैं। और दोहराए चले जाओ, दोहराए चले जाओ, रोज-रोज वही कहो कि बिनाका टुथपेस्ट, रेडियो खोले तो बिनाका टुथपेस्ट, सड़क पर निकलो तो बिनाका टुथपेस्ट। अब तो बिजली के जो गहरे आविष्कार उन्होंने, एक आविष्कार यह है, पहले तो बिजली के बल्ब स्थिर रहते थे, जले रहते थे, अब वे जलते-बुझते रहते हैं, वैज्ञानिकों ने कहा कि जलाओ-बुझाओ, क्योंकि अगर जले ही रहें तो एक ही दफे पढ़ता है आदमी, और अगर बुझाओ बार-बार, तो उसको बार-बार पढ़ना पड़ता है, वह मजबूरी है। अब बिनाका फिर बुझ गया, अब फिर जला, फिर पढ़ना पड़ेगा बिनाका, फिर बुझ गया, फिर... जितनी देर निकलो उसके नीचे से उतनी देर वह बुझेगा, और जब बार-बार बुझेगा तो मजबूरी है, आपको देखना पड़ेगा, बिनाका, फिर बिनाका, और वह दिमाग में घुसता चला जा रहा है, दिमाग में डालते रहो, फिर एक दिन वह आदमी बाजार गया दुकान पर टुथपेस्टों की, ढेर लगा हुआ है, दुकानदार पूछता है, कौन सा टुथपेस्ट? वह कहता है, बिनाका! और वह सोचता है कि मैं सोच कर कह रहा हूं। वह सोच कर नहीं कह रहा। उसके दिमाग की रील पर बिनाका ठोक दिया गया, हैमर कर दिया गया। अब वह बेचारा कह रहा, बिनाका!
अभी अमरीका में उन्होंने सर्वे किया, जो अमरीका में सुपरमार्केट बनाए हुए हैं, वहां उन्होंने स्त्रियों का सर्वे किया, जो स्त्रियां वहां सामान खरीदने आती हैं। और जिस नतीजे पर पहुंचे वह बड़ी हैरानी का है। उन्होंने जो नतीजा दिया वह यह है कि स्त्रियां जो चीजें खरीदने आती हैं वह तो खरीदती ही नहीं, दूसरी खरीद कर चली जाती हैं। आमतौर से स्त्रियों के बाबत यह सच है, यहां भी, अमेरिका में भी। वे वह नहीं खरीदतीं जो खरीदने गई थीं, वे वह खरीद लाती हैं जो कि दुकानदार बेचना चाहता है। और बेचने के सब उपाय किए हुए हैं। वहां के मनोवैज्ञानिक ने कहा हुआ है कि जो चीज बेचनी हो वह किस रंग के डिब्बे में होनी चाहिए, स्त्रियों को कौनसा रंग जल्दी से उनके हृदय में उतर जाता है, रंग! डिब्बे के भीतर क्या है इससे कोई मतलब नहीं है। तो वे वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर उसी डिब्बे को लाल रंग में पोत कर रखो, तो सौ में नब्बे मौके उसके बिकने के हैं। उसको ही पीले रंग में रखो,

तो सौ में तीस मौके, बिकने की चीज वही है। उसको अलमारी पर अगर बिल्कुल ऊपर रखो, तो उसमें सौ में एक मौका है बिकने का, अगर बिल्कुल नीचे रखो, दस मौके हैं, अगर आंख की बिल्कुल सीध में रखो, तो उसके नब्बे मौके हैं।
तो दुकानदार अमरीका के सुपरमार्केट में ऊपर वह डिब्बे रखता है, जिनमें मुनाफा कम है, बीच में वे डिब्बे रखता है, जो सर्वाधिक मुनाफा के हैं, जो स्त्री की आंख के ठीक सीध में पड़ते हों, जिन पर उसकी आंख पहले पड़ती हो। और स्त्रियों के साथ उन्होंने यह अनुभव किया कि अगर काउंटर पर कोई आदमी हो, तो वह आदमी पूछता है क्या खरीदना है आपको? तो स्त्री को पहले से जो सोच कर आई है वह बताना पड़ता है, और उसको घर से सोच कर आना पड़ता है। इसलिए अमेरिका सुपरमार्केट से काउंटर से आदमी हटा दिया गया। क्योंकि उसको घर से सोच कर आना पड़ता है, और काउंटर पर आदमी पूछता है, हिंदुस्तान के दुकान में वह जाएगी, दुकान दार पूछेगा, क्या चाहिए आपको? तो वह कहती है, मुझे टुथपेस्ट चाहिए। तो टुथपेस्ट बताया जाता है। सुपरमार्केट में अमरीका से काउंटर पर से आदमी हटा दिया गया, सब चीजें रखी हैं, उनके नाम लिखे हैं, उनके दाम लिखे हैं, सिर्फ दरवाजे पर पैसा लेने वाला आदमी है। आपके हाथ में एक छोटी ठेलागाड़ी दे दी गई, आप ठेलागाड़ी लो और दुकान के अंदर चले जाओ। अब आपसे कोई पूछने वाला नहीं है। आपको जो जंचे वह निकाल कर रख लो। और जंचनी कैसे चाहिए चीज, उसका सब इंतजाम किया हुआ है। तो उनका जो नतीजा निकला है वह यह कि दस चीजों में से तीन चीजें तो वे होती हैं जो खरीदने आदमी आता है, सात वह होती हैं जो वैज्ञानिक तरकीब से उसको बेच दी गई हैं। दस में से सात चीजें आप वह खरीदते हैं जो आपको खरीदनी ही नहीं थी। लेकिन यह कोई समझाने से नहीं होता। माइंड को कंडीशन करने की तरकीब है।
धर्मगुरु पहले से वह तरकीबें जानते हैं, दुकानदारों को अब पता चल रहा है। धर्मगुरु पुराने दुकानदार हैं। नये दुकानदार नये धर्मगुरु हैं, अब वे नई विज्ञान, वैज्ञानिक ढंग से धर्मगुरुओं ने आदमी के मन को किस तरह से शोषण किया है, अब दुकानदार भी उसी तरह से शोषण कर रहा है। और आप हैरान होंगे जान कर कि समझा कर नहीं हो रहा है यह, बिना समझाए आपके दिमाग में कुछ बात डाली जा रही। आपको किसने हिंदू बना दिया? किसी ने समझाया था कि दुनिया में हिंदू-धर्म दुनिया में सबसे अच्छा है। किसी ने बताया था कि मुसलमान धर्म क्या है? जैन धर्म क्या है? ईसाई धर्म क्या है? फिर आपने चुना था, कोई च्वाइस थी आपकी चुनने में कि आप हिंदू कैसे हो गए? नहीं, कोई चुनाव नहीं था, बचपन से हिंदू-धर्म सर्वश्रेष्ठ है, हिंदू-भूमि पर देवता पैदा होने को तरसते हैं। किस देवता से पूछ कर यह बात बताई जा रही है? बस दिमाग में डाला जा रहा है। और यह भी समझाया जा रहा है, दूसरे की बात मत सुनना। इसलिए हिंदू मुसलमान की मस्जिद नहीं जाता। मस्जिद में जाने वाला हिंदू के मंदिर में नहीं आता। ये तो दूर की बातें हैं, शिव के मंदिर में जाने वाला विष्णु के मंदिर में नहीं जाता, क्योंकि दूसरे की बात सुनने से गड़बड़ा सकता है मामला। अगर बस चले, तो बिनाका वाले कभी पसंद नहीं करेंगे कि आपको दूसरे टुथपेस्ट की बात सुनने मिल जाए, लेकिन जरा मुश्किल है इस पर रोक लगाना। लेकिन धर्मगुरुओं ने बहुत होशियारी की, उन्होंने रोक लगा दी। बिनाका वाला क्या कर सकता है, अपने बोर्ड लगा सकता है, लेकिन दूसरों के बोर्ड थोड़े ही निकाल सकता है। रेडियो में अपनी खबर दे सकता है, लेकिन दूसरे टुथपेस्ट वालों की खबर तो नहीं रोक सकता। लेकिन धर्मगुरुओं ने यह भी इंतजाम किया। अपना बोर्ड लगाओ, अपनी किताब पढ़ाओ, अपना भाषण तो, अपने गुरु से समझवाओ, और दूसरे गुरु के पास जाने मत दो, दूसरे की किताब मत पढ़ने दो, दूसरे को बोलने मत दो। इसलिए धर्म के मामले में जितना अज्ञान है, उतना किसी और मामले में नहीं है। क्योंकि धर्म के संबंध में हमें सोचने-विचारने का मौका नहीं दिया गया। सोचता-विचारता जो है उसका दिमाग खुला चाहिए, पहले से बंद नहीं। इस देश के बंद मन को तोड़ देने की जरूरत है। सब द्वार-खिड़की खोल देने की जरूरत है। ताजी हवा आए, तो हम वैज्ञानिक चित्त को जन्म दे सकते हैं।
और प्रश्न रह गए, वह कल मैं बात करूंगा। कल सुबह परसों के सूत्रों पर
भी बात करूंगा। जो प्रश्न उनसे संबंधित होंगे, उनकी सुबह के सूत्रों में बात हो जाएगी।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत की खोज
तीसरा प्रवचन

आत्मघाती परंपरावाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से आज की बात मैं शुरू करना चाहूंगा।
वह कहानी तो आपने सुनी होगी, लेकिन अधूरी सुनी होगी। अधूरी ही बताई गई
है अब तक। पूरा बताना खतरनाक भी हो सकता है। इसलिए पूरी कहानी कभी बताई ही नहीं गई। और अधूरे सत्य असत्यों से भी ज्यादा घातक होते हैं। असत्य सीधा असत्य होता है, दिखाई पड़ जाता है। आधे सत्य सत्य दिखाई पड़ते हैं और सत्य होते नहीं। क्योंकि सत्य कभी आधा नहीं हो सकता है। या तो होता है या नहीं होता है। और बहुत से अधूरे सत्य मनुष्य को बताए गए हैं, इसलिए मनुष्य असत्य से मुक्त नहीं हो पाता है। असत्य से मुक्त हो जाना तो बहुत आसान है। अधूरे सत्यों से मुक्त होना बहुत कठिन हैं। क्योंकि वे सत्य होने का भ्रम देते हैं और सत्य होते भी नहीं हैं। ऐसी ही यह आधी कहानी भी बताई गई है। छोटे-छोटे बच्चों को हम स्कूल में पढ़ाते हैं। सभी को वह कहानी पता होगी। वह कहानी है कि एक सौदागर टोपियां बेचता है। वह टोपियां बेचने एक बाजार की तरफ गया है। रास्ते में थक गया है और एक वृक्ष के नीचे सो गया। वृक्ष पर बंदरों का निवास है। उस सोए हुए सौदागर को देख कर वे नीचे उतरे हैं। उन्होंने उसकी टोकरी खोल ली है। वह सौदागर टोपियां बना कर बेचता है। उन बंदरों ने वे टोपियां पहन लीं और वृक्ष पर चढ़ गए। सौदागर की नींद खुली। सारी टोपियां वृक्ष पर बंदरों के पास चली गई थीं। बड़ा मुश्किल था उन टोपियों को बंदरों से वापस लेना। लेकिन मुश्किल नहीं भी था। नकलचियों से कुछ भी करवा लेना बहुत मुश्किल नहीं होता। सौदागर ने अपनी सिर पर पहनी टोपी निकाल कर रास्ते पर फेंक दी। बंदरों ने भी अपनी टोपियां निकाल कर रास्ते पर फेंक दीं। सौदागर ने टोपियां इकट्ठी कर लीं और घर लौट आया। इतनी कहानी आपने सुनी होगी। यह आधी कहानी है।
फिर सौदागर का बेटा बड़ा हुआ और उस बेटे ने भी टोपियां बेचनी शुरू कीं। क्योंकि बहुत कम बेटे ऐसे होते हैं जो बाप से आगे बढ़ते हों। हालांकि दुनिया उन थोड़े बेटों से आगे बढ़ती है जो बाप से आगे बढ़ते हैं। लेकिन कोई बाप नहीं चाहता कि बेटे बाप की सीमा को पार करके आगे जाएं। और ऐसे सब बाप खतरनाक सिद्ध होते हैं, क्योंकि समाज के लिए ऐसे सब बाप जंजीरें साबित होते हैं। बाप ने बेटे को भी टोपियां बेचना सिखाया। बाप वही सिखा सकता है जो खुद सीखा हो। बेटा टोपियां बेचने गया, और उसी झाड़ के नीचे रुका, जहां उसका बाप रुक गया था। नालायक बेटे वहीं ठहर जाते हैं, जहां बाप ठहरते हैं। और उसने वहीं वह अपनी टोकरी रखी, जहां बाप ने रखी थी। क्योंकि और दूसरी जगह कैसे रख सकता था? बंदरों की भी पीढ़ी बदल गई थी। नये बेटे वृक्ष पर बैठे थे। सौदागर सो गया। वे बंदर नीचे उतरे, उन्होंने टोपियां लगाईं और वृक्ष पर चले गए।
सौदागर की नींद खुली। उसे ख्याल आया, बाप ने कहा था, एक बार बंदर उसकी टोपियां ले गए थे तो उसने अपनी टोपी फेंक दी थी। वह हंसा, उसने कहा, पागलो, तुम्हें पता नहीं। तुमने समस्या खड़ी की है, लेकिन मेरे पास समाधान है। मेरे बाप ने मुझे समाधान दिया है। उसने अपनी टोपी सड़क पर फेंक दी। लेकिन बड़ा चमत्कार हुआ, एक बंदर नीचे उतरा, उस टोपी को भी उठा कर ऊपर चला गया। क्योंकि बंदर अब तक सीख गए थे। जो धोखा एक बार खा गए थे अब वह दुबारा खाने को राजी नहीं थे। लेकिन वह आदमी का बेटा, वही समाधान पकड़े था जो बाप ने पकड़ाया था। समस्या बदल गई थी, क्योंकि बंदर बदल गए थे। समय बदल गया था, लेकिन समाधान पुराना था। यह आधी कहानी आपको पता नहीं होगी, और आधी कहानी ज्यादा जरूरी है पहली आधा कहानी से।
क्यों इससे अपनी बात शुरू करना चाहता हूं? इसलिए कि भारत की समस्याओं
और भारत की प्रतिभा के संबंध में सोचते समय दूसरा सूत्र, एक सूत्र मैंने कल कहा, एस्केपिज्म, पलायनवाद भारत की प्रतिभा का आत्मघात सिद्ध हुआ है। दूसरा सूत्र आज कहना चाहता हूंः परंपरावाद, ट्रेडिशनलिज्म। इसने भारत की

प्रतिभा को विकसित नहीं होने दिया है। समस्याएं रोज बदल जाती हैं और समाधान हमारे बदलते ही नहीं। समाधान हमारे शाश्वत हैं। और समस्याएं क्षण-क्षण में बदल जाती हैं। इससे कोई समस्याओं को नुकसान नहीं होता, इससे पकड़े हुए जो समाधान को बैठे हैं वे पराजित हो जाते हैं, हार जाते हैं, और जीवन का मुकाबला नहीं कर पाते। बदली हुई समस्या बदला हुआ समाधान चाहती है।
लेकिन परंपरावादी की दृष्टि यह होती है कि जो समाधान परंपरा ने दिया है, वही सत्य है। जो पुराने से आया है, वही सत्य है। नये की खोज करना पाप है, पुराने को मानना पुण्य है और धर्म है। और जो समाज पुराने को मानने को ही धर्म समझ लेता है और नये से भयभीत हो जाता है उस समाज की प्रतिभा का विकास अवरुद्ध हो जाए, तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि प्रतिभा विकसित होती है नये की खोज से, निरंतर नये की खोज से। जितना हम नया खोजते हैं, उतना हमारा मस्तिष्क विकसित होता है। जितना हम पुराने को पकड़ लेते हैं, उतना ही मस्तिष्क के विकास की जरूरत समाप्त हो जाती है। नई समस्या एक मौका बनती है कि हम नई चुनौती स्वीकार करें, नया समाधान खोजें, ताकि हम विकसित हो जाएं। न समस्या का उतना मूल्य है, न समाधान का उतना मूल्य है, लेकिन समस्या समाधान को खोजने की चुनौती देती है। अंतिम मूल्य चेतना के विकास का है। लेकिन जो लोग पुराने समाधान से चिपट कर रह जाते हैं, उनकी चेतना चुनौती खो देती है, और वे विकसित नहीं हो पाते हैं।
भारत की प्रतिभा पुराने समाधानों को पकड़ कर ठहर गई है। और इतनी हैरानी मालूम होती है कि पता नहीं कब ठहर गई है, कितने हजार वर्ष पहले, यह भी कहना मुश्किल है? ऐसा ही लगता है कि ज्ञात इतिहास, जब से हम जानते हैं इतिहास को, तब से भारत ठहरा ही हुआ है। और जितना पुराना समाधान हो, हमारे मन में उसका उतना ही आदर है। जितनी पुरानी किताब हो, उतना ही सम्मान है। यह पुराने का आदर और पुराने का सम्मान नये को कैसे जन्म होने देगा? और जो प्रतिभा नये को जन्म देना बंद कर देती है, वह प्रतिभा बहुत पहले मर चुकी, अब उसकी जीवंतता खो गई, अब वह जीवित नहीं है। जीवन की प्रत्येक बात के उत्तर हमने खोज लिए हैं, पता नहीं कब खोज लिए हैं। और ऐसा मालूम होता है कि जिन शास्त्रों को पकड़ कर हम बैठे हैं, वे शास्त्र भी यह कहते हैं कि फलां ऋषि से फलां ऋषि से सुना, फलां ऋषि ने फलां ऋषि से सुना, उनसे हमने सुना। जो हमने सुना है, उसी को स्मरण करके हम कहते हैं।
हमारे पुराने शास्त्रों का नाम हैः श्रुति और स्मृति। श्रुति यानी जो सुना है, जाना नहीं। स्मृति यानी जो याद किया गया है, जाना नहीं। हम सदा से सुनते और याद ही करते रहे हैं। हमेशा पिछले से सुना है और आगे दोहरा दिया है। हजारों वर्ष से हम दोहरा रहे हैं। दस दोहराने में, इस रिपीटीशन ने जंग लगा दी है हमारे सारे मस्तिष्क को, सारी मेधा को। हमारी सारी बुद्धि सड़ गई है। हमारे मस्तिष्क के पास सिवाय पुराने, उधार, सड़े हुए समाधानों के और कुछ भी नहीं है। इसीलिए जिंदगी में हम रोज हारते चले गए हैं और आज भी हार रहे हैं। और कल भी बहुत कम आशा दिखाई पड़ती है कि हम जीत सकें। क्योंकि जब तक यह मस्तिष्क है, यह पुराना दिमाग, तब तक हमारी जीत, जीवन संघर्ष में हमारी विजय असंभव मालूम होती है। क्योंकि प्रत्येक नई समस्या कहती है, नया समाधान लाओ। और हम अपनी किताब में खोजने चले जाते हैं और पुराना समाधान ले आते हैं। वह पुराना समाधान काम नहीं करेगा।
कोई पुरानी स्थिति फिर दुबारा नहीं दोहरती है। जो लोग कहते हैं, हिस्ट्री रिपीट इट सेल्फ वे बिल्कुल झूठ कहते हैं। जगत में कुछ भी नहीं दोहरता है, इतिहास कभी नहीं दोहरता है। कुछ भी नहीं दोहरता है, कुछ भी दोहर नहीं सकता है। कोई पुनरुक्ति नहीं हो सकती। इतना अनंत जाल है कि पुनरुक्ति होना असंभव है। फिर से वही नहीं हो सकता, जो था। ठीक वैसा नहीं हो सकता, जैसा था। और अगर हमें दिखाई पड़ता है कि वैसा ही है तो वह सिर्फ हमारे देखने की नासमझी है। वह देखने की कम गहराई का सबूत है। वह देखने के सूक्ष्म विकास नहीं हो सका, इसलिए हमें वैसा ही दिखाई पड़ता है। आप कल सुबह भी आए थे, न तो आप वही हैं, मैं कल सुबह भी आया था, मैं भी वही नहीं हूं। चौबीस घंटे में गंगा का बहुत पानी बह चुका। आपकी चेतना का भी बहुत जल बह चुका। आप वही नहीं हैं, और अगर वही हैं तो बहुत दुखद है यह बात, क्योंकि आप

फिर मरे हुए आदमी हैं। सिर्फ मरा हुआ नहीं बदलता, जीवन तो बदलता चला जाता है। आप वही नहीं हो सकते जो कल थे। और इस घंटे भर के बाद जब आप इस हाल से निकलेंगे तो वही नहीं होंगे, जो इस हाल में प्रवेश करते समय थे। कैसे वही हो सकते हैं? घंटे भर में कितना सब बदल जाएगा। घंटे भर में चित्त कितनी नई बातें सोचेगा, कितना पुराना बह जाएगा, कितना नये का प्रवेश हो जाएगा। जीवन में पुराना कहीं भी नहीं है। जीवन तो प्रतिपल नया है। लेकिन हमारा मन पुराना है। पुराने मन और नये जीवन में जोड़ नहीं बैठता, तालमेल नहीं बैठता। और तब, तब जिच पैदा होती है, तब परेशानी पैदा होती है, तब चिंता पैदा होती है।
भारत के सामने जो बड़ी से बड़ी चिंता है, वह यह है कि जिंदगी रोज नये-नये सवाल खड़ी कर देती है और हमारे पास पुरानी किताबें हैं, और पुराने समाधान हैं। अगर अछूत के संबंध में फिर से सोचने का सवाल है तो मनु की स्मृति खोल कर बैठे हुए हैं लोग। और खोज रहे हैं कि मनु स्मृति में क्या लिखा हुआ है। कोई तीन हजार वर्ष पहले मनु ने क्या कहा है, उसका आज क्या उपयोग हो सकता है, क्या अर्थ हो सकता है? समस्या आज की है और बिल्कुल नई है, लेकिन हम समाधान सदा पुराने खोजेंगे।
जिंदगी का सवाल उठेगा और आदमी गीता खोल कर समाधान खोजेगा। गीता किसी समस्या का उत्तर थी। अर्जुन के सामने कोई सवाल खड़ा हो गया होगा। और गीता उस सवाल का उत्तर थी। लेकिन जब अर्जुन ने सवाल खड़ा किया था तो कृष्ण ने कोई पुरानी किताब खोल कर समाधान नहीं खोजा था। वे नहीं गए थे कि खोल लेते वेद, और वेद पढ़ कर सुनाने लगते अर्जुन को। एक समस्या सामने खड़ी थी अर्जुन के। युद्ध था, बुद्ध से भागने का मन था। हिंसा थी, हिंसा से छूटने का मन था। अपने ही प्रियजन थे, उनकी हत्या करने का सवाल था। और अर्जुन का मन डांवाडोल हो गया है। तो कृष्ण कोई बहुत पुरानी किताब खोजने नहीं चले गए।
कृष्ण ने उस समस्या का सामना किया, एनकाउंटर किया, एक कोई जवाब दिया। वह जवाब लिख कर हम बैठे हुए हैं। और गांधी के सामने कोई समस्या हो, तो गीता- माता को खोल कर बैठ जाएंगे।
खतरनाक है यह प्रवृत्ति! सवाल नये हैं, किताबें सब पुरानी हैं। किताबें नई कैसे हो सकती हैं? लिखी गई कि पुरानी हो गयीं। कोई उत्तर दिया गया कि पुराना हो गया। सभी उत्तर पुराने हैं, क्योंकि देते ही पुराने हो जाएंगे। और सब सवाल नये हैं। और नया सवाल, नई चेतना की मांग करता है।
नई चेतना का क्या अर्थ है? नई चेतना का अर्थ है, जिसके पास कोई बंधा हुआ उत्तर नहीं है। जिसके पास कोई बंधे हुए सूत्र नहीं हैं। जिसके पास जागती हुई चैतन्य आत्मा है और उस आत्मा को वह सवाल के सामने खड़ा कर देता है। जैसे हम आईने के सामने किसी को खड़ा कर दें, जो खड़ा हो जाता है आईने में उसी की तस्वीर बन जाती है। आईने के पास अपनी कोई तस्वीर नहीं है, अपना कोई चित्र नहीं है, अपना कोई ईमेज नहीं है, अपना कोई उत्तर नहीं है। आईना यह नहीं कहता कि ऐसी पकड़ होनी चाहिए, ऐसी आंख होनी चाहिए, तब में चित्र बनाऊंगा। आईना कहता है, जो भी होगा, उसका चित्र बन जाएगा। आईने की सफलता यही है कि आईना बिगाड़े न, जैसा है उसको वैसा ही बता दे। नई चेतना का अर्थ है, सवाल जो सामने खड़े हों, आईने की तरह हमारी चेतना के सामने स्पष्ट और साफ हो जाएं, जैसे वे हैं। लेकिन वे कभी स्पष्ट नहीं होंगे, अगर हमारे पास उत्तर पहले से मौजूद हैं।
उत्तर सवाल को समझने में सबसे बड़ी बाधा है। तैयार उत्तर, रेडीमेड उत्तर, समस्या को समझने ही नहीं देता। और समस्या को समझ न सकें तो समाधान कैसे खोजा जा सकता है? सच तो यह है, किसी सवाल को ठीक से समझ लेना ही उसका समाधान है। किसी सवाल को उसके पूरी जड़ों तक समझ लेना, उसका सवाल का जवाब है। जवाब तो आ जाएगा चेतना से, लेकिन सवाल को समझने का सवाल है। और सवाल को हम नहीं समझ पाते, क्योंकि हमारे पास जवाब सब पहले से तय हैं।
भारत की प्रतिभा में जो सबसे बड़ा अवरोध है, वह उसका परंपरा, परंपरावाद। परंपराएं तो होंगी, लेकिन परंपरावाद बिल्कुल दूसरी बात है। ट्रेडीशंस तो होंगी, लेकिन ट्रेडीशनलिज्म बिल्कुल दूसरी बात है।
परंपराएं तो बनेंगी, लेकिन अगर परंपरावादी चित्त न हो, तो हम कभी उनसे

बंधे नहीं होंगे, उनसे सदा ऊपर उठते रहेंगे, उनको ट्रांसेंड करते रहेंगे, रोज उनके पार जाते रहेंगे। लेकिन अगर परंपरा का वाद पैदा हो गया कि जो अतीत में है, जो पुराना है, उसे पकड़ना है, क्योंकि वही सत्य है, वही ऋषि- मुनियों का जाना हुआ है, वही ज्ञानियों का कहा हुआ है। हम अज्ञानी कैसे खोज सकते हैं? हम तो सिर्फ मान सकते हैं। तो फिर, फिर पूरे मुल्क की जीवन-चेतना, एक कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाने लगेगी। फिर सीधी रेखा में गति नहीं होगी, फिर हम चक्कर लगाते रहेंगे। फिर हमारा एक ही काम होगा कि हम पुराने को सिद्ध करने की सारी ताकत लगाते रहें। समस्याएं हमारी फिकर नहीं करेंगी, वे बदलती चली जाएंगी। वे इस बात की चिंता नहीं करेंगी कि आपके लिए रुकी रहें, वे रोज बदलती चली जाएंगी। और हम रोज पिछड़ते चले जाएंगे।
भारत कंटेम्प्रेरी नहीं है। हम बीसवीं सदी में नहीं रह रहे हैं। हम
रह रहे हैं कोई ईसा से एक हजार साल पहले। कोई तीन हजार वर्ष पहले। हम वहीं ठहरे हैं जहां गीता और मनु, महावीर और बुद्ध ठहर गए हैं। हम उसके आगे नहीं बढ़े हैं। तीन हजार साल से हमारी चेतना एक चक्कर में घूम रही है। और एक ही काम कर रही है कि पुराने का गुणगान करो, पुराने को सिद्ध करो, पुराना ठीक है, और पुराने को ज्यादा पुराना सिद्ध करो। जाहिर है कि हमारे वेद पांच हजार वर्ष से ज्यादा पुराने नहीं है। लेकिन हमारे मन को बड़ी चोट लगती है, अगर कोई यह कहे कि वे पांच हजार वर्ष पुराने हैं। ऐसे लोग हैं इस मुल्क में जो पचहत्तर हजार वर्ष पुराना सिद्ध करना चाहते हैं, नब्बे हजार वर्ष पुराना सिद्ध करना चाहते हैं। ऐसे लोग भी हैं जिनकी तृप्ति इससे भी नहीं होती, जो कहते हैं, वह सनातन है, वह हमेशा से है, समय में उनको बांधा ही नहीं जा सकता। ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं, पहले वेद बना और फिर सब बना। यह पीछे खींचने का पागल मोह क्या है? क्यों पीछे खींचना चाहते हैं? यह पीछे खींचने का मोह इसलिए है कि हमारा ख्याल यह है कि जो जितना पुराना है, उतना सत्यतर है, उतना शुद्धतर है। जो जितना नया है उतना अशुद्ध है, उतना गलत है। पुराना होना ही बड़े बहुमूल्य बात है।
शराब के संबंध में तो कहा जाता है कि पुरानी शराब अच्छी होती है, लेकिन सत्य पुराने अच्छे नहीं होते। लेकिन हम सत्य के साथ भी शराब का ही व्यवहार कर रहे हैं। उसको भी पुराना सिद्ध करने में बड़ी ताकत लगाते हैं। अब सत्य कोई नशा लाने के लिए थोड़े ही है। शराब इसलिए अच्छी होती है कि जितनी पुरानी होती है, उतनी सड़ जाती है। जितनी सड़ जाती है, उतनी नशे वाली हो जाती है। सत्य जितना पुराना हो जाता है, उतना ही सड़ जाता है, उतना ही खतरनाक हो जाता है, उतना फेंकने योग्य हो जाता है। सत्य रोज नया चाहिए। हां, शराब पुरानी चल सकती है। लेकिन कुछ लोग शास्त्रों के साथ भी वही करते हैं, जो शराब के साथ करते हैं। शास्त्र भी उनकी शराब है। और इसलिए पुराना सिद्ध करने की कोशिश चलती है कि हमारा शास्त्र तुमसे ज्यादा पुराना है। हिंदुस्तान की प्रतिभा का ज्यादा समय इस तरह की नानसेंस में, बेवकूफियों में खर्च होता है। मैं एक सभा मैं बोल रहा था। एक सज्जन खड़े हुए और उन्होंने मुझसे कहा कि आपसे मुझे एक बात पूछनी है कि उम्र महावीर की बड़ी थी कि बुद्ध की बड़ी थी? मैं तीन साल से शोध कर रहा हूं। मैंने कहा कि मुझे पता नहीं और कोई जरूरत भी नहीं है कि बुद्ध की उम्र बड़ी थी कि महावीर की उम्र बड़ी थी। एक बात तय है कि तुम्हारी तीन साल की उम्र खराब हो गई। वह कुछ भी कोई बड़ा रहा हो, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन नहीं, इसमें भी अगर महावीर को उम्र में बड़ा सिद्ध किया जा सके, तो जैसे वे बड़े हो जाएंगे बुद्ध से। या बुद्ध को बड़ा सिद्ध किया जा सके तो वे बड़े हो जाएंगे महावीर से, वे ज्यादा पुराने हो जाएंगे।
यह पुराने का मोह, यह पुराने का मोह अकारण नहीं है, इसके पीछे कारण हैं। और वे कारण हमारी समझ में आ जाएं, तो हम भारत की प्रतिभा को नये के लिए मुक्त कर सकते हैं। वे कारण समझने चाहिए।
पहली बात, पुराना सुरक्षित है, सिक्योरिटी है उसमें। वह जाना-माना है। वह परिचित है। उसे हम भलीभांति जानते हैं। वह शास्त्र में रेखाबद्ध है, लिखा हुआ है। वह लीक पीटी हुई है। उस पर जाने में डर नहीं है। नया हमेशा खतरनाक है, डेंजरस है। पता नहीं क्या हो? लीकबद्ध नहीं है, रेखाबद्ध नहीं

है, कोई नक्शा नहीं है, अनचार्टर्ड है। तो नये में डर मालूम पड़ता है, असुरक्षा मालूम पड़ती है। कहीं ऐसा न हो कि पुराने को छोड़ दें और नया भटका दे। इसलिए पुराने को पकड़े रहो, नये पर मत जाओ।
जो कौम जितनी भयभीत होती है, उतना पुराने का आदर करती है। पुराने के आदर के पीछे फियर, भय काम करता है। जो कौम जितनी निर्भय होती है, उतने नये की खोज करती है। नये का एडवेंचर, नये का साहस। जो नहीं जाना है उसे जानना है, निश्चित ही उसमें खतरे हैं। क्योंकि हो सकता है नया रास्ता गड्ढों में ले जाए, पहाड़ों में ले जाए, खतरों में ले जाए, ऐसी जगह ले जाए जहां जिंदगी मुश्किल में पड़ जाए। नया खतरे में ले जा सकता है। पुराना पहचाना हुआ है। उसी रास्ते से हजारों बार हम गुजरे हैं, हजारों लोग गुजरे हैं। उस रास्ते पर हजारों लोगों के चरण-चिह्न हैं। वह पहचाना, परिचित है, उस पर चलने में सुविधा है, सुरक्षा है। लेकिन ज्ञात होना चाहिए, जितना जीवन सुरक्षित हो जाता है, उतना ही मर जाता है। जितनी असुरक्षा को वरण करने की हिम्मत हो, जीवन उतना ही लिविंग और जीवंत होता है।
क्यों? सच तो यह है कि जीवन स्वयं एक असुरक्षा है। जो मर गए हैं, वे ही केवल सुरक्षित हैं। अब उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ा जा सकता। इसलिए कब्र से ज्यादा सुरक्षित कोई स्थान नहीं है। कोई बीमा कंपनी इतनी सुरक्षा नहीं दे सकती, जितना मरघट देता है। क्योंकि उसके बाद कुछ भी नहीं बिगड़ सकता। पहली तो बात यह है कि मरने के बाद फिर आप मर नहीं सकते। मर गए और मर गए, अब खत्म, अब वह बात खत्म हो गई। अब मरने का कोई डर नहीं है। मरने के बाद बीमार नहीं पड़ सकते। मरने के बाद पाप नहीं कर सकते, अपराध नहीं कर सकते। मरने के बाद कुछ भी नहीं हो सकता। नया कुछ भी नहीं होगा। मरने का मतलब है कि नये का होना बंद हो गया। अब जो हो गया, सब चीजें वहीं ठहर जाएंगी। एक आदमी मर गया एक तारीख को महीने की, तो दो तारीख नहीं आएगी, तीन तारीख नहीं आएगी, अब कुछ नहीं आएगा। एक तारीख पर सब ठहर गया उस आदमी के लिए। अब नया नहीं होगा। अब जो हो गया, हो गया। अब सिर्फ इतिहास होगा, भविष्य नहीं होगा। मरे हुए आदमी का सिर्फ अतीत होता है, भविष्य नहीं होता। भविष्य खतरनाक है।
लेकिन जीवन ही एक खतरा है। जीवन ही एक असुरक्षा है। जो लोग जीवन को प्रेम करते हैं, वे असुरक्षा को भी प्रेम करते हैं। जीवन का प्रेम अनिवार्य रूप से खतरे का प्रेम है। जो लोग जीवन को प्रेम नहीं करते, सुसाइडल हैं, आत्मघाती हैं, वे सुरक्षा को प्रेम करते हैं। वे सब तरह का इंतजाम कर लेते हैं।
मैंने सुना है, एक सम्राट ने एक मकान बनाया, एक महल। और सब तरह का इंतजाम किया कि कोई खतरा न हो। तो डर के कारण उसने सिर्फ एक दरवाजा रखा उस महल में। दूसरे दरवाजे-खिड़कियां रखना खतरनाक है। रात कोई दुश्मन घुस जाए, चोर घुस जाए, डाकू घुस जाए। फिर बहुत दरवाजे हों, तो बहुत पहरेदार रखने पड़ेंगे। फिर बहुत पहरेदार हों, तो पहरेदारों से भी डर हो सकता है। इसलिए एक दरवाजा रखा। और अपने ही आदमी रखे। और अपने आदमियों पर भी और अपने आदमी रखे। एक हजार पहरेदार रखे, एक के ऊपर एक पहरेदार, एक के ऊपर एक पहरेदार। खतरे का कोई उपाय नहीं। कोई खतरा नहीं हो सकता। एक दरवाजा, एक खिड़की नहीं, दूसरा दरवाजा नहीं, सारा महल बंद। सिर्फ एक दरवाजा भीतर-बाहर जाने को। पड़ोस का राजा उसका महल देखने आया और बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहाः ऐसा महल मैं भी बना लूंगा। यह तो बिल्कुल सुरक्षित है। जब पड़ोस का राजा प्रशंसा करके द्वार से निकल रहा था और महल का मालिक खुश हो रहा था कि मैंने एक अदभुत महल बना लिया, तो सड़क के किनारे बैठा हुआ एक बूढ़ा भिखारी जोर से हंसने लगा। उस महल के मालिक ने पूछा, क्यों हंसता है? क्या हो गया? कोई भूल रह गई?
उस भिखारी ने कहाः मालिक, आपने पूछा है तो बता दूं। जब से यह महल बन रहा है तभी से मैं देख रहा हूं, एक भूल रह गई। सम्राट ने कहाः कौन सी भूल? हम उसे ठीक कर लें।
उस भिखारी ने कहाः इसमें एक दरवाजा भी नहीं होना चाहिए। आप भीतर हो जाइए और दरवाजा बंद करवा लीजिए। आप बिल्कुल सुरक्षित हो जाएंगे। यह एक दरवाजा खतरनाक है, इससे मौत भीतर घुस सकती है।

उस राजा ने कहाः पागल, अगर इसको भी मैंने बंद कर लिया, तो में मरने के पहले ही मर जाऊंगा।
तो उस भिखारी ने कहाः तो फिर ठीक सुन लें। जितने दरवाजे आपने बंद किए, उसी अंश में आप मरते चले गए। थोड़े से जिंदा हैं, एक दरवाजे की वजह से। यह भी बंद कर लें, तो बिल्कुल मर जाएंगे। मेरा भी महल था, लेकिन मैंने पाया कि महल में जिंदा रहना पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि पहरा है। और जहां पहरा है, वहां जिंदगी पूरी कैसे हो सकती है? दीवालें हैं। और मैंने पाया कि जितने ज्यादा दरवाजे हों, जिंदगी उतनी होती है। तो फिर मैंने दरवाजे खोलने शुरू किए। फिर धीरे-धीरे मुझे एक ख्याल आया कि क्यों मैं खुले आकाश के नीचे क्यों न चला जाऊं, जहां जीवन पूरा होगा, टोटल होगा। इसलिए मैं महल छोड़ कर खुले आकाश के नीचे आ गया। मैं आपसे कहता हूं, अगर मरना हो, तो सुरक्षा पूरी कर लें और अगर जीवित रहना हो, तो असुरक्षा के वरण और स्वागत करने की हिम्मत और साहस होना चाहिए।
यह भारत की जो परंपरावादिता है, यह जो पुराने को पकड़ लेने का आग्रह है,
यह नये का भय है। नये का भय जीवन का भय है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, भारत की प्रतिभा स्युसाइडल है, आत्मघाती है। हम मरने मैं ज्यादा उत्सुक हैं, जीने में कम। इसलिए हम मोक्ष की ज्यादा बातें करते हैं, जीवन की कम। हम इस बात में ज्यादा आतुर हैं कि मरने के बाद क्या है? मरने के पहले क्या है, हमारी इसमें कोई उत्सुकता नहीं है। हम स्वर्ग और नरक के लिए ज्यादा चिंतित हैं। हम यह पृथ्वी स्वर्ग बने या नरक बने, इसके लिए बिल्कुल चिंतित नहीं हैं। हम अभी और यहां, हमारा कोई रस नहीं है, हमारा रस सदा वहां है-- मृत्यु के पार, मृत्यु के बाद।
मुझे लोग रोज मिलते हैं, जो पूछते हैं, मरने के बाद क्या होगा? मैं उस आदमी की तलाश में हूं जो पूछे कि मरने के पहले क्या हो? वह नहीं कोई पूछता कि मरने के पहले क्या हो? लोग पूछते हैं, मरने के बाद क्या हो! ऐसा प्रतीत होता है कि हम मृत्यु की छाया में जी रहे हैं। और हमारी प्रतिभा ने मृत्यु की छाया को बहुत बड़ा करके बता दिया है। और इतना बड़ा करके बता दिया है कि धीरे-धीरे हम यह भूल ही गए कि जीना है। हम सिर्फ इसी फिक्र में लगे हैं कि मृत्यु से किस तरह बच जाएं, या मृत्यु से किस तरह पार हो जाएं। हम भयभीत हैं, और भय से भरे हुए लोग कभी भी जीवंत नहीं हो सकते हैं। परंपरावाद से मुक्त होना हो तो सुरक्षा के अति मोह से मुक्त होना जरूरी है।
और मजे की बात यह है कि जीवन में सुरक्षा हो ही नहीं सकती। सब सुरक्षा भ्रम है। मैं कितना ही बड़ा मकान बनाऊं और कितने ही लोहे कि दीवालें बनाऊं और कितनी ही संगीनें पहरे पर रख दूं, तो भी मैं मरूंगा। मरने से, बीमार होने से क्या सुरक्षा है? मैं कितने ही विवाह के कानून बनाऊं, मैं कितनी ही अदालतें बिठाऊं, जरूरी नहीं है कि जो पत्नी मुझे आज प्रेम करती है, वह कल भी मुझे प्रेम करे। मैं कितना ही दोहराऊं कि प्रेम शाश्वत है, लेकिन इस जगत में कुछ भी शाश्वत नहीं है। न प्रेम, और न कुछ और। इस जगत में सभी कुछ बदलता हुआ है, इसलिए कितने ही कानून बिठाओ, कितनी ही अदालतें बनाओ, कितने ही नियम बनाओ, कोई सुरक्षा नहीं है कि जिसने मुझे आज प्रेम दिया वह कल भी मुझे प्रेम देगा। कल असुरक्षित है।
एक खतरा और है। अगर मैंने सुरक्षा का बहुत इंतजाम किया तो शायद कानून
की व्यवस्था इतनी सख्त हो जाए कि वह आज मुझे प्रेम दे सकता था, वह भी न दे पाए। इतना मुक्त न रह जाए कि प्रेम आज भी दे सके। न प्रेम का कोई भरोसा है, न जीवन का कोई भरोसा है। श्वास चल रही है, एक क्षण बाद नहीं चले। ऐसा क्षण आएगा ही कि एक क्षण बाद नहीं चलेगी। क्या सुरक्षा है?
मित्र का कोई भरोसा है? जो मित्र है, वह कल मित्र न रह जाए। शत्रु का
तक भरोसा नहीं है, जो शत्रु है, वह कल शत्रु न रह जाए। शत्रु का ही जहां भरोसा नहीं, मित्र का जहां भरोसा नहीं, जहां किसी चीज का कोई भरोसा नहीं है, वहां हम एक इल्यूजरी, एक सिक्योरिटी बना कर, एक काल्पनिक सुरक्षा का जाल बना कर, उसके भीतर बैठे कर मर जाते हैं।
नहीं; जीवन असुरक्षा है। जीवन ही इनसिक्योरिटी है। जीवन है ही ऐसा। जीवन के इस तथ्य को, यह जीवन की जो सचनेस है, यह जीवन ऐसा है कि जहां जन्म

है, यहां मृत्यु है; यहां स्वास्थ्य है, यहां बीमारी है; यहां मिलना है, यहां बिछुड़ना है। यहां दोस्ती है, यहां दुश्मनी है, यहां श्वास आएगी और जाएगी भी। और जाना भी उतना ही सुखद है, जितना आना। और जन्म भी उतना ही आनंद है, जितनी मृत्यु। लेकिन सिर्फ उसके लिए जिसने सुरक्षा का पागल मोह नहीं पकड़ लिया।
सुकरात मर रहा था। जहर देने के पहले उसके मित्रों ने सुकरात को पूछा
कि हमने पता लगाया है, जिन लोगों ने तुम्हें मृत्यु की सजा दी है, वे कहते हैं, कि अगर तुम सत्य के संबंध में बोलना बंद कर दो, तो तुम्हें क्षमा किया जा सकता है, तुम बच सकते हो।
सुकरात ने कहाः क्या वे यह कहते हैं कि फिर मैं सदा बच सकूंगा? अगर वे ऐसा कहते हों तो मैं सोचूं?
मित्रों ने कहाः सदा बचने का भरोसा कोई भी नहीं दे सकता।
तो सुकरात ने कहाः जब मरना ही है तो फिर मरने से सुरक्षा के लिए असत्य बोलना समझ में नहीं आता। जब मरना ही है तो फिर सत्य बोलते ही मरना अच्छा है। फिर जहर पीसा जाने लगा। बाहर जहर पीसा जा रहा है। और सुकरात बार-बार पूछने लगा अपने मित्रों से कि देखो, बड़ी देर हुई जाती है। जहर पीसने वाला बहुत देर लगा रहा है। मित्र रो रहे हैं और वे कहने लगे, तुम पागल हो गए हो! जितनी देर हो जाए, उतना अच्छा, तुम जितनी देर और जी लो उतना अच्छा। इतनी उत्सुकता क्या है मरने की?
सुकरात कहने लगा, मृत्यु नई है, अपरिचित है, उसे जानने का मन होता है। उसे कभी जाना नहीं। वह बिल्कुल नया है। वह मृत्यु कैसी है? वह मृत्यु का लोभ कैसा है? हम बचते हैं कि नहीं बचते हैं? मैं उसे जानने के लिए आतुर हूं। मैं नये को जानने के लिए आतुर हूं। जीवन तो जाना जा चुका, वह पुराना पड़ चुका।
सुकरात जैसे लोगों को मारा नहीं जा सकता, क्योंकि उन्हें मृत्यु भी
नई है और जीवन का एक हिस्सा है। जो जानता है, वह जन्म और मृत्यु को समान ही मानेगा।
जन्म भी अगर हम बहुत ख्याल से देखें, तो एक खतरा है। हमें पता नहीं है,
यह दूसरी बात है। जो बच्चा मां के पेट में है, वह बहुत सुरक्षित है। आपको पता है? उससे ज्यादा सुरक्षा फिर कब्र में ही मिलेगी, और कहीं भी नहीं मिलेगी। मां के पेट में जो बच्चा है, न नौकरी करनी पड़ती, न दुकान करनी पड़ती, न जिंदगी के खतरे हैं, न खाने की चिंता है, न पीने की चिंता है। मां के पेट में वह करीब-करीब मोक्ष में है। वहां कुछ भी नहीं करना पड़ता, सिर्फ जीता है। सब मां करती है, सब मां से होता है, वह सिर्फ जीता है, वह सिर्फ जीता है। वहां कुछ भी नहीं करना पड़ता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की कल्पना लोगों को पैदा हुई, वह मां के गर्भ की स्मृति से ही पैदा हुई है। वह जो हमारा अनकांशस माइंड है, उसको पता है कि एक सुख का क्षण था, जो खो गया। एक ऐसा वक्त था कि जब न कोई चिंता थी, न कोई दुख था, न कोई पीड़ा थी। वह हमारे अचेतन चित्त को पता है। वह किसी कोने में हमें ज्ञात है। वह मां के पेट में वह जो सुख था, जब बच्चे को मां के पेट के बाहर आना पड़ा होगा, तो अगर वह प्रार्थना कर सका होगा, तो उसने हाथ जोड़ कर कहा होगा, हे भगवान, कहां असुरक्षा में भेज रहे हो? कहां खतरे में भेज रहे हो? सब सुरक्षा छूटती है, जीवन की सब व्यवस्था छूटती है। सब इंतजाम था, वह छूटता है। कहां खतरे में भेजते हो?
जन्म बहुत बड़ा खतरा है। और खतरा शुरू हो होता है। शायद बच्चा पैदा होते से ही इसलिए रोता हो, चिल्लाता है, कि कहां मुसीबत में डाल दिया? हंसते हुए बच्चे के पैदा होने की कोई खबर नहीं सुनी गई। उसकी सुरक्षा छिन गई है, उसका सब छिन गया, वह अपरूटेड कर दिया गया, जैसे किसी वृक्ष को उसकी जड़ों से उखाड़ लिया गया। मां के भीतर उसकी जड़ें थीं, वह मां का एक हिस्सा था। कोई चिंता न थी, कोई एंग्जाइटी न थी, कोई समस्या न थी, सब समाधान था। मां के पेट में बच्चा समाधि में था। वहां से निकाल कर बाहर फेंक दिया गया। फिर रोज-रोज असुरक्षा बढ़ती चली जाएगी। जब तक छोटा होगा, मां की गोद होगी।
धीरे-धीरे मां की गोद भी छोड़ देनी पड़ेगी। स्कूल आएगा, और खतरे आने शुरू

होंगे। और फिर स्कूल के बाद जिंदगी आएगी। और समस्याएं आनी शुरू होंगी। मां से दूर होता चला जाएगा और खतरों में उतरता चला जाएगा।
जिंदगी का नाम खतरा है। मौत ही खतरा नहीं है, जन्म के बाद सभी कुछ खतरा है। लेकिन इस खतरे से हमने एक मानसिक बचाव का उपाय कर लिया है कि बचा लो अपने को। तिजोड़ियां खड़ी करते हैं, महल खड़े करते है, पद-प्रतिष्ठा बनाते हैं, मित्र, संगी-साथी बनाते हैं, शिष्य, चेले बनाते हैं। बाप बेटे को खड़ा करता है। बिना बेटे के असुरक्षा अनुभव करता है। परिवार बनाता है, सारा इंतजाम करता है। किस बात के लिए? सिर्फ एक बात के लिए कि जिंदगी में कोई खतरा, कोई असुरक्षा, कोई समस्या न हो। सब तरह से सुरक्षित हो जाऊं। वह, वह जो मां का गर्भ था, वह मिल जाए। फिर वैसा ही हो जाए सब।
वह कभी नहीं हो पाता। वह हो ही नहीं पाएगा। वह सिर्फ कब्र में होगा।
वह सिर्फ मरने पर होगा। मृत्यु वहीं पहुंचा देगी, जहां जन्म ने आपको हटाया था। इसलिए मरने की कामना भी पैदा होती है। मरने की कामना भी हमारे भीतर इसीलिए पैदा होती है। यह बहुत समझने की बात है! मरने से बचने की कामना भी सुरक्षा के लिए पैदा होती है और मरने की कामना भी सुरक्षा के लिए पैदा होती है। जब आदमी बहुत असुरक्षित हो जाता है, जिससे प्रेम करता है, वह भटक जाता है, खो जाता है, जिसे चाहता है, वह बिछुड़ जाता है, जिस धन को इकट्ठा किया था, वह डूब जाता है, जिस मकान को बनाया था, उसमें आग लग जाती है, तब वह एकदम मरना चाहता है। वह कहता है, अब मैं मरना चाहता हूं, मैं जीना नहीं चाहता। क्यों मरना चाहते हैं आप? शायद मन भीतर से कहता है, अब मरने में ही सुरक्षा मिल सकती है। मर जाओ, सुरक्षित हो जाओ।
आदमी शराब पीकर चिंता को भूलना चाहता है। क्यों? आदमी सोकर चिंता को भूलना चाहता है। क्यों? सोने में थोड़ी देर के लिए अस्थायी मृत्यु घटित हो जाती है, टेम्प्रेरी डेथ, थोड़ी देर के लिए आप मर जाते हैं। थोड़े देर के लिए दुनिया खत्म हो जाती है, आप खत्म हो जाते हैं। वही शराब भी काम करती है। शराब में थोड़ी देर के लिए सब मिट जाता है, आप मर जाते हैं। वह भी टेम्प्रेरी डेथ है। शराब पीने वाला भी आत्मघाती है। अपने को भुलाने की सब कोशिश आत्मघात है। या जिंदगी में इतनी चिंता आ जाती है कि सुरक्षा नहीं मिलती, तो आदमी मर जाता है।
पश्चिम में रोज हजारों लोग आत्महत्या कर रहे हैं। क्यों? घबड़ा गए हैं जिंदगी की असुरक्षा से। मर जाने में लगता है कि सब ठीक है, मर जाओ। मर जाने से सब छुटकारा हो जाता। मरने से बचने की चेष्टा भी सुरक्षा के लिए है और अंत में मर जाने की कामना भी सुरक्षा के लिए है। और मोक्ष की कामना भी सुरक्षा के लिए है। स्वर्ग और भगवान के चरणों को पकड़ लेने की कामना भी सुरक्षा के लिए है।
लेकिन यह ध्यान रहे कि जो सुरक्षित हो जाता है, वह जीवन से पीठ फेर लेता है। और सारा आनंद है जीवन में, और सारी मुक्ति है जीवन में, और सारा परमात्मा है जीवन में। उस जीवन में जहां मृत्यु भी है, उस जीवन में जहां चिंता भी है, उस जीवन में जहां समस्याएं भी हैं, उन सबका इकट्ठा स्वीकार ही जीवन को जीवन की कला है।
यह जो हमारा अतीत से मोह, वह सुरक्षा के कारण है। भय को छोड़ना पड़ेगा। जीवन का भय। बहुत कम लोग हैं, जो जीने की हिम्मत जुटा पाते हैं। यह बात अजीब मालूम पड़ेगी, लेकिन बहुत कम लोग हैं, जो जीने की हिम्मत जुटा पाते हैं। मरने की हिम्मत बहुत लोग जुटा लेते हैं, जीने की हिम्मत बहुत कम लोग जुटा पाते हैं।
जो जीने की हिम्मत जुटा लेता है उसे ही मैं संन्यासी कहता हूं। संन्यासी का मतलब है, जिसने सुरक्षा को छोड़ दिया, असुरक्षा को वरण कर लिया।
लेकिन जिसको हम संन्यासी कहते हैं, वह संन्यासी नहीं है। वह छोटी सुरक्षा को छोड़ता है, बड़ी सुरक्षा को वरण कर लेता है। और मौलिक सुरक्षा को कभी नहीं छोड़ता। एक संन्यासी संन्यासी हो जाने के बाद भी हिंदू बना रहता है, मुसलमान बना रहता है, जैन बना रहता है। क्यों? वह कहता है, मैंने घर छोड़ दिया, सुरक्षा छोड़ दी। मैंने पत्नी छोड़ दी, सुरक्षा छोड़ दी। मैंने धन छोड़

दिया, सुरक्षा छोड़ दी। लेकिन जैन होना नहीं छोड़ता। क्योंकि अगर जैन होना छोड़ दे, तो वह जैन समाज से जो सुरक्षा मिल रही है, वह मिलनी बंद हो जाएगी। अगर हिंदू होना छोड़ दे, तो हिंदू जो कहते हैं, जगतगुरु हैं ये, वे कहना बंद कर देंगे। अगर मुसलमान होना छोड़ दे, तो मस्जिद ठहराएगी नहीं। मकान उसने छोड़ दिया, क्योंकि मस्जिद ठहरने को मिल गई है। अगर वह गुरु होना छोड़ दे, तो शिष्य उसको छोड़ देंगे। उसने, बाप था, बेटे छोड़ दिए हैं, लेकिन एक बेटे छोड़ कर उसने पचास बेटे इकट्ठे कर लिए हैं। शिष्य इकट्ठे कर लिए, शिष्याएं इकट्ठी कर लीं। और फिर सुरक्षा का इंतजाम इकट्ठा कर लिया। घर छोड़ दिया, अब एक आश्रम बना लिया है, लेकिन सुरक्षा के नये उपाय कर लिए।
और एक बड़ी सुरक्षा उसने यह कर ली है कि वह भगवान को पाने की कोशिश में लगा है। वह पुण्य कर रहा है। पुण्य धन का सिक्का है, मोक्ष में चलता है। यहां नहीं चलता। वह पुण्य इसलिए कर रहा है कि यह सिक्का चल सके स्वर्ग में, मोक्ष में। वह भगवान को पा लिया है। भगवान को पाने की कोशिश कर रहा है। वह मोक्ष पाने की कोशिश कर रहा है। वह मोक्ष का मतलब? जहां कोई समस्या नहीं होगी, सिद्धशिला पर बैठ कर सारी समस्याओं से आदमी मुक्त हो जाएगा।
लेकिन जहां कोई समस्या नहीं होगी, वहां कोई जीवन भी नहीं होगा। समस्याओं से बचने की कोशिश, जीवन से बचने की कोशिश है। समस्याओं को जीतना है, इसलिए नहीं कि समस्याएं समाप्त हो जाएंगी, बल्कि इसलिए कि नई समस्याएं खड़ी होंगी। जीवन एक सतत संघर्ष है। समस्याएं कभी समाप्त नहीं हो जाएंगी। एक समस्या बदलेगी, नई समस्या होगी। नीचे की समस्याएं बदलेंगी, ऊपर की समस्याएं होंगी।
गरीब आदमी के सामने एक समस्या होती है, भूख की, अभाव की। अमीर आदमी के सामने दूसरी समस्या खड़ी हो जाती है, अतिरेक की, एफ्लुअंस की। हिंदुस्तान की समस्या है, पेट कैसे भरे? अमेरिका की समस्या है कि पेट भर गया, अब क्या करें? योग करें, ध्यान करें, माला फेरें, क्या करें? अमेरिका की समस्या वही है, जो बुद्ध और महावीर की समस्या रही होगी। अमीर के बेटे थे, पेट भरा था, कपड़े उपलब्ध थे। सब उपलब्ध था, जो उपलब्ध हो सकता था। फिर समस्या खड़ी हो गई, अब सब है, अब क्या करें?
समस्याएं मिट नहीं सकतीं। समस्याओं के तल बदलते हैं। और चेतनी ऐसी होनी चाहिए, जो हर तल पर हर नई समस्या का साक्षात कर सके, आनंद से; भय से नहीं। क्योंकि भय से किया गया साक्षात, कभी साक्षात नहीं हो सकता। स्वीकार से, अस्वीकार से नहीं। क्योंकि जिसने अस्वीकार कर लिया, वह पीठ कर लेता है। पीठ करके कभी साक्षात नहीं हो सकता। सहज भाव से कि जीवन ऐसा है, और जीवन जैसा है और जैसा होगा, वैसा मुझे अंगीकार है। मैं दावे नहीं करता कि वह ऐसा ही हो, जैसा कल था। आने वाला कल बिल्कुल नया कल होगा। आने वाला सूरज बिल्कुल नया सूरज होगा। सुबह उठेंगे, फिर कल का साक्षात्कार करेंगे। नहीं उठ सके, तो मौत का साक्षात्कार करेंगे। जो होगा, उसका साक्षात्कार करेंगे। और हमारी तैयारी इतनी होनी चाहिए कि हम हर साक्षात्कार के बाद ज्यादा ज्ञान, ज्यादा आनंद, ज्यादा अनुभव, ज्यादा जीवंत होकर बाहर निकल आएंगे। लेकिन इतनी हिम्मत नहीं है, इतना करेज नहीं है, इसलिए पुराने को पकड़े हुए बैठे हैं। पुराने को पकड़ना हमेशा साहस की कमी है। भय का लक्षण है।
इसलिए पहली बात, अगर परंपरावाद से भारत की प्रतिभा को मुक्त होना हो,
तो भय छोड़ देना पड़ेगा। और सबसे बड़ा भय जीवन का भय है। और जीवन के भय से ही मृत्यु का भय पैदा होता है। जो जीवन से डरते हैं, वे ही मृत्यु से डरते हैं। जो जीवन को जीते हैं, वे मृत्यु को भी जीते हैं। उन्हें कोई भी भय नहीं है। भय का कोई सवाल नहीं है। और भयभीत होकर जीवन बदल नहीं जाता, सिर्फ हम एक मेंटल कैपसूल में, एक झूठी कल्पना के घेरे में अपने को बंद कर लेते हैं।
मेरे एक मित्र हैं, बूढ़े हैं, कुछ दिनों से उन्होंने सब पूजा-पाठ, मंदिर जाना, सब छोड़ दिया था। मुझसे कहते थे कि सब मैंने छोड़ दिया, अब मैं सबसे मुक्त हो गया हूं। मैंने उनसे कहा, आप बार-बार कहते हैं कि सब छोड़ दिया, सबसे मुक्त हो गए; इससे शक होता है कि ठीक से मुक्त नहीं हो पाए हैं,

ठीक से छूट नहीं पाया है। फिर उनको हृदय का दौरा हुआ, हार्ट अटेक हुआ। मैं उन्हें देखने गया। वे करीब-करीब आधी बेहोशी में पड़े थे और बेहोशी में ही उनके मुंह से राम-राम, राम-राम का पाठ चल रहा था। मैंने उन्हें हिलाया और मैंने पूछा, यह क्या कह रहे हो? तुम तो कहते थे, सब छोड़ दिया। वे कहने लगे, मैं भी सोचता था कि सब छोड़ दिया, लेकिन जब मौत सामने आई, तो न मालूम कैसे मशीन की तरह भीतर से राम-राम होने लगा कि करो राम-राम। कहीं राम हों न, और अगर हुए तो भूल हो जाएगी। फिर हर्ज भी क्या है? राम-राम जप लेने में हर्ज भी क्या है? नहीं हुआ, तो कुछ हर्ज न हुआ। अगर हुआ, तो सुरक्षा का इंतजाम कर लिया। वह मौत सामने खड़ी है तो आदमी राम-राम जप रहा है।
वे जो मंदिर में हाथ जोड़े खड़े हैं, उन्हें भगवान से कोई मतलब नहीं है।
और वे जो मालाएं फेर रहे हैं, उन्हें भगवान से कोई मतलब नहीं है। और वे जो शास्त्रों में आंखें गड़ाए हुए कंठस्थ कर रहे हैं सूत्रों को, उनको भगवान से कोई मतलब नहीं है। ये सब भय से पैदा हुई प्रवृत्तियां हैं। जिसे हम धर्म कहते हैं, वह हमारा फियर है। और वह धर्म जो अभय से, फियरलेसनेस से आता, उसका हमें कोई पता ही नहीं। ये जो मंदिर और मस्जिद, और यह जो पूजा और काबा और काशी खड़े हैं, ये मनुष्य के भय से उत्पन्न हुए हैं। और ये जो मूर्तियां, और ये जो भगवान की पूजाएं चल रही हैं, ये मनुष्य के भय से जन्मी हैं। हम भयभीत हैं, हम डरे हैं, हम सुरक्षा चाहते हैं। अज्ञात से हम सुरक्षा चाहते हैं। हम किसी के चरण पकड़ना चाहते हैं, हम कोई सहारा चाहते हैं।
यह जो गुरुडम चल रही हैं सारे देश, यह जो जगह-जगह छोटे-बड़े गुरु, छोटे- बड़े महात्मा, आधे और पूरे महात्मा इकट्ठे हैं सारे मुल्क में और उनके आस-पास लोग चरण पकड़े हुए हैं, यह गुरुडम किसी ज्ञान या किसी सत्य की खोज पर नहीं चल रही है। भय, हम डरे हुए हैं और डरने में हम किसी का भी सहारा चाहते हैं। कहते हैं न, आदमी डूबता हो तो तिनके का भी सहारा पकड़ लेता है! फिर इसी भय में वह कहता है, मेरे गुरु बहुत महान गुरु हैं। इसलिए नहीं कि उसको पता चल गया वे महान हैं, बल्कि अपने को समझाता है कि अगर महान नहीं हैं, तो मैं डूबा। तो अपने गुरु को महान बताता है, अपने तीर्थंकर को श्रेष्ठ बताता है, अपने अवतार को असली बताता है। दूसरों के अवतारों को नकली बताता है। क्योंकि वह यह कह रहा है कि मेरी सुरक्षा मजबूत होनी चाहिए। जो मैंने पकड़ा है, वह सच्चा और खरा है। वह आंख बंद करके पकड़ता है। वह आंख बंद करके ही पकड़े रहता है। वह कभी आंख खोल कर देखता भी नहीं कि यह क्या हो रहा है। वह देख भी नहीं सकता। वह डरा हुआ है। वह खुद ही डरा हुआ है। आंख खोल कर देखेगा तो एक आदमी पाएगा अपने ही जैसा, जिसके वह चरण पकड़े हुए है और भगवान समझे हुए है। लेकिन वह आंख नहीं खोलेगा। और आप आंख खोलने को कहेंगे तो वह नाराज होगा। भय भीतर है। अगर आप आंख खोल कर देखने को कहते हैं, तो खतरा है कि कहीं गुरु विलीन न हो जाए, कहीं भगवान खो न जाए, कहीं मूर्ति न मिट जाए, कहीं मंदिर खो न जाएं, कहीं प्रार्थनाएं भूल न जाएं। फिर क्या होगा? मैं तो अकेला हूं।
लेकिन सच यह है कि आप अकेले ही हैं। इस सत्य को झुठलाने से कुछ भी न होगा। आदमी अकेला है। आदमी बिल्कुल अकेला है। और कोई सहारा नहीं है। और जिंदगी असुरक्षा है। और सब सुरक्षाएं काल्पनिक, इमेजीनरी है। यह सत्य जितना स्पष्ट हो जाए और इस सत्य की जितनी स्वीकृति हो जाए, आदमी उतना ही भय से मुक्त हो जाता है और जब आदमी भय से मुक्त हो जाता है। तो पुराने से मुक्त हो जाता है। जब आदमी भय से मुक्त हो जाता है, तो शास्त्रों से मुक्त हो जाता है। और जब आदमी भय से मुक्त हो जाता है, तो गुरुओं से मुक्त हो जाता है। और जब आदमी भय से मुक्त हो जाता है, तो समाज, परंपरा, रूढ़ियां, उनसे मुक्त हो जाता है। और जिसकी प्रतिभा इन सबसे मुक्त है, पहली बार उस इंटेलीजेंस का, उस चेतना का, उस बुद्धिमत्ता का जन्म होता है, जो सत्य को जान सकती है। उस बुद्धिमत्ता का, उस वि.जडम का जन्म होता है, जो जीवन की हर समस्या का साक्षात्कार कर सकती है। उस सजगता का, उस बोध का जन्म होता है, जिस बोध की अग्नि में जीवन की कोई चिंता नहीं टिकती, हर चिंता का अतिक्रमण हो जाता है। और वैसा अतिक्रमण अगर चेतना, प्रतिभा न कर पाए, तो जीवन एक बोझ है, जीवन एक भार है, जीवन एक दुख है।

दुख होगा ही, क्योंकि हम गलत, हम बिल्कुल ही गलत, हम बिल्कुल ही काल्पनिक, हम बिल्कुल ही झूठी दुनिया में खो गए हैं, जो है ही नहीं।
भारत की पूरी चेतना पीछे की तरफ देख रही है, भविष्य के भय के कारण। भारत की पूरी चेतना गुरुओं को पकड़े हुए हैं, अकेले होने के डर के कारण। पति पत्नी को पकड़े हुए है, पत्नी पति को पकड़े हुए है। दोनों अकेले हैं, दोनों डरे हुए हैं, दोनों एक-दूसरे को पकड़े हुए हैं। और कोई भी नहीं पूछ रहा कि दो डरे हुए आदमी अगर इकट्ठे हो जाएं, तो डर दो-गुना हो जाता है, आधा नहीं। गुरु शिष्यों को पकड़े हुए हैं, शिष्य गुरुओं को पकड़े हुए हैं। गुरु भी डरा हुआ है कि अगर शिष्य खो गए तो मैं अकेला पड़ जाऊंगा। तो गुरु भी संख्या रखता है कि कितने अपने शिष्य हैं। एक शिष्य खोने लगता है तो मन को बड़ी पीड़ा होती है। जैसे एक ग्राहक को खोते देख कर दुकानदार दुखी होता है, एक शिष्य को खोते देख कर गुरु दुखी होता है। शिष्य को डर लगता है, कहीं गुरु न छोड़ दे। और दोनों डरे हुए हैं, एक-दूसरे को पकड़ कर भीड़ किए हुए हैं।
और यह भीड़ करीब-करीब वैसी ही है, जैसे कोई नाव डूब रही हो और डूबती हुई नाव में सारे लोग एक ही तरफ, एक ही कोने में दौड़ कर इकट्ठे हो जाएं, उनके दौड़ने और इकट्ठे होने से नाव बचेगी नहीं, जल्दी डूबेगी। वे अकेले-अकेले खड़े रहें नाव पर, तो नाव बच भी सकती है। लेकिन जहां सब भाग रहे होंगे, वहीं नाव के सारे यात्री भागेंगे और एक ही कोने में सब एक-दूसरों को पकड़ कर करीब-करीब खड़े हो जाएंगे। जैसे करीब-करीब खड़े होने से अकेलापन मिटता है? किसी को कितना ही छाती से लगा लो फिर भी अकेलापन नहीं मिटता। जिसे छाती से लगाया, वह भी अकेला है; जिसने लगा लिया, वह भी अकेला है। अकेलापन नहीं मिटता है। सिर्फ भ्रम पैदा होता है कि कोई साथ है। कोई साथ नहीं है। और जो आदमी इस सत्य को समझ लेता है कि कोई साथ नहीं है, टोटल अलोन, टोटली अलोन, समग्रीभूत रूप से अकेला हूं। और इस बात की पूरी-पूरी समझ है कि इस अकेलेपन से बचने के सब उपाय झूठे हैं, कोई उपाय कारगर नहीं है। जिस दिन यह समझ पूरी साफ हो जाती है, उसी दिन आदमी भय से मुक्त हो जाता है, उसी दिन अभय को उपलब्ध हो जाता है। उसी दिन भविष्य के लिए उन्मुख हो जाता है, उसी दिन नये के लिए स्वागत का द्वार खुल जाता है। उसी दिन जीवन को जीने की क्षमता, साहस, एडवेंचर, अभियान शुरू हो जाता है। एक व्यक्ति के लिए भी यह सच है, एक समाज के लिए भी यही सच है--चेतना मुक्त होनी चाहिए भय से।
लेकिन भय से हम मुक्त नहीं हैं और इसीलिए हम अतीत से बंधे हैं। एक बात, मौलिक कारण जो है, वह सुरक्षा का आग्रह है। और सुरक्षा का आग्रह भयभीत आदमी की मांग है। और भयभीत आदमी कितनी ही सुरक्षा करे, कुछ हो नहीं सकता, सब सुरक्षा और भयभीत करेगी। फिर और सुरक्षा करनी पड़ेगी, फिर और सुरक्षा करनी पड़ेगी।
रवींद्रनाथ के घर में कोई सौ लोग थे। बड़ा परिवार था। मनों दूध आता था। रवींद्रनाथ के एक भाई थे, उन्होंने देखा कि दूध में पानी मिल कर आता है। तो उन्होंने एक नौकर रखा और कहा कि दूध का निरीक्षण करो, पानी मिला दूध घर में न आने पाए। लेकिन घर के लोग हैरान हुए! जिस दिन से नौकर रखा, उस दिन से दूध में और ज्यादा पानी आने लगा। क्योंकि उस नौकर का हिस्सा भी जुड़ गया। भाई जिद्दी थे, उन्होंने उसके ऊपर एक सुपरवाइजर रखा। लेकिन घर में और हैरानी हुई, दूध में और ज्यादा पानी होने लगा! क्योंकि सुपरवाइजर का हिस्सा भी जुड़ गया।
रवींद्रनाथ के पिता ने उन्हें बुला कर कहा कि अब और चीफ सुपरवाइजर रखने का इरादा तो नहीं है? रवींद्रनाथ के भाई ने कहा, मेरा तो इरादा है। मैं तो किसी तरह इस पानी को आने से रोकूंगा। एक और आदमी को जो निकट परिवार से संबंधित थे, उनको चीफ सुपरवाइजर रखा। उसी दिन पानी में एक मछली भी आ गई। रवींद्रनाथ के पिता ने कहा, सबको विदा कर दो। क्योंकि जिस बात की सुरक्षा के लिए तुम उपाय कर रहे हो, वे सब उपाय और सुरक्षा मांगेंगे, फिर और सुरक्षा मांगेंगे, फिर और सुरक्षा मांगेंगे। और इसका कोई अंत नहीं है। आदमी जो इंतजाम करता है--पहले वह धन कमाता है, कि धन से भय से मुक्त हो जाएगा, मेरे पास धन है। फिर धन है इसका भय पैदा हो जाता है कि कहीं चोरी न चला जाए धन? तो तिजोरी खरीद कर लाता है। तिजोरी में ताले लगाता है। फिर

डरता है कि यह चाबी चोरी न चली जाए? फिर रात भर सोता नहीं। फिर इस चाबी की फिकर करता है। फिर घर पर पहरेदार रखता है। फिर डर लगता है कि कहीं पहरेदार ही भीतर घुस कर बंदूक छाती से न लगा दे? और यह डर चलता चला जाता है और यह इंतजाम और यह इंतजाम और यह इंतजाम होता चला जाता है।
स्टैलिन और हिटलर के संबंध में कहा जाता है, उन्होंने अपने डबल रख छोड़े थे। स्टैलिन ने एक आदमी रख छोड़ा था जो स्टैलिन जैसा दिखाई पड़ता था। यह बड़े मजे की बात है। आदमी नेता होना चाहता है इसलिए कि हजारों, लाखों लोगों की भीड़ उसे स्वागत करे। लेकिन जब हजारों-लाखों लोगों की भीड़ स्वागत करती है तो डर पैदा होता है कि कोई गोली न मार दे? तो स्टैलिन ने एक आदमी रख छोड़ा था, जो स्टैलिन जैसा दिखाई पड़ता था। स्टैलिन अपने कमरे में बंद रहता और जब हजारों लोगों की भीड़ में जाना पड़ता तो वह नकली स्टैलिन हाथ जोड़ कर वहां खड़ा रहता, स्वागत करता। कोई गोली मार दे तो नकली आदमी मरे।
किसलिए यह भीड़ इकट्ठी की थी? यह भीड़ इसलिए इकट्ठी की थी कि कभी हजारों लोग सम्मान देंगे, उसका मजा लेंगे। और जो भी भीड़ इकट्ठी कर लेता है, फिर भीड़ से बचना पड़ता है। फिर पहरेदार इकट्ठे करने पड़ते हैं। फिर राष्ट्रपति के आस-पास बंदूकें चल रही हैं कि कहीं कोई मार न दे, कहीं कोई पत्थर न फेंक दे। फिर खतरा बढ़ता चला जाए तो फिर असली राष्ट्रपति नहीं चलेगा घोड़ागाड़ी में, नकली राष्ट्रपति चलेगा; असली राष्ट्रपति घर के भीतर बंद रहेगा। हिटलर ने मरते दम तक शादी नहीं की, मरने के दो घंटे पहले शादी की। क्योंकि हिटलर इतना भयभीत था कि पता नहीं पत्नी जहर दे दे। सब पर तो पहरा रखोगे, पत्नी पर कैसे पहरा रखोगे? पत्नी तो उसी कमरे में सोएगी, जिसमें आप सोते हो? रात को उठे और गर्दन दबा दे? कोई पत्नी को मिला ले? विश्वास नहीं किया जा सकता किसी दूसरे का। तो हिटलर ने शादी नहीं की। जिस स्त्री से उसका प्रेम चलता था बारह वर्षों से वह उसको टालता रहा कि अभी मुझे फुर्सत नहीं है। कुछ लोगों को प्रेम करने की फुर्सत भी नहीं होती। क्योंकि दूसरे इतने जरूरी काम मालूम पड़ते हैं। टालता रहा। जिस दिन बर्लिन पर बम गिरने लगे, और जिस दिन हिटलर जहां छिपा था नीचे जमीन में, उसके बाहर गोलियां चलने लगीं; तब उसने खबर भेजी कि तू जल्दी आ जा और एक पुरोहित को ले आ, हम विवाह कर लें। क्योंकि अब कोई खतरा नहीं है, अब मौत सामने ही आ गई है। मरने के दो घंटे पहले एक तलघरे में--एक कोई भी आदमी को, पुरोहित को नींद से उठा कर बुला लिया गया और दोनों का विवाह करवा दिया उसने। और दो घंटे बाद दोनों ने जहर खाकर गोली मार ली।
आदमी जीवन से इतना भयभीत हो सकता है। और इंतजाम किसलिए करता है? और इंतजाम इसलिए करता है कि भय के बाहर हो जाए। और सारे इंतजाम और भय में गिराते चले जाते हैं!
वही आदमी भय के बाहर होता है, जो अकेले होने की स्थिति को स्वीकार कर लेता है। वही आदमी सुरक्षित होता है, जो इनसिक्योरिटी को, असुरक्षा को अंगीकार कर लेता है। वही आदमी मृत्यु के भय के ऊपर उठ जाता है, जो मृत्यु को जीवन का अंग मान लेता है। मान नहीं लेता, जान लेता है कि मृत्यु जीवन का अंग है, बात खत्म हो गई। जीवन की तथाता है, सचनेस है, जीवन जैसा है, उससे बचने का उपाय मत करिए। जीवन से कैसे बच सकते हैं? जीवन जैसा है, उस जीवन के साथ बहा जा सकता है, बचा नहीं जा सकता। बचने की कोशिश में जीवन खो जाता है। हमारे चित्त ने जीवन खो दिया। हम जीवन की धारा से बहुत पीछे खड़े हैं।
एक क्षण में हम जीवन की धारा में आ सकते हैं। लेकिन भय जाए, सुरक्षा की कामना जाए, तो यह हो सकता है। और हमारी परंपरावादिता, हमारा पुराणपंथ, हमारी पुरानी किताब, पुराना गुरु, हमारा उसके चरणों को पकड़े चले जाना, हमारे सिर्फ भयभीत होने का सबूत है।
यह दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं, भारत की प्रतिभा को भय का पक्षाघात, पैरालिसिस लगा हुआ है। भार की प्रतिभा भयभीत है। वह अभय नहीं है। इसलिए वह कुछ भी जानने से डरती है। वह कुछ भी जानने से डरती है। और जहां-जहां उसे डर लगता है कि कोई नई बात जानी जाएगी, वहां वह देखती ही नहीं, वहां वह आंख ही नहीं उठाती। वहां से वह अपने को बचा लेती है, भूल जाती है। अपने भीतर भी वह वह नहीं देखना चाहता जिससे डर हो सकता है। वह आंख चुरा

लेता है, वह भजन-कीर्तन करने लगता है। वह भूला देता है कि होगा कुछ, हमें मतलब नहीं है। और धीरे-धीरे इतना भूल जाता है कि खुद का जो असली है, वह छिप जाता है और खुद का जो नकली है, वह असली मालूम पड़ने लगता है। हम सब नकली आदमी हैं।
मैंने सुना है कि एक खेत में एक नकली आदमी खड़ा है। सभी खेतों में नकली आदमी खड़े हैं। ऐसे तो दुकानों में, दफ्तरों में, आफिसों में, सब जगह नकली आदमी खड़े हैं। लेकिन उनको पहचानना जरा मुश्किल है, क्योंकि वे चलते-फिरते हैं, बातचीत करते हैं। वह खेत में नकली आदमी सब पहचान लेते हैं--डंडा गड़ा है, हंडी लगी है, कुर्ता पहना हुआ है। वह खेत में किसान लगाए हुए है जानवरों को डराने के लिए।
एक दार्शनिक खेत के नकली आदमी के पास से गुजरता था। अनेक बार गुजरा था, वर्षा, धूप, गर्मी, रात-दिन वह नकली आदमी वहीं अकड़ कर खड़ा रहता। नकली आदमी हमेशा अकड़े हुए रहते हैं। क्योंकि अगर अकड़ चली जाए तो कहीं नकल न खुल जाए। तो जहां भी अकड़ा हुआ आदमी देखें, समझना कि नकली आदमी है। और नकली आदमी अकड़ की जगह की तलाश में रहता है। ऐसी कुर्सी मिलनी चाहिए जिस पर अकड़ कर बैठ सके, तो वह दिल्ली तक की यात्रा करता है। वह सब नकली आदमियों की यात्रा है। वह खेत में नकली आदमी खड़ा है। वह कई दफे दार्शनिक वहां से निकला है। कई दफे उसका मन हुआ कि इस मूरख से पूछें कि तू अकेला खड़ा रहता है, कभी घबड़ाता नहीं है, ऊबता नहीं, बोर्डम नहीं मालूम पड़ती--न कोई संगी, न कोई साथी? वर्षा आती है, धूप आती है, तू खड़ा ही रहता है, तुझे मजा क्या है? और जब भी मैं निकलता हूं, तू अकड़ा रहता है। और ऐसा लगता है कि बड़ा खुश है।
एक दिन हिम्मत जुटा कर वह दार्शनिक उसके पास गया। दार्शनिक को हिम्मत जुटानी पड़ती है, क्योंकि नकली आदमियों से प्रश्न पूछना बड़ा खतरनाक है, क्योंकि नकली आदमी नाराज हो जाता है। क्योंकि उसने सभी प्रश्नों के झूठे उत्तर मान रखे हैं। अगर आप उससे प्रश्न पूछिए तो उसके झूठे उत्तर खिसकने लगते हैं। वह कहता है, प्रश्न पूछो ही मत। नकली आदमी सिर्फ उत्तर की मांग करता है, प्रश्न की कभी मांग नहीं करता। जो आदमी उससे प्रश्न पूछता है, वह कहता है, गोली मार देंगे। सुकरात को इसलिए तो जहर पिला देता है, क्योंकि सुकरात नकली आदमियों को सड़क पर पकड़ लेता है और कहता है, रुको, और मेरे प्रश्न का जवाब दो? अब प्रश्न का जवाब नहीं, और हर नकली आदमी समझता है, सब जवाब मेरे पास है। और जब पूछने वाला मिलता है तो जवाब बह जाते हैं पानी में। जैसे नकली रंग, कच्चा रंग बह जाता है। तो वह नकली आदमी था, दार्शनिक ने सोचा, पूछूं या न पूछूं, कहीं नाराज न हो जाए? लेकिन एक दिन सोचा कि चलो पूछ ही लूं। नाराज ही होगा। वह दार्शनिक उस नकली आदमी के पास गया और कहा, मेरे मित्र! उस नकली आदमी ने गुस्से से देखा, क्योंकि नकली आदमी किसी को मित्र देखना पसंद नहीं करता। या तो आप उसके शत्रु हो सकते हैं या उसके अनुयायी हो सकते हैं, नकली आदमी का मित्र कोई नहीं हो सकता। उसके शिष्य हो सकते हैं, शत्रु हो सकते हैं, नकली आदमी के मित्र नहीं हो सकते। हिटलर का कोई मित्र नहीं है। मित्र बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि मित्र जो है, वह समान होने का दावा करता है। नकली आदमी किसी को समान नहीं मानता। उसने कहाः मित्र! तुमसे मेरी क्या मित्रता है?
फिर भी उसने कहाः मैंने सिर्फ संबोधन किया, नाराज मत हो जाओ! मुझे कुछ सूझा नहीं, इसलिए मैंने यह संबोधन किया। यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है, मैं कुछ और पूछने आया हूं। मैं यह पूछने आया हूं कि वर्षा, धूप, रात-दिन, तुम अकेले खड़े रहते हो, ऊब नहीं जाते, घबड़ा नहीं जाते, बेचैन नहीं हो जाते?
वह नकली आदमी खिलखिला कर हंसने लगा। उसने कहाः बेचैन, ऊब! अरे बड़ा आनंद है यहां। दूसरों को डराने में बड़ा आनंद आता है। पक्षी डर कर भागते हैं, बहुत मजा आता है। जानवर डर कर भागते हैं, बहुत मजा आता है। दूसरों को डराने में बहुत आनंद है। एकदम आनंद ही आनंद है।
उस दार्शनिक ने कहाः तुम ठीक कहते हो। नकली आदमियों को सिर्फ दूसरों
को डराने में ही आनंद आता है, और कोई आनंद नहीं आता।
अपने पास बड़ी तिजोड़ी है, छोटा तिजोड़ी वाला डर जाता है। अपने पास बड़ा मकान है, छोटा मकान वाला डर आता है। अपने पास दिल्ली का पद है, पूना का पद

वाला डर जाता है। नकली आदमी को दूसरे को डराने में मजा आता है। उसका आनंद सिर्फ एक है, दूसरे को भयभीत करना। और ध्यान रहे, जो आदमी दूसरे को भयभीत करने में आनंदित होता है, वह आदमी स्वयं भयभीत होना चाहिए, अन्यथा यह आनंद असंभव है। जो भयभीत है, वही भयभीत करके आनंद लेता है। क्यों? क्योंकि जब वह दूसरे को भयभीत कर देता है, तो उसे विश्वास आता है कि अब मैं भयभीत नहीं हूं। जब वह दूसरे को डरा देता है तो वह कहता है, बिल्कुल ठीक! मुझसे दूसरे डरते हैं, मुझे डरने की क्या जरूरत है? वह डराने के लिए है, किसी से न डरने के लिए है। लेकिन चाहे डराने के लिए तलवार हो और चाहे न डरने के लिए तलवार हो, तुम डरे हुए आदमी हो, तलवार हर हालत में सिद्ध करती है। उस दार्शनिक ने कहा कि बिल्कुल ठीक कहते हो, नकली आदमी सदा दूसरों को डराने में आनंद लेते हैं। वह फिर खिलखिला कर हंसने लगा और उसने कहा, तुमने कभी कोई असली आदमी भी देखा? उस दार्शनिक से उस नकली आदमी ने पूछा खेत के, तुमने कभी असल आदमी भी देखा?
उस नकली आदमी ने कहाः मुझे तो बड़ी हैरानी होती है कि मुझे लोग नकली कहते हैं! मैंने तो सब आदमी ऐसे ही देखे हैं! हां, थोड़ा फर्क है कि मैं जरा चल-फिर नहीं सकता। लेकिन चल-फिर कर तुम करते क्या हो, दूसरों को डराते ही हो न? मैं बिना ही चले-फिरे डरा लेता हूं। तो फर्क क्या है? जो काम मैं बिना चले कर लेता हूं, वह तुम चल-फिर कर करते हो न? तुम्हारी सारी स्पीड, तुम्हारे यान, तुम्हारा चांद तक जाना। चांद तक जाने के लिए है कि किसी को डराने के लिए है? वे जो रूस के यान चांद की तरफ भाग रहे हैं और अमेरिका के, वह चांद तक जाने के लिए है? चांद से न रूस को मतलब है, न अमेरिका को। रूस अमेरिका को डराना चाहता है, अमेरिका रूस को डराना चाहता है। जो पहले पहुंच जाएगा, वह डराने में समर्थ हो जाएगा। सारी गति डराने के लिए चल रही है। उस नकली आदमी ने कहा, तुम्हें कोई असली आदमी मिला? उसका उत्तर वह दार्शनिक नहीं दे सका। आपसे भी पूछा जाए तो उत्तर बिल्कुल मुश्किल है। असली आदमी मिलना बहुत मुश्किल है।
असली आदमी तो वही हो सकता है, जो जीवन की तथ्यता को, वह जो जीवन की फैक्टिसिटी है, वह जो जीवन की सचनेस है; जीवन जैसा है उसको वैसा स्वीकार करता है--न भयभीत है, न सुरक्षा की खोज में है, न चिंता में है। जीवन जैसा है--जन्म है तो जन्म, मृत्यु है तो मृत्यु, स्वास्थ्य है तो स्वास्थ्य, बीमारी है तो बीमारी, सबको अंगीकार करता है। जीवन की प्रत्येक स्थिति का जिसके मन में स्वीकार है और नये अनजान, अज्ञात, अपरिचित रास्तों पर जाने की जिसकी हिम्मत है, जो डरा हुआ नहीं है, वही आदमी आथेंटिक, असली हो सकता है, प्रामाणिक हो सकता है।
भारत नकली आदमियों की जमात हो गया है। क्योंकि भारत ने पुरातन परंपरा
को पकड़ कर असली आदमी को पैदा होने की व्यवस्था बंद कर दी है।
यह दूसरा सूत्र हैः जो पुरातन से बंधा है वह नकली आदमी है। जो अतीत से बंधा है वह भयभीत है। और भयभीत आदमी कभी असली, आथेंटिक, प्रामाणिक नहीं हो सकता है। भारत की आत्मा आथेंटिक नहीं रह गई, प्रामाणिक नहीं रह गई, अप्रामाणिक हो गई है। और फिर दूसरी जितनी अप्रामाणिकता पैदा हुई है, वह इसी से पैदा हुई है। और जब तक यह बुनियादी अप्रामाणिकता नहीं मिटती है तब तक और किसी तरह की अप्रामाणिकता नहीं मिट सकती, क्योंकि वह इसकी बाई-प्रॉडक्ट है, वह उससे आई है।
कल सुबह तीसरे सूत्र पर आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत की खोज
चौथा प्रवचन

असली और नकली का फर्क

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा हैः सुबह मैंने कहा, सब आदमी नकली हैं, उन मित्र ने पूछा है कि नकली कौन है? असली कौन है? हम कैसे पहचानें?

पहली तो बात यह है, दूसरे के संबंध में सोचें ही मत कि वह असली है या नकली है। सिर्फ नकली आदमी ही दूसरे के संबंध में इस तरह की बातें सोचता है। अपने संबंध में सोचें कि मैं नकली हूं या असली? और अपने संबंध में सोचना ही संभव है और जानना संभव है।
इसलिए पहली बात है, हमारा चिंतन निरंतर दूसरे की तरफ लगा होता है, कौन दूसरा कैसा है? नकली आदमी का एक लक्षण यह भी है, स्वयं के संबंध में नहीं सोचना और दूसरों के संबंध में सोचना। असली सवाल यह है कि मैं कैसा आदमी हूं? और इसे जान लेना बहुत कठिन नहीं है, क्योंकि सुबह से सांझ तक, जन्म से लेकर मरने तक मैं अपने साथ जी रहा हूं--और अपने आप को भलीभांति जानता हूं। न केवल मैं दूसरों को धोखा दे रहा हूं, अपने को भी धोखा दे रहा हूं। मेरी जो असली शक्ल है, वह मैंने छिपा रखी है। और जो मेरी शक्ल नहीं है, वह मैं दिखा रहा हूं, वह मैंने बना रखी है। दिन भर में हजार बार हमारे चेहरे बदल जाते हैं। असली आदमी तो वही होगा, सुबह भी सांझ भी। हर खड़ी वही होगा, जो है। लेकिन हम? हम हर घड़ी वही होते हैं, जो हम नहीं हैं।
एक फकीर था, नसरुद्दीन। एक सम्राट की पत्नी से उसका प्रेम था। एक रात
वह अपनी प्रेमिका से विदा हो रहा है और उसने उस स्त्री को कहा, तुझसे ज्यादा सुंदर स्त्री पृथ्वी पर दूसरी नहीं है। और मैंने सिर्फ तुझे ही चाहा है। मेरे प्राणों में बस तेरे अतिरिक्त और किसी की कामना और आकांक्षा नहीं है। वह स्त्री आनंद से भर गई, उसकी आंखें खुशी से भर गईं। और तभी उस फकीर ने कहाः ठहर, ठहर, मैं तुझे यह भी बता दूं कि यही बात दूसरी स्त्रियों से भी मैं कहता रहा हूं।
यह फकीर अदभुत आदमी रहा होगा। और इस क्षण में इसने अपने नकलीपन को भी पहचाना होगा और अपने असलीपन को भी जाहिर करने की हिम्मत की। हम सब पहचानते हैं कि हम नकली हैं। हम जैसे दिखाई पड़ते हैं वैसे हैं? यह किसी दूसरे के संबंध में सोचने का सवाल नहीं है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के भीतर प्रवेश नहीं कर सकता, बाहर से ही देख सकता है। बाहर से जो दिखाई पड़ता है वही हम देख सकते हैं। लेकिन अपने तो हम भीतर जा सकते हैं, वहां तो हम देख सकते हैं हम कौन हैं?
एक आदमी मंदिर में बैठ कर माला जप रहा है, भगवान का नाम ले रहा है। बाहर से दिखाई पड़ता है वह माला जप रहा है, भगवान का नाम ले रहा है। धार्मिक पूजा और प्रार्थना में तल्लीन है। हम तो बाहर से इतना ही देख सकते हैं, लेकिन वह आदमी भीतर से देख सकता है कि वह क्या कर रहा है? यह माला यंत्र की तरह हाथ फेर रहे हैं। यह राम का जप ओंठों पर मशीन की तरह हो रहा है। भीतर क्या हो रहा है? वह आदमी सच में क्या कर रहा है?
मैंने सुना है, एक आदमी अपनी पत्नी से निरंतर कहता था कि कभी मेरे गुरु के पास चल, वे परम साधु हैं। उनसे मुझे जीवन मिला, शांति मिली, भगवान का रास्ता मिला। वह पत्नी हंसती और बात टाल देती। आखिर उस आदमी ने अपने गुरु को कहा कि आप कभी आएं और मेरी पत्नी को समझाएं, उसका जीवन नष्ट हुआ जा रहा है, वह नर्क के रास्ते पर है।
एक दिन सुबह पांच बजे वह गुरु उस शिष्य के घर पहुंचा। उसका शिष्य मंदिर में बैठ कर, घर के सामने ही, घर के बगीचे में ही मंदिर बना रखा है, उसमें बैठ कर राम-राम जप रहा है, माला फेर रहा है। गुरु ने जाकर मकान का दरवाजा खटखटाया, पत्नी ने द्वार खोला, और पत्नी से उसने पूछा की मेरा शिष्य कहां है?

उसकी पत्नी ने कहाः जहां तक मैं समझती हूं, आपका शिष्य बाजार पहुंच गया है और एक जूते की दूकान पर जूते खरीद रहा है। और उसका जूता खरीदने में झगड़ा हो गया है और उसने चमार की गर्दन दबा ली है।
उसका पति बगल में मंदिर में बैठा यह सब सुन रहा है, वह बाहर निकल कर आ गया, उसने कहा, सरासर झूठ है यह बात! मैं मंदिर में प्रार्थना कर रहा हूं! अभी बाजार भी नहीं खुला, अभी दूकानें भी नहीं खुलीं। और यह मेरी पत्नी झूठ बोल रही है। उसकी पत्नी ने...
उसके गुरु ने भी कहा कि हैरानी की बात है, तेरा पति मंदिर में पूजा कर रहा है!
उसकी पत्नी ने कहाः आप मेरे पति से पूछें, सच में वह क्या कर रहा था?
और उसका पति हैरान हो गया! सच में ही पूजा तो वह बाहर से कर रहा था, लेकिन पहुंच गया था एक जूते की दूकान पर! जूता खरीद रहा था और दाम घटाने- बढ़ाने में झगड़ा हो गया उससे। चमार की गर्दन पकड़ ली। लेकिन उसने पूछा, तुझे कैसे पता चला?
तो उसने कहाः रात सोते वक्त तुमने मुझसे कहा था कि सुबह उठ कर ही जूते खरीदने जाना है। जहां तक मेरा अनुभव है, रात के सोते समय जो अंतिम विचार होता है, सुबह उठते समय वही पहला विचार होता है। तो मैंने सोचा कि शायद तुम बैठे तो माला जप रहो हो, लेकिन तुम्हारे चेहरे से ऐसा लग रहा था कि तुम किसी से झगड़ रहे हो। तो मैंने सोचा कि कहीं जूते की दूकान में तो नहीं पहुंच गए हो?
वह नकली आदमी मंदिर में पूजा कर रहा था, असली आदमी चमार की गर्दन दबा रहा था। लेकिन इसे बाहर से जानना-पहचानना बहुत मुश्किल है।
अनुमान लगाए जा सकते हैं, लेकिन अनुमान गलत भी हो सकते हैं। हर आदमी
को स्वयं को जानना पड़ेगा कि मैं कितना असली हूं कितना नकली हूं? यह चौबीस घंटे का परीक्षण है; यह जन्म से लेकर मृत्यु तक का। अंतहीन परीक्षण है। ऑब्जर्वेशन है कि मैं क्या हूं?
और ध्यान रहे, जितना नकली आदमी हमारे ऊपर बढ़ता चला जाएगा, जीवन उतना
ही दुख होता चला जाता। अगर जीवन दुख हो, तो जानना कि नकली आदमी भारी हो गया। एक ही जांच की कसौटी है, सिर्फ नकली जब हमारे ऊपर बहुत बोझिल हो जाता है तो दुख और चिंता और पीड़ा और उदासी छा जाती है। और जब असली प्रकट होता है तो जिंदगी में बहुत सुगंध, बहुत संगीत, बहुत आनंद का जन्म होता है। हमारा दुख देख कर कहा जा सकता है कि हम सब नकली हो गए हैं।
ऊपर से आदमी दिखाता है कि अहिंसक है और भीतर हिंसा होती है। ऊपर से आदमी दिखाता है मैं त्याग कर रहा हूं और भीतर त्याग में भी लोभ होता है। रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया। तो उसने कहाः मैं हजार स्वर्ण-मुद्राएं लाया हूं, हे परमहंस, इन हजार स्वर्ण-मुद्राओं को रखो। और उसने जोर से थैली खोल कर पत्थर पर वे स्वर्ण-मुद्राएं पटकीं।
रामकृष्ण ने कहाः मेरे भाई, धीरे से रख दो, इतने जोर से क्यों पटकते हो
कि पड़ोस के लोगों को आवाज सुनाई पड़ जाए? अब दान धीरे से करो तो मजा ही चला जाता है। तो दान तो आदमी ऐसे करता है कि सारा गांव सुन ले, इतने जोर से रुपये पटकता है कि सारा गांव सुन ले। वह आदमी चौंका होगा। लेकिन रामकृष्ण ने उसके नकलीपन को पकड़ लिया है। फिर भी वह कहने लगा कि नहीं भूल से गिर गई। वह झूठ बोल रहा है। फिर रामकृष्ण ने कहा, मैं क्या करूंगा इन रुपयों का? स्वर्ण-मुद्राएं हैं, हजार हैं। तुम एक काम करो, तुम इनकी गठरी बांध लो और जा कर गंगा में डाल आओ। नीचे ही गंगा बहती है। पास ही, सीढ़ियां उतरे और वह गंगा में डाल आए। अब रामकृष्ण को दे चुका था, इसलिए मना भी नहीं कर सकता था। गया, मजबूरी थी, लेकिन बहुत देर हो गई, लौटा नहीं। तो रामकृष्ण ने एक आदमी को भेजा कि जाकर देखो उस आदमी का क्या हुआ?
उस आदमी ने लौट कर कहा कि वह एक-एक रुपये को बजाता है, गिन रहा है और एक-
एक रुपया फेंक रहा है। और वहां बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई है। फिर वह आदमी लौटा। रामकृष्ण ने कहाः तू बड़ा पागल है, आदमी धन इकट्ठा करता है तो गिन कर इकट्ठा करना पड़ता है। लेकिन जब गंगा में फेंकने गया तो गिन कर फेंकने की क्या जरूरत थी? गिन कर तो बचाया जाता है, गिन कर फेंका नहीं जाता। तो तू ऊपर से

तो फेंक रहा था और भीतर से बचा रहा होगा, नहीं तो गिनती क्यों करता? ऊपर से यही दिखाई पड़ रहा था, वह फेंक रहा है और भीतर से वह बचाने में लगा था। वे लोग जो मंदिर बना रहे हैं, बाहर से लगता है, दान कर रहे हैं, भीतर से वे स्वर्ग में रिजर्वेशन कर रहे हैं, संरक्षण कर रहे हैं, वहां इंतजाम कर रहे हैं। यहां लगता है, वे दान कर रहे हैं। वे वहां कमाई कर रहे हैं। यहां लगता है, वे दे रहे हैं, वे इनवेस्ट कर रहे हैं। वे वहां आगे लेना चाहते हैं।
एक आदमी घर छोड़ देता है, त्यागी हो जाता है, सब छोड़ देता है। लेकिन पूछो उसकी आत्मा में प्रवेश करके, उसने कुछ भी नहीं छोड़ा है, छोड़ा इसलिए है ताकि मिल सके, और ज्यादा मिल सके। और किताबें कहती हैं, जो एक छोड़ेगा उसे हजार मिलेंगे। आदमी एक छोड़ता है कि हजार मिल सकें। बाहर त्यागी है, भीतर भोगी बैठा हुआ है। बारह छोड़ने वाला है, भीतर पकड़ने वाला बैठा हुआ है। लेकिन यह कौन पहचानेगा?
एक आदमी बाहर से सफेद कपड़े पहने हुए हैं और अगर कपड़े खादी के हों तो और
भी अच्छा। और भीतर-भीतर एक बिल्कुल काला आदमी बैठा हुआ है। सच तो यह है कि सफेद कपड़े में काला आदमी ही अपने को छिपाने की कोशिश कर रहा है। वह भीतर काला है, वह सफेद कपड़े पहन रहा है। और सफेद कपड़े वालों के हाथ में अगर कोई कौम और समाज चला जाए तो बड़ा खतरा हो जाता है। इस मुल्क के साथ हो ही गया है। कपड़े सफेद हैं, आदमी काला है। लेकिन हम तो जान ही सकते हैं कि मैं भीतर कैसा आदमी हूं? मैं बाहर जैसा हूं वही मैं भीतर हूं? जो मेरे वस्त्रों से दिखाई पड़ता है वही मेरी आत्मा है? लेकिन नहीं, जब मैं यह कहता हूं, तो लोग विचार करने लगते हैं पड़ोसी के बाबत कि वह कैसा है! जरूर सफेद कपड़े पहनता है भीतर काला आदमी होगा!
हम सब पड़ोसी के संबंध में चिंतन करते हैं। विचारशील व्यक्ति अपने संबंध में चिंतन करेगा। क्योंकि पड़ोसी के संबंध में चिंतन करने से क्या प्रयोजन? क्या हल? हल तो एक ही हो सकता है कि मैं अपने संबंध में निरीक्षण करूं कि मैं कैसा आदमी हूं? और मैं आपसे कहना चाहता हूं, अगर मैं निरीक्षण करूं और मुझे दिखाई पड़ जाए कि मैं नकली आदमी हूं, तो बदलाहट तत्क्षण शुरू हो जाएगी, करनी नहीं पड़ेगी। इसीलिए हम निरीक्षण नहीं करना चाहते हैं क्योंकि निरीक्षण क्रांति की शुरुआत है। अगर मैं जान लूं कि मैं झूठा आदमी हूं, तो इस झूठे आदमी के साथ जीना मुश्किल हो जाएगा। इस झूठे आदमी को बदलना ही पड़ेगा। इसलिए देखता ही नहीं अपनी तरफ, दूसरे की तरफ देखता हूं। आंखें सदा दूसरे की तरफ देखती रहती हैं। हम दूसरों की निंदा में जो इतने उत्सुक होते हैं और आनंदित होते हैं उसका कोई और कारण नहीं है। अपनी तरफ देखने से हम बचना चाहते हैं। इसलिए दूसरे की निंदा में संलग्न हो जाते हैं।
और ध्यान रहे, चोर दूसरों की चोरी की निंदा करता हुआ दिखाई पड़ेगा। बेईमान दूसरों की बेईमानी की निंदा करता हुआ दिखाई पड़ेगा। क्यों? अपनी बेईमानी को देखने से बचना चाहता है। हम सब अपने से बचना चाहते हैं। हम सब यह चाहते ही नहीं कि हमें दिखाई पड़ जाए कि हम कौन हैं!
नकली और असली कहीं और खोजने नहीं जाना है, अपने ही भीतर खोज लेना है, वस्तुतः मेरे भीतर क्या है?
जब मैं एक भिखमंगे को दो पैसे दान करता हूं, तो मेरे भीतर भिखमंगे के प्रति दया है या चार लोग मुझे देख रहे होंगे कि मैं दो पैसे दान करता हूं, यह भाव है? इसलिए भिखमंगे आपसे अकेले में भीख मांगने में बहुत डरते हैं। चार मित्रों के साथ आप खड़े हों तो वे बिल्कुल आपके हाथ-पैर जोड़ कर खड़े हो जाएंगे। वह चार आदमियों की आंख में आपकी इज्जत का फायदा उठाना चाहते हैं। वे भी जानते हैं कि आदमी कमजोर है, कहां कमजोर है। कोई दया से कोई दान नहीं करता। अहंकार की तृप्ति के लिए दान वह दे। तो भिखमंगा देखता है कि जब आदमी सड़क पर हो, चार आदमी देख रहे हों और इनकार न कर सके दो पैसों के लिए तब हाथ फैला देने चाहिए। आपको अगर दया आए, तो आप दो पैसे देकर मुक्त नहीं हो जाएंगे। दया इतनी सस्ते में मुक्त नहीं हो सकती। अगर एक भिखमंगे पर दया आए, तो आप एक ऐसे समाज को बनाने की चेष्टा करेंगे, जहां भीख न मांगी जा सके। जहां कोई भिखमंगा न हो। लेकिन अगर आपको मजा आता है अहंकार का कि मैंने दिए

दो पैसे एक गरीब आदमी को, तो आप एक ऐसा समाज बनाएंगे जिसमें गरीब भी रहे, भिखमंगा भी रहे, नहीं तो आप दान किसको देंगे।
मुझे ख्याल आता है कि करपात्री जी ने एक किताब लिखी है, उस किताब का नाम हैः राम-राज्य और समाजवाद। उस किताब में उन्होंने एक बहुत मजेदार बात लिखी है जो धार्मिक आदमी के ढोंग को खोल देती है। उसमें उन्होंने लिखा हैः कि शास्त्रों में लिखा हुआ है कि दान के बिना मोक्ष नहीं। और दान तो तभी हो सकता है जब दान लेने वाले गरीब दुनिया में हों। इसलिए समाजवाद अधार्मिक हैं, क्योंकि समाजवाद से गरीब मिट जाएंगे और कोई दान लेने वाला नहीं होगा, तो मोक्ष कोई कैसे जा सकता है! समाजवाद के खिलाफ जो दलील वे दे रहे हैं वह बड़ी अदभुत है। वे यह कह रहे हैं कि गरीब रहना चाहिए, भिखमंगा रहना चाहिए, नहीं तो दया कैसे करोगे और बिना दया के मोक्ष कैसे जाओगे! दुनिया में दया के लिए भिखमंगों का रखना बहुत जरूरी है। यह दयावान ने दुनिया बनाई है जिसमें भिखमंगे पैदा हुए हैं। और ये दयावान दो-दो पैसे देकर भिखमंगे को मिटा नहीं रहे हैं, भिखमंगे को जिला रहे हैं, जिंदा रखना चाह रहे हैं। लेकिन कोई देखने नहीं जाता भीतर की मेरे क्या है?
एक तरफ मैं हजारों रुपये इकट्ठे करूं और दूसरी तरफ दो पैसे दान करूं
और दयावान हो जाऊं, दानवीर हो जाऊं। यह धोखा, यह झूठा आदमी, और कहां खोजने जाना पड़ेगा कि झूठा आदमी हम देखें? हम अपने झूठे आदमी को सब तरह से जस्टिफाई करते हैं। उखाड़ते नहीं, उसको सब तरह से न्याययुक्त ठहराते हैं। हम सब तरह की दलीलें खोजते हैं कि वह हमारा झूठा जो आदमी हमने ऊपर चढ़ा रखा है वही सच्चा है। और जब तक कोई आदमी इस कोशिश में लगा रहे कि अपने झूठ को यह सब सिद्ध करता रहे। अपने वस्त्रों को ही कहे यह मेरी आत्मा है। तब तक वह आदमी एक धार्मिक नहीं हो सकता। उस आदमी के जीवन में वह क्रांति नहीं हो सकती, जिस क्रांति के अंतिम परिणाम में प्रभु के मंदिर का द्वार खुलता है। झूठा आदमी प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हो सकता। उस मंदिर में तो वे ही प्रविष्ट हो सकते हैं, जो सच्चे हैं, आथेंटिक हैं, जो वही हैं, जो हैं। इस अर्थ में मैंने सुबह कहा कि हम सब झूठे आदमी हो गए हैं, हमारा पूरा समाज झूठा हो गया है। और जब मैंने यह कहा, तो मेरा मतलब यह नहीं था कि दूसरा झूठा हो गया, मेरा मतलब था, हम झूठे हो गए हैं, मैं झूठा हो गया हूं। इस झूठ की खोज करनी चाहिए। यह कौन बताएगा कि कैसे? हम खुद जानते हैं, हम भलीभांति पहचानते हैं। जब हम मुस्कुराते हैं तो हमारी मुस्कुराहट सच्ची है? भीतर आग जल रही है और क्रोध जल रहा है। रास्ते पर एक आदमी मिलता है और हम कहते हैं, आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई और भीतर मन कह रहा है इस दुष्ट का सुबह-सुबह से चेहरा कैसे दिखाई पड़ गया। अब कौन बताएगा कि झूठ है? आदमी कहां खोजने जाना?
घर में कोई मेहमान आ गया और हम कहते हैं, बड़ा आनंद आ रहा है कि आप आ गए।
और प्राण संकट में पड़े हैं कि यह मेहमान आ कैसे गया, पहले पता चल जाता तो ताला लगा कर कहीं खिसक गए होते, कहीं चले गए होते। लेकिन चुक हो गई। इसीलिए मेहमान को हम पुराने दिनों में अतिथि कहते थे। अतिथि का मतलब हैः जो बिना तिथि की खबर दिए घर पर हाजिर हो जाए। बताए न कि किस तारीख को आ रहे हैं, कब आ रहे हैं। क्योंकि बता दे तो घर वाले की मिलने की बहुत कम उम्मीद है कि वह घर में मिले। इसलिए अतिथि कहते हैं उसे, बिना तिथि बताए आकर खड़े हो गए हैं। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है। एक बेटा जिंदगी भर बाप को तकलीफ देता है, कष्ट देता है। सम्मान नहीं देता, आदर नहीं, प्रेम नहीं। और मरते वक्त बैठ कर आंसू बहाता है। झूठ की भी कोई हद है। किसके लिए आंसू बहा रहे हो? उसी बाप के लिए जिसको एक दफे जिंदगी में खुशी का मौका नहीं दिया। फिर श्राद्ध करता है, बैठा है सिर घुटा कर उदास, दुखी। यह दुख कैसा है? यह सच्चे आदमी का हो सकता है? और जिंदा था तब यह बाप तब? मैं मानता हूं, जिन लोगों ने मरे हुए बाप के श्राद्ध की ईजाद की है, ये खतरनाक लोग हैं, ये पश्चात्ताप कर रहे हैं। इन्होंने बाप को जिंदगी में आदर नहीं दिया होगा। क्योंकि जिसे हमने जिंदगी में आदर दिया, उसको मरने के बाद आदर देने का ढोंग दिखाने की कोई जरूरत नहीं है। जिस दिन बेटे बाप को यहीं जीवन में आदर देंगे, उस दिन श्राद्ध-व्राद्ध की जरूरत नहीं हो जाएगी। सब बेईमान लोगों

की ईजाद है। मर जाने के बाद सारा पाखंड चल रहा है। और जिंदा आदमी के साथ दुर्व्यवहार चल रहा है। मरे हुए लोगों के साथ हम बड़ा सदव्यवहार करते हैं। क्यों? कोई आदमी मर जाए, अगर दुनिया में सदव्यवहार चाहना हो तो मरने के सिवाय कोई रास्ता ही नहीं है। अगर दुनिया में अच्छे सिद्ध होना हो तो मर जाना चाहिए। फिर सारी दुनिया कहती है, बहुत अच्छा आदमी है। जिंदा में इस आदमी को किसी ने सदव्यवहार नहीं किया, कोई आदर नहीं, कोई प्रेम नहीं। मर गया और सब ठीक हो गया। यह क्या है? यह गिल्ट, यह अपराध है हमारे चित्त में, हम जिंदा आदमी के साथ जो नहीं कर पाए, वह मरने पर हम प्रकट करते हैं, दिखावा करते हैं। लेकिन कैसे? पूछते हैं, कैसे हम पहचानें? कोई पहचानने की तरकीब होगी? पहचानने की तरकीब इतनी ही होगी कि हम देखें हर क्षण, एक-एक क्षण धोखा चल रहा है। ऐसा थोड़े ही है कि दिन के किसी खास समय में हम धोखा देते हैं, हम चौबीस घंटे धोखा दे रहे हैं। चलते हैं, तो कमजोर आदमी, डरा हुआ आदमी ऐसे चलता है जैसे बहुत बहादुर हो। धोखा दे रहा है। किसी को भी नहीं, अपने को दे रहा होगा।
अंधेरी गली है, और एक आदमी निकलता है सीटी बजाता हुआ। वह सीटी बजा कर सारे मोहल्ले को और अपने को धोखा दे रहा है कि अंधेरे से मैं डर नहीं रहा, देखो किस खुशी से सीटी से बजा रहा हूं। और सीटी सिर्फ डर में बजा रहा है और कोई कारण नहीं है। सिर्फ डरा हुआ है। और डर में सीटी बजा कर सेल्फ कांफिडेंस पैदा करने की कोशिश कर रहा है कि आत्म-विश्वास आ जाए कि हम तो सीटी बजा रहे हैं, हम कोई डरते हैं।
यह कहां-कहां उसे जांच करने जाना पड़ेगा? उसे जीवन की समस्त प्रक्रिया में, जीवन के प्रत्येक छोटे काम में जागरूक हो कर देखना पड़ेगा, मैं क्या कर रहा हूं, वही जो मैं हूं? और मैं आपसे कहता हूं, अगर हिंसक हैं, तो अहिंसक होने के ढोंग में मत पड़ना। अन्यथा अहिंसक कभी नहीं हो सकेंगे। अगर हिंसक हैं, तो अपनी हिंसा को जानना। जो आदमी अपनी हिंसा को जान लेता है, वह अपनी हिंसा को बर्दाश्त नहीं कर सकता। हिंसा बरदाश्त नहीं की जा सकती, उसे बदलना ही पड़ता है। लेकिन जो आदमी हिंसा को अहिंसा के ढोंग में छिपा लेता है, वह हिंसक बना रहता है और अहिंसा का गुणगान करता रहता है। तख्ती लगा लेता है, अहिंसा परमोधर्मा है। जहां भी यह तख्ती दिखे, समझ लेना कि नीचे आस-पास हिंसक आदमी बैठे होंगे। अहिंसक आदमी, अहिंसा परमोधर्मा नहीं कहेगा। यह हिंसक आदमी ही कहता है।
हिंदुस्तान में अहिंसा की कितने हजार सालों से चर्चा हो रही है, और कोई आदमी अहिंसक है? कोई समाज अहिंसक है? हिंदुस्तान में जिनके हाथ में आज सत्ता है, उन सबने अहिंसा का बहुत ढोंग पीटा। लेकिन सत्ता आने पर, अंग्रेजों ने दो सौ साल की गुलामी में इतनी हिंसा नहीं की थी, जितनी बीस साल के अहिंसकों ने की। आश्चर्यजनक है! जितनी गोली इन्होंने चलाई, जितने लोगों की हत्या इन्होंने की, छोटे से मामले को ले कर, जितने इन्होंने लोगों को मारा, इतना अंग्रेजों ने दो सौ वर्षों में नहीं मारा, जितना इन्होंने बीस वर्षों में मार डाला। ये अहिंसक हैं! वे हिंसक थे। हिंसक आदमी पर भरोसा किया जा सकता है, कम से कम वह सच्चा तो है। अहिंसक आदमी पर भरोसा करना बहुत मुश्किल है, खतरनाक है। भीतर हिंसा है, ऊपर से अहिंसा का ढोंग है।
हिंदुस्तान में अहिंसा की बातें चल रही हैं सैकड़ों वर्षों से। और हिंदुस्तान का समाज जरा भी अहिंसक नहीं है।
पाकिस्तान का हमला हुआ, चीन का हमला हुआ, तो एक आदमी ने नहीं कहा कि अब अहिंसा का उपयोग करना चाहिए। नहीं, सवाल ही कहां है। वह अहिंसा का उपयोग तो हम जब गुलाम थे और कमजोर थे और हिंसा नहीं कर सकते थे, तब थी वह सब अहिंसा की बातचीत। वह सरासर धोखा था। कमजोरी को छिपा रहे थे अहिंसा के नाम से। और अब जब हाथ में ताकत आ गई, तब सीधी हिंसा की बातें कर रहे हैं। और साधारण लोगों को तो हम छोड़ दें, जिनको हम बहुत अच्छे लोग कहते हैं, उनके भीतर भी दोहरी पर्तें होती हैं।
उन्नीस सौ तीस के करीब एक अदभुत घटना घटी। वह घटना यह थी कि पंजाब के
एक गांव में, मुसलमानों के एक गांव में दंगा हो गया, और अंग्रेजों की यह

नीति थी कि अगर मुसलमानों का गांव हो और दंगा हो, तो हिंदुओं की मिलिटरी भेजो वहां दबाने के लिए। मिलिटरी तो दबाएगी ही, हिंदू होने की वजह से और गर्दन घोट देगी। अगर हिंदुओं का गांव दंगा हो जाए, तो मुसलमानों को भेजो। तो वे वैसे तो दबाएंगे ही, और मुसलमान की वजह से और छाती में छुरे भोंक देंगे। तो उस मुसलमान गांव को दबाने के लिए सिक्खों की बटालियन भेजी गई। लेकिन एक अदभुत घटना घटी वहां, उस घटना को कीमत दी जानी चाहिए। वह जो, बल्कि बटालियन भेजी गई थी, उसने कह दिया कि हम बंदूक चलाने से इनकार करते हैं, हम अपने भाइयों पर बंदूक नहीं चलाएंगे। और उन्होंने जाकर वे सारी की सारी बंदूकें थाने में समर्पित कर दीं और हथकड़ियां डलवा लीं कि हम बंदूक नहीं चलाएंगे, हम खुद मरने को तैयार हैं, लेकिन अपने भाइयों पर गोली नहीं चला सकते।
सारी दुनिया ने सोचा कि गांधी जी इसकी तारीफ करेंगे, लेकिन गांधी जी
ने इसकी निंदा की। यह तो अहिंसा का अदभुत उदाहरण था। हमारे ख्याल में आएगा कि गांधी जी को तारीफ करनी चाहिए कि अदभुत बहादुर सैनिक हैं वे, जिन्होंने हिंसा करने से इनकार किया और जिन्होंने अपने भाइयों पर गोली नहीं चलाई। लेकिन गांधी जी ने इसका विरोध किया और निंदा की।
गांधी जी यूरोप जा रहे थे, तो फ्रांस में पत्रकारों ने उनसे पूछा कि
हम हैरान हो गए हैं, आप तो अहिंसक हैं और आपके सैनिकों ने अहिंसा का एक उदाहरण उपस्थित किया, उसकी आपने निंदा की? तो गांधी जी ने क्या कहा आपको पता है? गांधी जी ने कहाः मैं इस तरह की अनुशासनहीनता की समर्थन नहीं कर सकता। क्योंकि इन्हीं सैनिकों के हाथ में कल आजादी आएगी, कल इन्हीं सैनिकों के भरोसे हमको हुकूमत करनी है। अगर इन्होंने अहिंसा, इस तरह के काम किए अनुशासनहीनता के, तो फिर हम किनकी ताकत के बल पर हुकूमत करेंगे। बड़ी मजे की बात है! इसका मतलब यह है कि अंग्रेजों से अहिंसा से लड़ना है और लड़ लेने के बाद जब ताकत हमारे हाथ में आ जाए, तो फिर बंदूक के कुंदे से हिंदुस्तान को दबाना है। इसका क्या मतलब होता है? इसका अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ यह होता है कि भीतर बहुत गहरे में चाहे हम जानते हों, चाहे न जानते हों, हिंसा की पर्तें छिपी हैं। और ऊपर, ऊपर अहिंसा की एक व्यवस्था है। और अगर एक हिंसक आदमी अहिंसक हो जाए, तो वह अहिंसा को भी इस तरह थोपने की कोशिश करेगा जैसे कि हिंसा को थोपने की कोशिश की जाती है। वह दूसरों को भी जबरदस्ती अहिंसक बनाने की कोशिश करेगा। वह उनकी भी गर्दन पकड़ लेगा। गर्दन पकड़ने के ढंग बहुत तरह के हो सकते हैं।
मैं आपकी छाती पर छुरा ले कर खड़ा हो जाऊं, और कहूं कि मेरी बात मानिए अन्यथा मैं छुरा मार दूंगा। तो हम कहेंगे, यह हिंसा है। और में आपके सामने अपनी छाती पर छुरा ले कर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि मेरी बात मानते हैं कि नहीं, नहीं तो मैं छुरा मार लूंगा। तो हम कहेंगे, यह अनशन! यह अहिंसा है! यह सत्याग्रह है! यह भी हिंसा है। और यह पहली वाली हिंसा से ज्यादा खतरनाक और सूक्ष्म! क्योंकि इसमें दूसरे आदमी को मारने की धमकी नहीं, अपने को ही मारने की धमकी दी जा रही है। दूसरे आदमी को मारने की धमकी में तो दूसरा आदमी बचाव भी कर सकता था, अपने को मारने की धमकी में दूसरा आदमी बिल्कुल कमजोर हो गया, वह बचाव भी नहीं कर सकता। अगर हिंसक आदमी अहिंसक हो जाए, तो उसकी अहिंसा भी दूसरे को गर्दन दबाने के काम में आएगी और उसे दिखाई नहीं पड़ेगा।
मैंने एक मजाक सुनी है, मैंने सुना है एक गांव में, एक युवक ने, एक घर
के सामने जा कर बिस्तर लगा दिया और कहा कि मैं अनशन करता हूं, सत्याग्रह करता हूं, मुझे इस घर की लड़की से विवाह करना है अन्यथा में मर जाऊंगा। गांव भर में तारीफ हुई, क्योंकि सत्याग्रह था यह। सबने कहा कि सत्याग्रह तो अच्छा होता है। वह तो बेचारा खुद मरने के लिए कह रहा है। दूसरे का हृदय परिवर्तन करने की कोशिश कर रहा है। यह हृदय परिवर्तन की कोशिश है। घर के लोग घबड़ा गए। अगर वह लड़का छुरे से धमकी देता, तो पुलिस में इंतजाम कर देते। लेकिन वह कह रहा है कि मैं अनशन करके मर जाऊंगा, मैं सत्याग्रह कर रहा हूं, मैं हृदय परिवर्तन की कोशिश कर रहा हूं। मैं अपनी आत्मशुद्धि कर रहा हूं और लड़की के बाप की आत्मशुद्धि कर रहा हूं ताकि वह राजी हो जाए। और गांव भर

में सत्याग्रह को समर्थन देने वाले लोग मिल गए और जय-जयकार होने लगा। बाप घबड़ाया कि क्या करें? लोकमत सत्याग्रह के पक्ष में है। तो बाप ने एक पुराने वृद्ध सत्याग्रही से जा कर पूछा कि कुछ रास्ता बताओ? उसने कहाः घबड़ाओ मत। शाम को इंतजाम कर देंगे। वह एक बूढ़ी वेश्या के पास गया और उससे कहा कि रात को बिस्तर ले कर आ जाओ और जवान लड़के के सामने अनशन कर दो कि जब तक मुझसे विवाह नहीं करोगे मैं मर जाऊंगी भूखी। उस बुढ़िया ने आ कर अनशन कर दिया। वह लड़का रात ही बिस्तर ले कर भाग गया।
एक-दूसरे की गर्दन इस तरह भी दबाई जा सकती है। लेकिन आप जब तक दूसरे की गर्दन दबा रहे हैं, चाहे गर्दन दबाने का ढंग अहिंसक हो, भीतर हिंसा मौजूद है। दूसरे आदमी को दबाने के पीछे हिंसा है। लेकिन दूसरे के खोजबीन में जाना बहुत मुश्किल है, अपनी खोजबीन में जाना बहुत आसान है। हम देख सकते हैं, हमारी अहिंसा हिंसा तो नहीं है? हमारा प्रेम घृणा तो नहीं है? हमारे सत्य के पीछे झूठ तो नहीं बैठा है? हमारे सदभाव के पीछे दुर्भाव तो नहीं है? हम जैसे हैं भीतर भी हम वैसे ही हैं? अगर नहीं हैं, तो एक काम है, और वह यह है कि हम जैसे हैं उसे जानने में लग जाएं। चाहे कितने ही बुरे हों, बुरे को जानना बुरे को बदलने का कीमिया है, रास्ता है। जैसे भी हैं, कोई फिकर नहीं कि बुरे हैं। लेकिन बुरे भी हैं, तो उसे हम जानें, पहचानें, धोखा न दें, छिपाएं न। जिस घाव को छिपा लिया जाए वह मिटता नहीं, अंततः वह बढ़ता चला जाता है, नासूर बन जाता है, कैंसर भी बन सकता है। और हमने मन के सब घाव छिपा रखे हैं। और ऊपर हम इस तरह से, जैसे कोई घाव ही नहीं है। ऊपर हम बिल्कुल ठीक हैं। किसी भी आदमी से पूछो, कैसे हो? वह कहेगा, बिल्कुल ठीक। और कोई आदमी बिल्कुल ठीक नहीं है। सब आदमी भीतर गड़बड़ है। लेकिन पूछो कि क्या सच कह रहे हैं? तो वह कहेगा, कहना पड़ता है इसलिए कह रहे हैं। सब उपचार है। फार्मेलिटी से आपने पूछा तो कहा, सब ठीक है, सब खुशी है। लेकिन कोई खुश नहीं है।
भीतर इसकी एक-एक व्यक्ति को अपनी ही निरीक्षण और खोज करनी जरूरी है ताकि हम पहचान सकें, कहां हम असली हैं, कहां हम नकली हैं। और ध्यान रहे, कि असली को पहचान लेना ही बहुत अदभुत काम है। क्योंकि असली को पहचानते ही जो बुरा है वह गिरना शुरू हो जाता है। और जो शुभ है वह बढ़ना शुरू हो जाता है। ज्ञान की जो अग्नि है, उसमें बुरा जल जाता है और जो शुभ है वह शेष रह जाता है।
लेकिन जाने ही न, तो अज्ञान में शुभ दबा रहता है, अशुभ बढ़ता चला जाता है।
जैसे किसी घर में अंधेरा हो, दरवाजे बंद हों, कोई भीतर मालिक जाता ही न हो, तो वहां कूड़ा-करकट इकट्ठा होता है, कीड़े-मकोड़े इकट्ठे होते हैं, सांप-बिच्छू इकट्ठे होते हैं, अंधेरे में गंदगी इकट्ठी होती है, दुर्गंध फैलती है। फिर मालिक उस मकान में भीतर जाए, सिर्फ जाए, और उसके जाने से ही फर्क शुरू हो जाएगा। क्योंकि वह जैसे ही देखेगा कि मेरे घर में कीड़े-मकोड़े इकट्ठे हैं, इन कीड़े-मकोड़ों के साथ कैसे रहा जा सकता है? कीड़े-मकोड़ों को हटाना पड़ेगा। वह हटा देगा, लेकिन मालिक बैठा है घर में ताला लगा कर बाहर, पीठ टेके हुए घर से, और घर के भीतर ही नहीं जाता और भीतर यह सब बढ़ता चला चला जा है। और घर के सामने उसने बड़ी-बड़ी तख्तियां लगा रखी हैं कि यहां कोई कीड़े-मकोड़े नहीं हैं, यहां कोई अंधेरा नहीं है, यहां सब अच्छा है, आइए, स्वागत है आपका! और वहीं सीढ़ियों पर सब स्वागत चल रहा है। और घर के भीतर न वह खुद जाता है, न किसी और को ले जा सकता है। जहां खुद ही नहीं गया वहां दूसरे को कैसे ले जाए।
हम जिसे प्रेम करते हैं, उसको भी अपने भीतर का हिस्सा नहीं देखने देते, उसे भी हम धोखा ही देते चले जाते हैं। इसलिए कोई प्रेम भी नहीं हो पाता। हम खुद ही डरते हैं अपने को देखने से, तो हम दूसरे को कैसे देखेंगे? आत्म-साक्षात्कार का मतलब यह नहीं है कि बैठ कर एक आदमी चिल्लाए कि मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं। यह मूढ़ता है, आत्म-साक्षात्कार का उपाय नहीं। आत्म-साक्षात्कार का अर्थ है कि मैं जानूं, मैं कैसा हूं? मैं जैसा हूं वैसा जानूं, उसे पहचानूं, उसे पूरी सच्चाई में

पहचानूं कि मैं ऐसा आदमी हूं, यह मेरे भीतर है। और आप कहेंगे कि जब दिखाई पड़ जाए, तो फिर हम क्या करें? मैं कहता हूं, पहले देख लें, जल्दी मत करें कि हम क्या करें। पहले देख लेना जरूरी है। और देखने से ही, जो करना है वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि हम क्या करें।
रास्ते पर आप जा रहे हैं और एक सांप आ गया रास्ते पर, फिर आप किसी से पूछते हैं अब मैं क्या करूं? फिर आप पूछते हैं कि जाऊं किसी गुरु के पास, पता लगाऊं कि सांप रास्ते पर आ जाए तो क्या करना चाहिए। सांप रास्ते पर दिखा, फिर न गुरु की फिक्र, न किसी से पूछने की, आदमी छलांग लगाता है। घर में आग लग जाए, फिर आप गीता खोल कर देखते हैं कि घर में आग लगी हो, तो क्या करना चाहिए। गीता-वीता वहीं घर में पड़ी रह जाती है आदमी छलांग लगा कर बाहर हो जाता। जब जिंदगी की असलियत दिखाई पड़नी शुरू होती है, वहां सांप और आग दिखाई पड़नी शुरू होती है। वहां जहर दिखता है, तो कोई पूछने नहीं जाता कि क्या करूं, छलांग लग जाती है। वह इतनी खतरनाक चीजें हैं कि उनके साथ एक क्षण रहा नहीं जा सकता। एक सडन चैंज, एक जैसे विस्फोट हो गया हो, इस तरह का परिवर्तन शुरू हो जाता है। जीवन में जो क्रांति आती है, वह आपके बदलने से नहीं आती, आपके जानने से आती है। ज्ञान के अतिरिक्त और कोई क्रांति नहीं है। नालेज इ.ज ट्रांसफार्मेशन। बस ज्ञान ही क्रांति है। लेकिन हम ज्ञान से ही बचते हैं। और अज्ञान में जीते हैं। और फिर हम लोगों से पूछते हैं, अहिंसा लाना है तो क्या करें? क्रोध हटाना है तो क्या करें? अशांति मिटानी है तो क्या करें? दूसरों से पूछते हैं!
एक मित्र मेरे पास आए और मुझसे कहने लगे कि मैं श्री अरविंद आश्रम गया। शांति नहीं मिली वहां भी। तो ऋषिकेश गया, वहां भी शांति नहीं मिली। किसी ने आपका नाम दिया, आपके पास आ गया। छह महीने से भटक रहा हूं। कृपा करके मुझे शांति दें। मैंने उनसे पूछाः अशांति लेने के लिए किस आश्रम गए थे? अरविंद आश्रम गए थे? ऋषिकेश गए थे? मेरे पास आए थे? अशांति खुद ही पैदा कर ली? बड़े काइयां और चालाक मालूम होते हैं! और शांति दूसरों से पाने के लिए निकले हुए हैं। जिस ढंग से अशांति पैदा की है उस ढंग को समझो, शांति पैदा होनी शुरू हो जाएगी। क्योंकि अशांति मैंने पैदा की है, तो मैं जानूं कि मैंने अशांति कैसे पैदा की है? मैं जानता हूं कि मैंने कैसे पैदा की है। उसको बदलना भी नहीं चाहता, अशांति के जो कारण हैं उनको देखना भी नहीं चाहता। फिर किसी गुरु से पूछता हूं, कृपा हो जाए, प्रसाद मिल जाए भगवान का कि चित्त शांत हो जाए। अशांति के कारण भी नहीं बदलना है और शांत भी होना है। यह असंभव है।
इसलिए मैं कहता हूं, शांति को खोजना ही मत; अशांति को खोजना। अशांति
को जो खोज लेता है वह शांत हो जाता है। अहिंसा को खोजना ही मत; हिंसा को पहचानना, जो हिंसा को पहचान लेता है वह अहिंसक हो जाता है। घृणा को छोड़ना ही मत; जो छोड़ेगा वह खतरे में पड़ जाएगा। क्रोध को छोड़ना ही मत; छोड़ेगा, उसके भीतर क्रोध इकट्ठा होने लगेगा।
नहीं, क्रोध को जानना, पहचानना, क्रोध को देखना, समझना और क्रोध विलीन
हो जाएगा। जो अशुभ है, वह ज्ञान के सामने टिकता ही नहीं है। जैसे दीये के सामने अंधेरा नहीं टिकता, ऐसे ज्ञान के सामने अशुभ नहीं टिकता। वह जो नकली आदमी है, उसको देखें, वह नकली आदमी विदा हो जाएगा। वह कब घर छोड़ कर चला गया और असली आदमी आ गया इसका पता भी नहीं चलेगा।
लेकिन हम कहते हैं, दूसरे आदमी में कैसे पहचानें? दूसरे आदमी में पहचानने की पहली तो बात जरूरत नहीं है। दूसरी बात, दूसरे आदमी को पहचानने में समय खोना खतरनाक है। समय बहुत सीमित, समय बहुत अल्प, उसको अपने काम में लगाइए। तीसरी बात, दूसरे आदमी में नकली आदमी देख कर प्रसन्न होने का चित्त होता है कि अरे सब नकली हैं, तो हर्ज क्या है, अगर हम भी नकली हुए। एक तृप्ति मिलती है कि सभी नकली हैं।
आदमी सुबह से अखबार पढ़ता है, उसमें देखता है, फलां जगह हत्या हो गई, फलां जगह चोरी हो गई, फलां जगह फलां औरत¬और आदमी के साथ भाग गई। वह बड़ा खुश होता है कि सारी दुनिया खराब है। क्यों खुश होता है? क्योंकि तब अपने खराब होने में कोई खास हर्जा नहीं है। ऐसा है ही। अगर कोई अखबार अच्छी-अच्छी

खबरें छापे, अखबार बिकेगा ही नहीं। क्योंकि कौन खरीदे? अखबार को बुरी खबरें छापनी पड़ती हैं, न मिले तो बनानी पड़ती हैं, झूठी भी गढ़नी पड़ती हैं। क्योंकि बुरा आदमी बुरी खबरें पड़ने को घर के भीतर जग कर बैठा हुआ है चाय पी कर, वह खबर कर रहा है कि न्यूज पेपर कहां है? क्यों? क्योंकि वह तृप्त हो सके कि अब दिन भर बुरा करो। सारी दुनिया में बुरा हो रहा है। इसलिए अखबार अच्छी खबर छापने में मजबूर है, नहीं छाप सकता, बिकेगा नहीं। बुरा आदमी अखबार पड़ने की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा है, वह जानना चाहता है कि हर आदमी अपराधी है। क्यों? क्योंकि वह अपने अपराध के बोझ को कम करना चाहता है। जब सभी अपराधी हैं, तो हर्ज क्या है। फिर मैं भी हूं, आखिर मैं भी तो सब जैसा ही हूं। फिर बदलने की जरूरत भी क्या है। दुनिया ही ऐसी है। दूसरे की तरफ हम देखते हैं। हम जैसे हैं उससे बचने के लिए। और जिस आदमी को अपने को बदलना है, वह अपनी तरफ देखता है दूसरे की तरफ नहीं।
एक छोटी सी बात फिर हम मैं दूसरे प्रश्न की बात करूं।
मैंने सुना है, जापान में एक फकीर था, एक साधु। एक रात आधी रात अपने कमरे में बैठा हुआ पत्र लिख रहा है। किसी ने दरवाजे पर आकर धक्का दिया, कोई चोर, दरवाजा अटका था, खुल गया। चोर ने समझा था, साधु सो गया होगा। साधु ने आंखें उठाईं ऊपर, चोर घबड़ा गया, उसने छुरा निकाल लिया, साधु ने कहा, छुरे को भीतर रखो, यहां कोई जरूरत न पड़ेगी। आओ, अंदर आ जाओ। चोर इतना घबड़ा गया, इसलिए नहीं कि साधु के हाथ में कोई छुरा था। जिसके हाथ में छुरा है, उससे बहुत घबड़ाने की जरूरत नहीं। क्योंकि छुरे के खिलाफ छुरा उठाया जा सकता है। वह साधु निहत्था बैठा था, और जोर से हंसने लगा, उसने कहा, रख लो छुरा भीतर, कोई जरूरत न पड़ेगी, आओ बैठ जाओ, कैसे आए, बड़ी रात गए? वह आदमी घबड़ाहट में बैठ गया। उस साधु ने पूछाः कुछ जरूरी काम से ही आए होंगे। इतनी रात कोई भी तो नहीं आता? गांव दूर है। कैसे आए? क्या जरूरत पड़ गई? मैं क्या सेवा कर सकता हूं, बोलो? वह चोर तो घबड़ा गया! लेकिन इतने सच्चे आदमी के सामने झूठ बोलना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। तो उस चोर ने कहाः क्षमा करें, मुझे जाने दें, मैं किसी काम से नहीं आया, मैं चोरी करने के ख्याल से आया था। उस साधु ने कहाः चोरी करने के ख्याल से? लेकिन बड़ा मुश्किल है, झोपड़े में तो कुछ है ही नहीं? और अगर आना था तो पहले खबर करनी थी, तो फकीर का झोपड़ा है, हम कुछ इंतजाम करके रखते। बड़ी गलती हो गई, सुबह ही एक आदमी सौ रुपये भेंट करता था। मैंने उसे वापस लौटा दिए। नहीं माना तो सिर्फ दस रुपये रखे हैं। दस रुपये से काम चल जाएगा? अब दुबारा कभी आओ, तो गरीब आदमी का ख्याल रख कर आना चाहिए। पहले खबर करना चाहिए। अमीर के घर में बिना खबर जा सकते हो। हम गरीब हैं, हमारे घर में बिना खबर किए नहीं आना चाहिए। इसमें हमारा बहुत अपमान होता है।
वह चोर तो बहुत घबड़ा गया, उसकी तो श्वास फुल गई कि क्या करे क्या न करे? उस फकीर ने कहाः उस आले में रखे हुए दस रुपये उठा लो। लेकिन बड़ा दुख मन को होता है कि इतनी रात तुम आए और सिर्फ दस रुपये! उस चोर ने घबड़ाहट में, उसे कुछ होश नहीं है कि क्या कर रहा है, रुपये उठा लिए, जाने लगा, तो उस फकीर ने कहा, अगर कृपा कर सको और असुविधा न हो, तो एक रुपया मुझे उधार दे जाओ। बाद में लौटा दूंगा, क्योंकि सुबह से ही जरूरत पड़ेगी। उसने जल्दी से एक रुपया नीचे रख दिया, दरवाजे से भागने लगा, तो उस फकीर ने कहा, ठहरो, कम से कम दरवाजा तो अटका दो, और कम से कम धन्यवाद तो दे जाओ। रुपये तो कल खत्म हो जाएंगे, धन्यवाद बाद में भी काम पड़ सकता है। उस चोर की तो सब समझ के बाहर हो गया। चोर को चोर मिल जाए, तो समझ के भीतर होता है। चोर को साधु मिल जाए, तो समझ के बाहर हो जाता है। चोर चोर को ही पहचान पाते हैं। और जो साधु चोर को भी पहचानते हैं, समझ लेना कि वह साधु भी चोर होगा, नहीं तो पहचान नहीं सकता। चोर चोर को ही पहचान सकता है। साधु तो बहुत गड़बड़ हो जाएगा, उसके समझ के बाहर हो जाएगा। तो चोर जिन साधुओं को पूजते हैं, समझ लेना कि उन दोनों की भी कोई आंतरिक संबंध है अन्यथा यह पूजा नहीं चल सकती।
साधु की पूजा बहुत मुश्किल है। साधु की हत्या की जा सकती है, पूजा नहीं की जा सकती। लेकिन हां, अपने ही ढंग का चोर हो, कपड़े और तरह के पहने हों, तो चल जाएगा। उस साधु ने कहा कि धन्यवाद पीछे काम पड़ेगा, दरवाजा अटका

पागल, और धन्यवाद देना सीख! चोर ने घबड़ाहट में धन्यवाद दे दिया, दरवाजा भी अटकाया और भाग गया।
दो साल बाद वह चोर पकड़ा गया। और चोरियों के भी जुल्म उसके ऊपर थे। यह चोरी का भी पता चल गया अदालत को। तो उस साधु को बुलाया गया पूछने के लिए कि क्या इसने कभी तुम्हारे यहां चोरी की थी? चोर डरा हुआ था, क्योंकि साधु की इतनी, उसके शब्द का इतना मूल्य था कि अगर वह कह दे कि हां यह एक दफा चोरी करने आया था। तो फिर सब प्रमाण व्यर्थ हैं। फिर चोरी सिद्ध ही हो गई। चोर डरा हुआ कंप रहा है। साधु गया, जज ने पूछा, इसने कभी चोरी की है? उस साधु ने गौर से देखा, उसने कहाः चोरी! चोरी की बात ही अलग, यह आदमी बहुत अदभुत है। एक रुपया इसका मुझे उधार देना है, दो साल से खीसे में रख कर घूम रहा हूं, इसका कोई पता नहीं है। यह रुपया ले, फिर मिला की नहीं मिला, वह तो अदालत की कृपा है कि तू मिल गया, यह रुपया सम्हाल अपना। हम मुसीबत में पड़े हुए हैं कि रुपया कैसे लौटाएं।
जज ने कहाः कहां का रुपया, यह क्या मामला है? उस साधु ने कहा, दस रुपये मैंने इसे भेंट किए थे, भेंट के बदले में इसने धन्यवाद दे दिया था। वह बात खतम हो गई। एक रुपया इससे मैंने उधार लिया था। वह मुझे वापस लौटाना है। और इसको आप चोर कहते हैं। यह चोर नहीं है। अगर यह चोर होता, तो चोरी करने की जरूरत ही न पड़ती। चोरों को चोरी करने की जरूरत नहीं है। राजधानी में बड़े- बड़े महल बना कर वे बैठे हुए हैं। चोर को चोरी की कोई जरूरत ही नहीं है। यह चोर है, तो इसको चोरी की क्या जरूरत होती। अब तक महल खड़े कर लिए होते, तिजोड़ियां भर ली होतीं इसने। यह आदमी बहुत सीधा-साधा है। जज तो बहुत घबड़ाया, उसने कहा, सीधा-साधा, आप कहते हैं? आपके घर यह चोरी करने नहीं गया? उसने कहा, पागल है यह, जिस घर में कुछ भी नहीं है, दो मील गांव छोड़ कर वहां गया। यह बहुत दीन-हीन है, यह बहुत दरिद्र है, यह चोर कैसे हो सकता है? यह दया के योग्य है। और जिस समाज ने इसे इतना दीन-हीन बनाया, वह समाज चोर है! लेकिन ऐसे आदमी को समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा। यह आदमी इस चोर में
भी चोर को नहीं देख पा रहा है, इस चोर में भी यह और कुछ देख पा रहा है, जो हमें दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाए। क्यों? हम तो इसमें चोर ही देखना चाहेंगे, ताकि हमारे भीतर के चोर को राहत मिल जाए।
दूसरे की तरफ देख कर हम अपने को तृप्त कर रहे हैं। अपने को तृप्त इस तरह करना बहुत खतरनाक है। इसलिए मत पूछें कि हम दूसरे में कैसे पहचानें कि क्या असली है और क्या नकली है। जानें, खोजें, खुद में क्या असली है और क्या नकली है?

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि पश्चिम में मैटीरियलिज्म है, वहां भी लोग शांत नहीं है, वहां भी बड़ी अशांति है?

भारत इस तरह की बातें सुन कर बड़ी तृप्ति अनुभव करता है। अच्छा वे भी अशांत हैं, तो फिर ठीक है, हम भी अशांत हैं तो क्या हर्जा है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, गरीब की अशांति में और अमीर की अशांति में बुनियादी फर्क है। गरीब की अशांति अभाव की अशांति है। और अभाव की अशांति बहुत खतरनाक है। अमीर की अशांति अभाव की नहीं, अतिरेक की, एफ्लुअंस की अशांति है। और अतिरेक की अशांति बहुत सौभाग्य है। क्यों? क्योंकि गरीब अपनी अशांति में, रोटी-रोजी के सिवाय कुछ भी नहीं सोच सकता। और अमीर अपनी अशांति में परमात्मा के संबंध खोजना और सोचना शुरू कर देता है। गरीब अशांत होता है तो उसकी कामना पदार्थ के लिए होती है। और अमीर अशांत होता है तो उसकी कामना परमात्मा के लिए शुरू हो जाती है। यह बहुत अदभुत बात है कि जो मैटीरियलिस्ट हैं, भौतिकवादी हैं, वे आध्यात्मिक हो सकते हैं। लेकिन जो निपट थोथे अध्यात्मवादी हैं, वे सिवाय भौतिकवादी के और कुछ भी नहीं हो सकते हैं। इसलिए पश्चिम में एक अशांति है। लेकिन वह अशांति सौभाग्यपूर्ण है। पश्चिम उस जगह पहुंच गया है, जहां से पदार्थ व्यर्थ हो जाएगा। धन मिल गया है, मकान मिल गए हैं, सब मिल गया है जो मिल सकता था। लेकिन अब क्या करें? अब कहां जाएं? अब कहां खोजें? बाहर खोज लिया है, बाहर

जो मिल सकता था, मिल गया है, लेकिन फिर भी शांति नहीं है, पश्चिम की भीतर की खोज शुरू हो जाएगी, हो गई है।
लेकिन भारत में, बाहर की खोज ही पूरी नहीं हो पाई, तो भीतर की खोज कैसे शुरू हो? रोटी ही नहीं मिल पाई, प्रार्थना कैसे शुरू हो? नहीं, हम कहेंगे, गलत कहते हैं आप, हम तो प्रार्थना करते हैं। लेकिन वह प्रार्थना भी रोटी के लिए होती है। वह प्रार्थना भी प्रार्थना नहीं है, रोटी ही है। मंदिर में एक आदमी हाथ जोड़े खड़ा है, खोलो उसके हृदय को और पूछो, क्या मांग रहे हो? मांग रहा है कि लड़की की शादी नहीं हो रही, कहीं शादी लगा दो। यह अध्यात्मवाद है! मांग रहा है कि लड़का बीमार है, दवा के लिए पैसे चाहिए। हे भगवान, या तो पैसे दिलवा दो या लड़के की बीमारी ठीक कर दो। यह अध्यात्मवाद है! मांग रहा है कि नौकरी नहीं लगती, नौकरी लगवा दो। यह अध्यात्मवाद है! गरीब आदमी की प्रार्थना भी पदार्थ के लिए ही हो सकती है, परमात्मा के लिए कैसे होगी? वह अगर परमात्मा को भी मांगेगा, तो इसलिए कि पदार्थ मिल जाए, रोटी मिल जाए, रोटी मिल जाए।
तो मैं आपसे कहता हूं, पश्चिम भी अशांत है, पूरब भी। लेकिन पश्चिम की अशांति बहुत दूसरी है पूरब की अशांति से। पूरब की अशांति गरीब की अशांति है। गरीब की अशांति क्या सोचती है, क्या मांगती है, गरीब की अशांति से मैटीरियलिज्म पैदा होता है, भौतिकवाद पैदा होता है। अमीर की अशांति से अध्यात्मवाद पैदा होता है।
हिंदुस्तान के तीर्थंकरों का इतिहास उठा कर देखें। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के हैं। हिंदुओं के भगवान सब राजाओं के लड़के हैं। हिंदुस्तान में गरीब का एक भी बेटा अब तक तीर्थंकर और अवतार नहीं हो सका भगवान का। क्यों? कुछ कारण हैं। बुद्ध के घर में सब कुछ है, महावीर के घर में सब कुछ है। और फिर भी शांति नहीं है, तो भीतर की यात्रा शुरू हो गई। महावीर को एक गरीब के घर में रख दो, भूख में पैदा हों, नंगे पैदा हों, फिर नंगे होने का ख्याल कभी पैदा नहीं होगा! फिर यही ख्याल होगा कि कपड़े कैसे मिल जाएं, एक मकान कैसे मिल जाए, रोटी कैसे मिले, नौकरी कैसे मिले!
धर्म समृद्ध जीवन से पैदा होता है। मेरे हिसाब में धर्म जो है, समृद्धि की आखिरी लक्जूरी है। जब समृद्ध होता है समाज, तो धर्म के फूल खिलते हैं। गरीब समाज में नहीं। लेकिन गरीब समाज बड़ी तृप्तियां और कनसोलेशन खोजता है। वह यह कहता है, अरे, तो तुम भी तो अशांत हो, तुम्हारे पास हवाईजहाज हैं, राकेट हैं, चांद पर जा रहे हो, क्या फायदा? तुम भी अशांत हो। बड़ी राहत मिलती है मन को कि हम भी अशांत हैं, फिर क्या फिक्र। तुम भी अशांत हो। तुम्हारे यहां भी तो सब अशांति है। तुम भी तो पूरब आते हो पूछने की शांत कैसे हो जाएं। तो फिर क्या जरूरत है हमें।
मैंने सुना है, एक मित्र एक कहानी मुझे सुना रहे थे। वे कह रहे थे कि
एक स्टेशन पर हरिद्वार जाने के लिए एक ट्रेन खड़ी, सारे लोग चढ़ रहे हैं डिब्बों में, और हर आदमी यही चिल्ला रहा है कि जल्दी अंदर जाओ, सामान चढ़ाओ, गाड़ी छूटने को है, जगह घेरो, स्थान बनाओ। पांच-सात मित्र एक आदमी को घेरे खड़े हैं, उसे खींच रहे हैं, और वह आदमी तो दलीलें कर रहा है, गाड़ी का गार्ड सीटी बजा रहा है, झंडी दिखा रहा है, वह आदमी से वे मित्र कह रहे हैं, जल्दी अंदर चलो। वह मित्र कह रहा है, पहले एक बात बता दो, इस गाड़ी से उतरना तो नहीं पड़ेगा? अगर उतरना ही पड़ा, तो फिर चढ़ें की क्या जरूरत? चढ़ने से क्या फायदा? अगर उतरना ही है, तो चढ़ने क्यों? उस आदमी का दलील ठीक है। वह यह कह रहा है कि अगर उतर ही पड़ेगा इस गाड़ी से, तो फिर हम नहीं चढ़ते। अगर न उतरना हो तो चढ़ते हैं। अब वे मित्र कैसे समझाएं गाड़ी छूटने को हैं। उन्होंने जबरदस्ती उस आदमी को बिना समझाए, भीतर गाड़ी के अंदर कर लिया।
फिर गाड़ी हरिद्वार पहुंच गई। अब गाड़ी, उतरने को है, सारे लोग उतर रहे हैं। पिछले स्टेशन पर सारे लोग चिल्ला रहे थे, अंदर चलो, अब सारे लोग चिल्ला रहे हैं, बाहर उतरो, गाड़ी छूटने को है, नीचे उतरो, सामान निकालो, जल्दी बाहर आओ। अब वे मित्र फिर उसको पकड़े हैं। वह मित्र कह रहा है, हम उतरेंगे नहीं, क्योंकि हमको चढ़ाया क्यों? जब चढ़ गए तो उतरें क्या! हम वैसे लोग नहीं हैं कि जब चढ़ गए तो उतर जाएं। अब हम उतरने वाले नहीं हैं। जब

उतरना ही था, तो हम उतरे ही हुए थे, हमको चढ़ाया क्यों? और वे मित्र कह रहे हैं कि तुम बिल्कुल पागल हो, उतरे हुए तुम अमृतसर पर थे, यह हरिद्वार है। अगर वहीं उतरे रह जाते तो अमृतसर पर ही रह जाते, हरिद्वार नहीं आ पाते। यह हरिद्वार है, यहां उतरो अब, यात्रा पूरी हो गई।
हिंदुस्तान का गरीब आदमी कहता है कि अगर समृद्ध होने से भी अशांति रहती, तो हम समृद्ध ही क्यों हों, हम चढ़ें ही क्यों, बकवास छोड़ो, हम गरीब ही ठीक हैं। अशांत तो हम पहले से हैं, लेकिन यह अमृतसर है ख्याल रखना, वह हरिद्वार है। वे पहुंच कर उतर रहे हैं, आप पहुंचे ही नहीं हैं। दोनों के बिंदुओं में भेद है, वे जहां खड़े हैं वह समृद्धि के बाद, हम जहां खड़े हैं समृद्धि के पहले। इसमें फर्क समझ लेना जरूरी है? एक आदमी भूखा मर रहा है अकाल में, बिहार में अकाल पड़ा हुआ है, एक आदमी भूखा मर रहा है और दूसरा आदमी उरली कांचन में आ कर उपवास कर रहा है। फर्क समझते हैं दोनों में? यह आदमी ज्यादा खा गया, ओवरफेट, जो उरली कांचन में आया हुआ है, यह ज्यादा खाने की वजह से बेचारा उपवास कर रहा है। चले जाओ बिहार में और वहां भूखे आदमी से कहो कि तू बड़ा सौभाग्यशाली है, भगवान की कृपा, कि उरली कांचन जाने की जरूरत नहीं, तू यहीं उपवास कर रहा है। तो उसकी समझ के बाहर होगा कि आप क्या कह रहे हैं, उपवास? मैं भूखा मर रहा हूं। उपवास करने वाला भूखा नहीं मर रहा है, ज्यादा खा गया है। ज्यादा खाए को उतार रहा है। वह वहां लौट रहा है, नार्मल होने की हालत में। वह आदमी बेचारा उसको खाना ही नहीं मिला। वह मरने की हालत में है, उसे भोजन चाहिए, ताकि वह नार्मल हो सके। इन दोनों की यात्राएं अलग हैं, एक अमृतसर पर है, एक हरिद्वार पर है।
उपवास में और भूखे मरने में फर्क है। गरीब आदमी भूखा मरता है, अमीर आदमी उपवास करता है। जिन समाजों के पास ज्यादा पैसा होता है, उन समाजों में उपवास करने वाला धर्म प्रचलित हो जाता है। जैसे जैनियों में उपवास करने वाला धर्म प्रचलित है, ओवरफेट सोसाइटी है। और कोई कारण नहीं है। गरीब आदमी में उपवास की क्रीड नहीं चल सकती, उपवास का पंथ नहीं चल सकता। गरीब आदमी कहेगा, हम उपवासे है हीं। यह कहां कि बातें कर रहे हो? हमें कुछ ऐसा धर्म बताओ कि कभी-कभी उत्सव का दिन आ जाए धर्म का, उस दिन हम अच्छा खाना भी खा सकें। तो गरीब आदमी का जो धर्म होगा, उसमें धार्मिक दिन पर ज्यादा खाना खाया जाएगा। अमीर आदमी का जो धर्म होगा उसमें धार्मिक दिन पर भूखा रहा जाएगा। इसके कारण हैं पीछे, वह अमीर और गरीब का मामला है, उसमें कुछ और मामला नहीं है।
महावीर नग्न खड़े हो गए, वे एक राजपुत्र हैं, उन्होंने श्रेष्ठतम कपड़े पहने हैं। अच्छे-अच्छे कपड़े ही अगर मिलते रहें। और आगे अच्छे कपड़े मिलने का दरवाजा बंद हो जाए, मतलब आखिरी कपड़े मिल जाएं, तो उनसे बोर्डम शुरू हो जाती, आदमी ऊबने लगता है। फिर वह आदमी कहता है, अब गरीब होने का मजा लेना चाहिए। सिर्फ अमीर आदमी गरीब होने का मजा ले सकता है, यह ध्यान रखना। गरीब आदमी कभी गरीब होने का मजा नहीं ले सकता। गरीब आदमी को अमीर होने में थोड़ा- बहुत मजा आ सकता है, गरीब होने में नहीं। इसलिए गरीब अमीर होना चाहता है। और जब अमीर अपनी अमीरी पर पहुंच जाता है, तो फिर गरीबी की कल्ट शुरू हो जाती है।
अभी मैं बनारस में था। हिप्पी और बीटनिक और बीटल, बनारस की सड़कों पर सैकड़ों आते हैं। दो हिप्पी मुझसे मिलने आए। मैंने उनसे पूछाः तुम क्या कर रहो हो यह? वे करोड़पतियों के लड़के हैं अमरीका में और बनारस की सड़कों पर दस पैसा मांग रहे हैं खड़े होकर! मैंने उनसे पूछाः तुम यह कर क्या रहे हो? तुम्हारे पास सब कुछ है! तुम बिना चप्पल के बनारस की गर्म सड़कों पर चल रहे हो, झाड़ों के नीचे सो रहे हो, दस-दस पैसे भीख मांग रहे हो? तुम्हारे पास सब है। उन्होंने मुझसे क्या कहा? उन्होंने कहा, वह सब है, लेकिन उससे हम ऊब गए।
गरीबी बड़ा चैंज मालूम पड़ती है, बड़ा अच्छा लगता है। हाथ फैला कर मांग रहे हैं, वृक्ष के नीचे सो गए हैं, बड़ा आनंद आता है। लेकिन यह आनंद किसको आ रहा है? यह बड़े महलों में जो ऊब गया है उसको। सड़क के किनारे जो पड़ा है, उसकी समझ के बाहर है कि यह कैसा आनंद आ रहा है आखिर! बड़ा आदमी जिसके घर में दस-

61

पच्चीस कारें हों, पैदल चलना चाहता है। कारों में मजा नहीं आता, पैदल चलना चाहता है। पैदल चलने में बड़ा सुख मालूम होता है। राकफेलर या मार्गन जैसे लोग, जब सड़क पर पैदल चलते हैं, तो सारी सड़क के लोग चौंक कर देखते हैं, रॉकफेलर जा रहा है पैदल! एक गरीब आदमी भी निकलता है वहीं से पैदल, कोई उसकी तरफ नहीं देख रहा। और उस गरीब आदमी के बगल से कार फर्राती हुई निकलती है, धुल उड़ाती हुई, उसकी छाती जल जाती है। सोचता है, कार में बैठे हुए लोग कितना आनंद उठा रहे होंगे, कब मैं बैठूंगा?
मेरे एक मित्र बेल्जियम गए हुए थे। रास्ता भटक गए। कार से ही यात्रा
कर रहे थे, यूरोप। एक रास्ते पर जहां कोई नहीं है, एक बूढ़ा किसान सड़क के किनारे बैठा हुआ तंबाकू पी रहा है। गाड़ी रोक कर उससे पूछा, यह रास्ता कहां जाएगा? वह चुप रहा। फिर पूछा कि क्या आप सुनते नहीं। उसने कहाः मैं सुनता हूं, लेकिन किसी कार वाले से पूछो, हम पैदल चलने वाले हैं। हमसे क्या मतलब? हमसे क्या संबंध? तुम कार वाले, हम पैदल चलने वाले। किसी कार वाले से पूछो की रास्ता कहां जाता है। हम अलग ही तरह के आदमी हैं, हम पैदल चलने वाले, हमसे तुम्हारा संबंध क्या? उन्होंने मुझसे कहाः उस आदमी ने यह कहा कि हमसे तुम्हारा संबंध ही नहीं है कोई, तुम दूसरे तरह के आदमी हो! तुम उनसे पूछो जो तुमसे संबंधित हैं, हमसे क्या पूछते हो! हम पैदल चलने वाले, कोई पैदल चलने वाला होगा, तो हम बताएंगे कि रास्ता कहां जाता है।
पैदल चलने वाले के मन में आग लग जाती है कार बगल से गुजरती है तब, ईर्ष्या से भर जाता है वह। कोई उसे नहीं देखता कि यह पैदल जा रहा है। लेकिन जब कारों में चलने वाला आदमी पैदल चलता है, चारों तरफ लोग देखते हैं। अब मजा समझ लीजिए आप? गरीब आदमी कार में क्यों बैठना चाहता है? क्योंकि गरीब आदमी को कार में बैठे, तो लोग देखते हैं और अमीर आदमी जब पैदल चले, तो लोग देखते हैं। दोनों की आकांक्षा एक है कि लोग देखें। लेकिन अमीर जब पैदल चले तब देखेंगे और गरीब जब कार में बैठे तब देखेंगे। दोनों की आकांक्षा में बुनियादी फर्क नहीं है। लेकिन अमीर की आकांक्षा और गरीब की आकांक्षा में स्थान का फर्क है। और वह स्थान यह है कि अमीर पहुंच कर लौट रहा है। अमीर अनुभव से लौट रहा है। गरीब अनुभव के पहले खड़ा है। इसलिए गरीब अगर संन्यासी भी हो जाए, तो भी ठीक अर्थों में संन्यासी नहीं हो पाता। क्योंकि जो उसने भोगा नहीं है, उसका त्याग कैसे कर सकता है? वह उसके मन में भोगने की कामना बनी ही रहती है। इसलिए गरीब अगर संन्यासी हो जाए, तो बहुत जल्दी आश्रम खड़ा करेगा। और अमीरों के सारे ढंग उस आश्रम में इकट्ठे होने शुरू हो जाएंगे। गरीब अगर संन्यासी होगा, तो आश्रम खड़ा करेगा। अमीर अगर संन्यासी होगा, तो आश्रम खड़ा नहीं करेगा।
यह जान कर आप हैरान होंगे कि महावीर के संन्यासियों ने कोई आश्रम खड़ा नहीं किया, वे पैदल चलते रहे। उन्होंने आश्रम खड़ा ही नहीं किया। वे धनी घरों से आने वाले लोग थे। वे बड़े-बड़े मकानों में रह चुके थे। अब बड़े मकान बनाने का कोई सवाल नहीं था। गरीब घरों से जो संन्यासी आए जिन समाजों के, उन्होंने बड़े-बड़े आश्रम खड़े कर लिए। और आश्रम में वही इंतजाम कर लिया, जो गरीब आदमी अपने महलों में नहीं कर पाया।
एक शंकराचार्य हैं, कोई भी शंकराचार्य हों, सोने का सिंहासन साथ ले कर चलते हैं, यह गरीब आदमी का सबूत है। यह गरीब घर से आ रहा आदमी। गरीब ब्राह्मण है, संन्यासी हो गया, सोने के सिंहासन पर बैठता, वह कहता है, नीचे मैं नहीं बैठूंगा, मैं सोने के सिंहासन पर बैठूंगा। सोने के सिंहासन पर बैठने की इच्छा थी, गरीब ब्राह्मण है, मौका मिला नहीं, अब संन्यासी हो गया, अब मौका मिल गया, अब वह कहता है, हम नीचे नहीं बैठेंगे, हम सोने के सिंहासन पर बैठेंगे। आगे सिंहासन चलता है, पीछे वह गरीब ब्राह्मण संन्यासी चलता है। वह कहता है, पहले सोने का सिंहासन रखो, फिर हम बैठें।
महावीर के लिए ले जाओ सोने का सिंहासन, वे कहेंगे, यह क्या यहां ले आए,
हम छूते नहीं, अलग हटाओ यहां से। क्यों? यह फर्क क्यों है? यह फर्क क्या है? यह फर्क यह है कि जो सोने के सिंहासनों से उतर कर आया है, उसे सोने के सिंहासन में कोई अर्थ नहीं रह गया। लेकिन जिसके मन में गरीब की जो कामना

थी, वह रह गई है, अगर कोई भी मौका मिल जाए, तो वह अमीर दिखाने के ढोंग पूरे के पूरे करेगा। वह करेगा ही।
तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि पश्चिम में अशांति है, लेकिन वह अशांति बहुत शुभ है और भगवान वैसी अशांति इस मुल्क को कब देगा, इसकी प्रार्थना करनी चाहिए? इस मुल्क की जो अशांति है, बहुत दुखद है; अभाव की अशांति है, उससे हम कब मुक्त हो जाएं तो अच्छा।
यह मुझे दिखाई पड़ता है कि पूरब के मुल्क धीरे-धीरे भौतिकवादी होते चले जाएंगे। पश्चिम के मुल्क धीरे-धीरे आध्यात्मिक होते चले जाएंगे। यह होगा ही। और जिन तीनों--पूरब अध्यात्मवादी था, वह उन दिनों था, जब पश्चिम गरीब था और पूरब अमीर था। जब पूरब में भी अमीरी थी, तो पूरब अध्यात्म की बातें करता था। अब अमीरी पश्चिम चली गई। पेंडुलम बदल गया है। अब वे अध्यात्म की बातें करेंगे। अब आप नहीं। अब आपको तो कम्युनिज्म की बात करनी पड़ेगी, समाजवाद की बात करनी पड़ेगी, टेक्नालॉजी की बात करनी पड़ेगी, आपको तो बड़े उद्योग, तंत्र खड़े करने पड़ेंगे, आपको तो मैटीरियलिज्म की बात करनी पड़ेगी, आपको साइंस की बात करनी पड़ेगी। नहीं तो आप नासमझी में पड़ जाएंगे, अमृतसर पर खड़े रह जाएंगे। और कहेंगे, हरिद्वार पर लोग उतर रहे हैं तो हम चढ़ें ही क्यों। हम यहीं रुकें रह जाएं, जब उतरना ही है तो हम चढ़ते ही नहीं हैं।
भारत में इस तरह की बातें समझाने वाले लोग हैं, वे कहते हैं कि देखो पश्चिम की तरफ, सब है फिर भी दुखी हैं, इसलिए किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है।
हिंदुस्तान में गरीबी की एक कल्ट, गरीबी का एक पंथ चल रहा है। दरिद्र
को हम दरिद्रनारायण कहते हैं। यह बड़ा खतरनाक शब्द है। दरिद्रनारायण, गरीबी को मेग्निफाई कर रहे हैं, गरीबी को ग्लोरीफाई कर रहे हैं, गरीबी को सम्मान दे रहे हैं। कह रहे हैं, यह दरिद्र नारायण हैं। यह नकल है। लक्ष्मीनारायण शब्द तो होता था, दरिद्रनारायण शब्द बिल्कुल नया है, अभी- अभी गढ़ा गया है। लक्ष्मीनारायण शब्द पुराना है। पैसा जिसके पास था, उसको हम लक्ष्मीनारायण कहते थे। गरीब को हम कहते हैं कि दरिद्रनारायण हैं ये। बर्नार्ड शॉ से एक मित्र ने जा कर कहा कि गांधी जी कहते हैं कि दरिद्रनारायण हैं, दरिद्रता भी एक आध्यात्मिकवाद बनाए दे रहे हैं वे। वे थर्ड क्लास में चलते हैं, और कोई पूछता है, थर्ड में क्यों चलते हैं? वे कहते हैं, चूंकि फोर्थ क्लास नहीं है। वे गरीबी को एक आदर दे रहे हैं। बर्नार्ड शॉ ने कहाः मैं गरीबी को घृणा करता हूं, उतनी ही जितनी प्लेग को, मलेरिया को। और दुनिया से गरीबी मिटनी चाहिए। जड़मूल से मिटनी चाहिए। गरीबी को बचाने की जरूरत नहीं है।
लेकिन गरीबी को अगर आदर देंगे, तो फिर गरीबी मिटेगी नहीं, बचेगी। और हिंदुस्तान गरीबी को आदर दे रहा है। और आदर देने के लिए वह तरकीबें खोजता है। वह एक तरकीब तो यह खोजता है कि देखो जिसके पास सब है, उनके पास भी क्या है। अशांत वे भी हैं, अशांत हम भी हैं। खतम हो गई बात। कुछ वैज्ञानिक साधनों से संपत्ति पैदा करने की जरूरत नहीं है।
लेकिन यह बुनियादी फर्क ठीक से समझ लेना चाहिए। गरीब आदमी भीतर से हमेशा अमीर होना चाहता है, यह स्वाभाविक है। और अगर समझ-बूझ कर उसने अपने को गरीब बना कर रोक लिया, तो वह अमीर भी नहीं हो पाएगा। और अमीरी के बाद जो गरीबी का सुख है, वह भी उसे कभी नहीं मिल पाएगा। अगर सारी दुनिया समृद्ध हो जाए, और सारी दुनिया समृद्ध हो सकती है आज। विज्ञान ने वह स्थिति पैदा कर दी है कि अगर दुनिया से राष्ट्र मिट जाएं, अब राष्ट्र भर एक बीमारी रह गई है जिसकी वजह से दुनिया गरीब है। अगर दुनिया के राष्ट्र मिट जाएं और सारी दुनिया एक हो जाए, तो आज विज्ञान ने इतनी ताकत पैदा कर दी है कि न किसी को भूखे रहने की जरूरत है, न किसी को गरीब रहने की। सब समृद्ध हो सकते हैं। और अगर सब समृद्ध हो जाएं, तो मैं आपसे कहता हूं, समृद्धि फिजूल हो जाएगी। और पहली दफे दुनिया में सरलता पैदा होगी, सादगी पैदा होगी। अब तक पैदा नहीं हो सकी। अब तक सादगी एक तपश्चर्या रही। लेकिन अगर दुनिया पूरी समृद्ध हो जाए, तो सादगी सहजता हो जाएगी। अगर सारी दुनिया में संपत्ति बिखर जाए, तो

वह ऐसी ही हो जाएगी, जैसे पानी और हवा है। कोई उसकी चिंता नहीं करेगा। किसी को समझाना नहीं पड़ेगा कि धन का मोह मत करो, धन छोड़ो, त्याग करो, समझाना ही नहीं पड़ेगा, धन कम है, इसलिए धन का मोह है। धन थोड़े लोगों के पास है, इसलिए धन की आकांक्षा है। धन इतना कम है कि धन की तृष्णा है। धन इतने मुश्किल से मिलता है कि आदमी सब गंवा कर धन को इकट्ठा कर लेता है और धन में कुछ भी नहीं पाता; आखिर में तब मुश्किल में पड़ जाता है।
धन जिस दिन हवा-पानी की तरह होगा और आज हो सकता है। लेकिन जिस देश में लोग गरीबी को आदर देंगे और कहेंगे कि हम तो चरखा चलाएंगे, हम बड़ी टेक्नालॉजी नहीं लाएंगे, हम तो पैदल चलेंगे, हम हवाई जहाज नहीं बनाएंगे, हम तो बड़ी मशीनें नहीं लगाएंगे, हम तो ग्रामोद्योग चलाएंगे। हम तो गांव-गांव में, स्वावलंबी बनेंगे, हम सेंट्रेलाइज नहीं करेंगे। ऐसी बातें करनी वाली कौम गरीब ही रहेगी और उसका चित्त हमेशा भौतिकवादी रहेगा, वह कौम कभी भी धार्मिक नहीं हो सकती और आध्यात्मिक भी नहीं हो सकती। लेकिन ये बड़ी उलटी बातें मालूम पड़ती हैं। क्योंकि हमको हमेशा यही सिखाया गया है। हमें हमेशा यही सिखाया गया है कि धन कुछ भी नहीं है।
लेकिन ध्यान रहे, धन कम है, इसलिए लोगों को समझाना पड़ता है कि धन कुछ
भी नहीं है। इस समझाने में भी कि धन मिट्टी है, तुच्छ है, कुछ भी नहीं है। जो समझाता है वह भी बताता है कि धन जरूर कुछ है, नहीं तो समझाने की कोई जरूरत नहीं थी। हम कभी नहीं कहते लोगों से जा कर की मिट्टी मिट्टी है, हम यह कहते हैं, सोना मिट्टी है। सोना मिट्टी नहीं होगा तभी कहते हैं, नहीं तो यह नहीं कहते, कोई जरूरत नहीं थी कहने की। हम कभी नहीं कहते कि कंकड़-पत्थर कंकड़-पत्थर है, हम कहते हैं, हीरे-जवाहरात कंकड़-पत्थर हैं। क्यों? यह हम किसको समझा रहे हैं? हम जो समझाते हैं ठीक उससे उलटी हालत होगी, इसलिए हम समझाते हैं, नहीं तो समझाने की जरूरत नहीं। मेरी समझ यह है, पांच हजार साल हो गए समझाते लोगों को, कौन धन से मुक्त हुआ है? हां, कुछ लोग मुक्त होते हैं। और वे वे ही लोग हैं, जो किसी न किसी अर्थों में धन के अनुभव से गुजर जाते हैं। हां, कुछ लोग और भी मुक्त होते हैं, लेकिन वे मुक्त होते दिखाई देते हैं वे मुक्त हो नहीं पाते, वे धन से मुक्त होते ही नहीं; धन छोड़ देते हैं लेकिन मुक्त नहीं होते। वे हमेशा धन को पकड़े ही रहते हैं। नये-नये रूपों में पकड़े रहते हैं।
मैं जयपुर में था, एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि फलां-फलां मुनि हैं, बहुत बड़े संन्यासी हैं, आप उनसे मिलिएगा, आपको बड़ी खुशी होगी। मैंने कहाः तुमने किस तराजू से पता लगाया कि वे बहुत बड़े मुनि हैं? कैसे तौला तुमने कि बहुत बड़े संन्यासी हैं? एक बड़े धनी आदमी को तोला जा सकता है कि बड़ा धनी है, क्योंकि धन के सिक्के नापे जा सकते हैं। एक आदमी को तौला जा सकता है कि वह बहुत बड़े पद है, क्योंकि पद के सिक्के नापे जा सकते हैं। मैंने कहा, तुमने कैसे पता लगाया कि बहुत बड़े संन्यासी हैं? उसने कहाः पता, खुद जयपुर महाराज उनके चरण छूते हैं!
तो मैंने उससे कहा कि इसे ठीक से समझ लो? जयपुर महाराज बड़े हैं, वही मापदंड, अगर जयपुर महाराज उनके चरण न छूते हों, संन्यासी के, संन्यासी छोटे हो जाएंगे। जयपुर महाराज क्यों बड़े हैं? क्योंकि धन उनके पास ज्यादा है! तो धन ही संन्यासी को भी नाप रहा है। धन की ही तौल पर तराजू पर संन्यासी भी नापा जा रहा है। अगर गरीब का बेटा संन्यासी हो जाए, कोई नहीं कहेगा त्यागी है, लोग पूछेंगे, था क्या, जिसको छोड़ा? था ही नहीं कुछ, कुछ काम नहीं करना चाहता था, काहिल है, सुस्त है, अनएंप्लाएड था, बेकार था, संन्यासी हो गया था। लेकिन अमीर का बेटा संन्यासी हो जाए, लोग कहते हैं, महान त्याग किया। इसलिए अगर जैनों के, बौद्धों के ग्रंथ पढ़ें, तो उनमें लिखा हुआ मिलेगा, इतने घोड़े थे महावीर के पास, इतने हाथी थे, इतने रत्न थे, इतने रथ थे, इतना यह था, इतना यह था, इतना लंबा सिलसिला बताते हैं वे सब होने का। क्यों? क्योंकि उसी से नापा जाएगा कि महावीर कितने बड़े त्यागी थे। और तो कोई रास्ता नहीं त्याग का।
कहानी बहुत अदभुत है महावीर की, कहानी यह है कि महावीर का पहले गर्भ
एक ब्राह्मण के घर में हुआ, एक गरीब ब्राह्मणी के पेट में हुआ है। कहानी

बड़ी अर्थपूर्ण है। देवताओं ने कहाः ऐसा कहीं हुआ है कि तीर्थंकर गरीब के घर में पैदा हो। और अगर गरीब के घर में पैदा होगा, तो लोग पहचान ही नहीं सकेंगे। तो देवताओं ने गरीब ब्राह्मणी के पेट से निकाल कर महावीर को, राजा की पत्नी के पेट में रख दिया। और राजा की पत्नी के पेट के गर्भ को निकाल कर ब्राह्मणी के पेट में रख दिया। देवताओं ने बड़ा अच्छा काम किया, नहीं तो महावीर को कभी कोई पहचान नहीं सकता था कि कितने बड़े त्यागी हैं। कितने ही बड़े त्यागी होते, लेकिन पहचानना मुश्किल हो जाता, क्योंकि तौलना मुश्किल हो जाता। रुपये से हम तौलते हैं त्याग को भी।
और ये जो लोग निरंतर भौतिकवाद को गाली देते हैं, निरंतर, जब कोई आदमी कहता है, मैटीरियलिस्ट, तो ऐसा लगता है कि जैसे बड़ी भारी निंदा कर रहा है वह। लेकिन आपने कभी सोचा, हर आदमी मैटीरियलिस्ट है। हर आदमी। महावीर को भी भोजन करना पड़ेगा और बुद्ध को भी। और भोजन मैटर है कोई आत्मा नहीं है। महावीर को भी सांस लेनी पड़ेगी, कृष्ण को भी, मुझको भी सांस लेनी पड़ेगी, आपको भी, और सांस, सांस मैटर है कोई आत्मा नहीं है। जीना ही मैटर के भीतर है, जीना ही पदार्थ के बीच है, जीवन ही पदार्थ के बीच है। तो पदार्थ से भाग कर जाओगे कहां? कैसे जाओगे?
और सच तो यह है कि पदार्थ और जिसे हम परमात्मा कहते हैं, ये दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज के दो नाम हैं। कहीं ऐसा नहीं है कि पदार्थ कुछ अलग है और परमात्मा कुछ अलग है। पदार्थ जो दिखाई पड़ता है, वह परमात्मा है और परमात्मा, जो पदार्थ नहीं दिखाई पड़ता है, वह पदार्थ है। दि विजिवल पॉट, वह जो दिखाई पड़ता है परमात्मा, उसका नाम पदार्थ है। दि इनविजिवल मैटर, जो पदार्थ नहीं दिखाई पड़ता, उसका नाम परमात्मा है। परमात्मा ही सघन हो कर पदार्थ है और पदार्थ ही विरल हो कर परमात्मा है। कोई परमात्मा और पदार्थ दो चीजें नहीं है। दोनों एक ही चीज के दो रूप हैं।
इसलिए यह सब पागलपन की बातें हैं कि कोई कहे कि फलां मैटीरियलिस्ट है
और हम स्प्रिचुअलिस्ट हैं। हम अध्यात्मवादी हैं और फलां भौतिकवादी है। इस तरह की बातें सिर्फ अज्ञान के सबूत हैं और कुछ भी नहीं। हां, यह हो सकता है कि एक आदमी पदार्थ पर ही रुक जाए और आगे खोज न करें कि पदार्थ के और सूक्ष्मतम लोक भी हैं जहां परमात्मा की... आदमी पदार्थ पर रुक सकता है। लेकिन जो पदार्थ को ही नहीं पकड़ पाता, समझ पाता, वह और आगे कैसे बढ़ पाएगा? वह सिर्फ गालियां दे सकता है। गालियां देने से तृप्ति मिलती है और कुछ भी नहीं होता।
एक पश्चिम का विचारक है, वह हिंदुस्तान आया हुआ था। एक-दो छोटी सी घटनाएं, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। वह हिंदुस्तान आया, वह दिल्ली उतरा। वह जैसे ही दिल्ली के स्टेशन पर उतरा, एक सरदार जी ने उसका हाथ पकड़ लिया। जॉर्ज माइक्स उसका नाम है। सरदार ने हाथ पकड़ लिया और जल्दी से बिना उसके कुछ कहे वह सरदार बताने लगा, भविष्य और अतीत और जन्म और मृत्यु और रेखाओं का अर्थ। उस जॉर्ज माइक्स ने कहाः क्षमा करिए, मैं जानना ही नहीं चाहता हूं। मैं जानना ही नहीं चाहता हूं, आप माफ करिए! मुझे भविष्य को जानने की कोई उत्सुकता नहीं है, मैं अभी जीना चाहता हूं, इसी क्षण। जब भविष्य आएगा, तब फिर जीऊंगा। अभी तो भविष्य आया नहीं है, जी सकता नहीं हूं, इसलिए उसकी फिजूल बकवास में समय नहीं खोना मुझे, मैं अभी जीना चाहता हूं।
उस सरदार ने कहाः मैटीरियलिस्ट हो तुम, अभी जीना चाहते हो। और जो भविष्य की रेखा पूछ रहा है कि कल क्या होगा, परसों क्या होगा, कब मरूंगा, ये अध्यात्मवादी हैं। सच बात यह है कि ये उस भौतिकवादी से ज्यादा भौतिकवादी हैं। वह बेचारा आज की फिकर कर रहा है, यह कल की भी फिक्र कर रहा है, इसकी एंग्झाइटी, इसकी चिंता, इसका लोभ कल तक फैला हुआ है। लेकिन वे सरदार जी बताए ही चले गए। उस आदमी ने कहाः माफ करिए, मैं सिर्फ शिष्टता वश अपना हाथ आपसे नहीं छुड़ा रहा हूं, मैं जानना ही नहीं चाहता। लेकिन सरदार ने कहा, मेरे दो रुपये फीस हो गई है। इतनी देर मैंने बताया, दो रुपये मेरी फीस दे दीजिए। उस आदमी ने दो रुपया फीस दे दी। सरदार फिर और आगे बढ़ने लगा। उस आदमी ने कहाः माफ करिए! आपकी फीस फिर हो जाएगी, वह मैं जानना ही नहीं चाहता।

सरदार ने क्या कहाः पता है? कहा कि तुम भौतिकवादी हो निरे, दो रुपये के पीछे भविष्य भी नहीं जानना चाहते!
जॉर्ज माइक्स ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि भौतिकवादी कौन था, मैं समझ ही नहीं पाया, मैं या वह आदमी, जो बता रहा था। वह दो रुपया खींचने के लिए मुझे जबरदस्ती मुझे बताए चला जा रहा। और जब मैं इनकार करता हूं, दो रुपये दे चुका हूं और आगे दो रुपये देने से इनकार करता हूं, तो मुझे गाली देता है कि तुम भौतिकवादी हो पश्चिम के लोग। दो रुपये के पीछे मरे जा रहे हो। यह हमारी चित्तदशा अध्यात्मवादी है? हम बहुत भौतिकवाद के भी नीचे तल पर खड़े हैं। लेकिन अपने मन को फुलाने के लिए अध्यात्म की बातें किए चले जा रहे हैं। और क्या करते हैं अध्यात्म की बातें?
एक दूसरी घटना मैंने पढ़ा, तो मैं हैरान हुआ। एक विचारक एक किताब पढ़ा। स्वामी शिवानंद ने एक किताब लिखी ऋषिकेश के। अब तो वे चल बसे, स्वर्गीय हो गए। उस किताब में उन्होंने लिखा है कि जो ओम का जाप करे निरंतर, सच्चे भाव से, भावना से ओम का पाठ करे, उसको कभी कोई बीमारी नहीं छू सकती, वह सदा स्वस्थ रहेगा। यहां तक की अगर ओम का पूरे भाव से पाठ किया जाए, तो उस ओम का पाठ करने वाले को मृत्यु नहीं आती, वह अमर हो जाता है।
एक डाक्टर ने यह पढ़ा। और उसने यह भी पढ़ा कि शिवानंद जी पहले खुद डाक्टर थे, संन्यासी होने के पहले। तो उसने कहाः एक डाक्टर जब ऐसी बात लिखता है, तो किसी आधार पर लिखता होगा। वह आदमी यूरोप से हिंदुस्तान आया। वह भागा हुआ ऋषिकेश गया। और उसने कहा कि मैं जा कर पहले उनके दर्शन कर लूं। और यह ओम का पाठ सीख लूं, क्योंकि अगर ओम के द्वारा सब बीमारियां दूर हो सकती हैं, तो ये मेडिकल कालेज और ये मेडिकल का इतना जाल, और इतनी दवाइयां, ये सब फिजूल हो जाएं। इतनी सस्ती तरकीब मिल जाए, तब तो बहुत अच्छा है।
वह गया, उसने जा कर स्वामी जी के दफ्तर में जा कर क्लर्क को पूछा, उनके सेकेट्री को पूछा कि मैं स्वामी जी के दर्शन करना चाहता हूं, इसी वक्त। उनके सेकेट्री ने कहाः स्वामी जी अभी नहीं मिल सकते। उसने कहा, क्यों? उसने कहा, वे बीमार पड़े हैं और डाक्टर उनकी परीक्षा कर रहा है।
उसने कहाः यह कभी हो ही नहीं सकता कि स्वामी जी बीमार पड़ जाएं! उन्होंने तो लिखा है किताब में कि ओम के पाठ करने से कोई बीमारी कभी नहीं आती! वे तो मर भी नहीं सकते! क्योंकि उसमें लिखा है कि ओम का पाठ करने से मृत्यु भी पास नहीं आती, आदमी अमर हो जाता है! तो उस सेकेट्री ने क्या कहा, पता है? उसने कहाः तुम सब भौतिकवादी हो, तुम समझे नहीं उनका मतलब। वे आत्मा की अमरता की और आत्मा के स्वास्थ्य की बातें कर रहे हैं, शरीर की नहीं। अब आत्मा कभी मरती है? अगर मरती हो, तो फिर ओम का पाठ करने से अमर हो सकती है। आत्मा कभी बीमार पड़ती है? अगर बीमार पड़ती हो, तो ओम के पाठ करने से स्वस्थ हो सकती है। वह बेचारा हैरान हो गया! उसने कहा कि यह तो बात शरीर की होनी चाहिए, शरीर ही बीमार पड़ता है, शरीर ही मरता है। लेकिन उस सेकेट्री ने कहाः आप अजीब से आदमी आ गए यहां, हजारों आदमी आते हैं और हजारों आदमी स्वामी जी की किताब पड़ते हैं, इस तरह के प्रश्न कोई भी नहीं उठाता। हम कभी इस तरह के प्रश्न उठाएंगे नहीं। अगर हमको स्वामी जी बीमार भी मिल जाएं, मरे हुए भी मिल जाएं, तो हम कहेंगे, स्वामी जी लीला दिखा रहे हैं, स्वामी जी कहीं मर सकते हैं। लीला कर रहे हैं, नाटक कर रहे हैं, भक्तों की परीक्षा ले रहे हैं।
अरविंद मर चुके हैं, लेकिन अरविंद आश्रम में अभी भी यह माना जा रहा है
कि वे जिंदा हैं, अभी मरे नहीं हैं। अरविंद आश्रम में कोई मानने को राजी नहीं की अरविंद मर गए हैं। क्योंकि अरविंद ने अपनी किताबों में लिखा है कि मैंने फिजिकल इम्मार्टललिटी को पा लिया, मैं शारीरिक रूप से अमर हो गया हूं। और मेरे योग का जो पालन करेगा, वह शारीरिक रूप से अमर हो जाएगा। वह कैसे मर सकता है। अरविंद के आश्रम में अभी भी लोग यही मानते हैं कि वे जिंदा हैं, वे मरे नहीं, सिर्फ अदृश्य हो गए हैं। बड़े अदभुत लोग हैं। बड़े अध्यात्मवादी लोग हैं। और वहां बैठ कर जो अरविंद का योग साध रहे हैं वह किसलिए साध रहे हैं? कि वे भी फिजिकली इम्मार्टल हो जाएं, उनका शरीर भी कभी न मरे। ये बड़ी आध्यात्मिक बात कर रहे हैं आप कि शरीर कभी न मरे?

आध्यात्मिक व्यक्ति वह है, जो जीवन और मृत्यु को बराबर मानेगा।
आध्यात्मिक व्यक्ति वह है, जो पदार्थ और परमात्मा को बराबर मानेगा।
आध्यात्मिक व्यक्ति वह है, जिसे अंधेरा और प्रकाश समान हो जाता है। आध्यात्मिक व्यक्ति वह है, जिसे सुख और दुख एक ही हो जाते हैं। लेकिन यह तो हमारी स्थिति नहीं है। हम निपट भौतिकवादी हैं। लेकिन अध्यात्म की खोल ओढ़े हुए हैं। वह झूठी खोल है, वह झूठा आदमी अध्यात्म का ऊपर बैठा है और भीतर निपट भौतिकवादी आदमी बैठा है। यह सब का सब जानना, विचारना, खोजना जरूरी है ताकि भारत की सच्ची प्रतिभा निखर सके और प्रकट हो सके। भारत की प्रतिभा के रुकावट में यह सारे कारण हैं।
यह थोड़े से प्रश्नों के आधार पर मैंने कुछ बात कही। कुछ और प्रश्न रह
गए हैं, कल संध्या उनकी बात करूंगा। कल सुबह अंतिम सूत्र पर बात करूंगा कि भारत की समस्याएं और उसकी प्रतिभा को रोकने में कहां अटकाव है, कहां पत्थर है, कहां दीवाल है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत की खोज
पांचवां प्रवचन

आत्मघाती आदर्शवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीते दो दिनों में भारत की समस्याएं और हमारी प्रतिभा, इस संबंध में कुछ बातें मैंने कहीं। पहले दिन पहले सूत्र पर मैंने यह कहा कि भारत की प्रतिभा अविकसित रह गई है, पलायन, एस्केपिज्म के कारण।
जीवन से बचना और भागना हमने सीखा है, जीवन को जीना नहीं। और जो भागते हैं, वे कभी भी जीवन की समस्याओं को हल नहीं कर सकते।
भागना कोई हल नहीं है। समस्याओं से पीठ फेर लेना और आंख बंद कर लेना कोई समाधान नहीं है। समस्याओं को ही इनकार कर देना, झूठा कह देना, माया कह देना, समस्याओं से आंख बंद कर लेना तो है, लेकिन इस भांति समस्याओं से मुक्ति नहीं मिलती। मन को राहत मिलती है कि समस्याएं हैं ही नहीं, लेकिन समस्याएं जीवित रहती हैं, वे हैं। और समस्याएं जितना नुकसान पहुंचा सकती हैं वे पहुंचाती हैं। और जो समस्या बिना हल किए हुए रह जाती है, वह मस्तिष्क में घाव और बीमारी की गांठ बन जाती है, कांप्लेक्स बन जाती है। और भारत ने अपने इतिहास में समस्याएं इतनी इकट्ठी कर ली हैं कि आदमी उनके नीचे दब गया है, जैसे पहाड़ के नीचे दब गया हो।
दूसरे दिन मैंने कहा कि भारत की प्रतिभा के विकास में दूसरी बात बाधा
बन गई है और वह है परंपरावादी, ट्रेडिशनलिज्म। परंपरावादी चित्त हमेशा पीछे की तरफ देखता है, आगे की तरफ उसकी आंखें नहीं होती हैं। समस्याएं आगे से आती हैं और परंपरावादी चित्त के समाधान पीछे से आते हैं। समस्याएं सदा आगे से आती हैं और समाधान सदा पीछे से आते हैं। उनका कोई तालमेल नहीं बैठ पाता। उसमें कोई संबंध नहीं हो पाता। समाधान अलग इकट्ठे होते चले जाते हैं, समस्याएं अलग इकट्ठी होती चली जाती हैं। और एक चमत्कार घटित होता है-- समस्याओं के बोझ से भी हम दब जाते हैं और समाधानों के बोझ से भी। भारत की प्रतिभा को समस्याएं भी नुकसान पहुंचा रही हैं और भारत के तोते की तरह सीखे गए समाधान भी नुकसान पहुंचा रहे हैं। यदि समाधान पकड़ लिए जाएं, और समस्याओं से उनका कोई मेल न होता हो, तो वे समाधान नये समाधान खोजने में बाधा बनते हैं। और हमें यह भ्रम पैदा होता है कि हम तो समाधान जानते हैं। भारत को ज्ञानी होने का भ्रम पैदा हो गया है और इसलिए भारत ज्ञानी नहीं हो सकता है, नहीं हो पा रहा है। हम अपने अज्ञान में ठहर गए हैं, क्योंकि ज्ञानी होने का भ्रम पैदा हो गया है।
एक छोटी सी कहानी से मैं यह बात साफ करूं और फिर तीसरे सूत्र पर आपसे बात करूं।
एक छोटी कहानी आपने सुनी होगी। सुना होगा, बहुत पुरानी कहानी है। सुना होगा कि एक राजमहल के चूहों ने बैठक की और विचार किया कि हम बहुत परेशान हैं, बल्लियां सदा से हमें परेशान कर रही हैं, हम क्या करें बचाव का उपाय? तो उन चूहों के बूढ़े चूहों ने कहाः एक ही रास्ता है कि बिल्ली के गले में घंटी बांध दी जाए। लेकिन घंटी कोई कैसे बांधे? घंटी कौन बांधे? फिर हजारों साल बीत गए इस बात को। जब भी बिल्ली ने चूहों को परेशान किया, चूहों ने सभा की और फिर वही समाधान बूढ़ों ने दिया कि घंटी बांध दो। लेकिन फिर चूहों ने कहा, घंटी कौन बांधे? घंटी कैसे बांधी जाए? समाधान तो मालूम है कि बिल्ली के गले में घंटी बंध जाए, घंटी बजती रहे तो चूहे सावधान हो जाएं और बिल्ली हमला न कर पाए। लेकिन यह समाधान समाधान ही है, बिल्ली चूहों को खाती ही चली जाती है। और यह समाधान पूरा हो नहीं पाता। और चूहों के पुराणों में लिखा है कि यह तो पहले से ही समाधान गुरुओं ने दिया हुआ है, ऋषि-मुनियों ने। लेकिन समाधान पूरा नहीं हो सकता।
फिर मैंने सुना है कि बीसवीं सदी में फिर एक महल में यही मुसीबत? यह मुसीबत सदा रहेगी, जब तक चूहे हैं, बिल्ली है, मुसीबत रहेगी। फिर चूहे इकट्ठे हुए और उन्होंने कहाः क्या करें, कैसे बिल्ली से बचें? फिर बूढ़े चूहों ने कहाः समाधान तो हमारे ग्रंथों में लिखा हुआ है। ऋषि-मुनियों ने

बताया हुआ है कि बिल्ली के गले में घंटी बांध दो। लेकिन फिर सवाल यह है कि घंटी कौन बांधे? घंटी कैसे बांधे?
दो जवान चूहों ने कहाः घंटी कल सुबह हम बांध देंगे। बूढ़े हंसने लगे और उन्होंने कहाः नासमझ हो, बच्चे हो। घंटी कभी बांधी नहीं गई, बांधोगे कैसे? लेकिन दूसरे दिन सुबह उन चूहों ने घंटी बांध दी। और बूढ़े बहुत हैरान हुए! यह तो कभी न हुआ था। और उन जवान चूहों से पूछने लगे, तुमने घंटी बांधी कैसे?
उन जवान चूहों ने कहाः आपने समाधान पकड़ लिया था। और यह बात भी पकड़ ली
थी कि यह हो नहीं सकता। और जो नहीं हो सकता, उसको पकड़ा था और नहीं हो सकता, यह भी पकड़ा था। इसलिए सोचने के आगे द्वार बंद हो गए। यह तो बहुत आसान बात थी। उन दो जवान चूहों का एक केमिस्ट की दुकान में आना-जाना था। वे नींद की गोली निकाल लाए और बिल्ली के दूध में गोली डाल दी और घंटी बांध दी। बिल्ली सो गई, बेहोश हो गई और घंटी बांध दी गई। लेकिन हजारों साल से बूढ़े चूहे यही कह रहे थे कि समाधान यही है, और यह हो नहीं सकता। दोनों बातें पकड़े हुए थे। सोचना मुश्किल हो गया था आगे।
भारत के मन में भी समस्याएं पुरातन हैं, समाधान भी पुरातन हैं। और करीब-करीब सब समाधान ऐसे हैं कि उनके साथ यह भी जुड़ा है कि यह हो नहीं सकता। हिंसा है, अहिंसा समाधान है। और हम सब जानते हैं, अहिंसा हो नहीं सकती। गरीबी समस्या है, अपरिग्रह समाधान है। कि धन का त्याग कर दो, और यह भी हम जानते हैं कि यह हो नहीं सकता। समाधान है, वह भी हम जानते हैं, नहीं हो सकता, यह भी हम जानते हैं। और इन सबको पकड़े हुए बैठे हैं। समस्याएं खाए चली जाती हैं। समाधान दोहराए चले जाते हैं। नहीं हो सकता है, यह भी जाने चले जाते हैं। प्रतिभा के लिए नये उपाय, नये आयाम, नये द्वार तोड़ने का मार्ग नहीं रह जाता।
तीसरे सूत्र में आपसे मैं कहना चाहता हूं, जो समाज भी आदर्शवादी होगा,
वह समाज सड़ जाएगा, मर जाएगा, वह समाज विकसित नहीं हो सकता। यथार्थवादी समाज होना चाहिए। प्रतिभा का विकास यथार्थवाद के मार्ग से तो होता है, आदर्शवाद के मार्ग से नहीं होता। वह जो आइडियलिस्ट है, वह बातें तो आकाश की करता है और समस्याएं जमीन की हैं। और उसकी बातें बहुत अच्छी लगती हैं। लेकिन वे आकाश की हैं। और समाधान चाहिए पृथ्वी पर, और पृथ्वी से उसका कोई संबंध नहीं है।
भारत अच्छे लोगों के चक्कर में है और अच्छी बातों के चक्कर में है। और अच्छे लोगों का चक्कर उतना ही खतरनाक है--जैसे किसी आदमी के हाथ में सोने की जंजीरें डाल दी जाएं। जंजीरें तो खतरनाक होती हैं, लेकिन सोने की जंजीरें और खतरनाक होती हैं। क्योंकि वे जंजीरें भी होती हैं और सोने की वजह से उनको छोड़ने की हिम्मत भी जुटानी मुश्किल हो जाती है। भारत के चित्त पर जो जंजीरें हैं, वे जंजीरें भी हैं और साथ सोने की हैं, अच्छी-अच्छी बातों की हैं। संतों की हैं, साधु-संन्यासियों की हैं। उनको छोड़ना भी मुश्किल है। और वे जंजीरें भी हैं और वे चित्त को पकड़े हैं, वे चित्त को विकसित भी नहीं होने देती। वे चित्त को नये ढंग से सोचने की हिम्मत, नये ढंग से सोचने का साहस भी नहीं जुटाने देती।
आदर्शवाद का क्या अर्थ होता है?
आदर्शवाद का अर्थ होता हैः जो है, वह महत्वपूर्ण नहीं है; जो होना चाहिए, वह महत्वपूर्ण है। और जो है, वही वस्तुतः महत्वपूर्ण है, जो होना चाहिए उसका कोई भी मूल्य नहीं है, क्योंकि वह नहीं है। जो होना चाहिए वह है नहीं, उसका महत्वपूर्ण है आदर्शवादी चित्त में। और जो है उसका कोई मूल्य नहीं है। और जो है, उससे ही सारे मार्ग निकल सकते हैं।
बीज वृक्ष हो सकता है, लेकिन बीज वृक्ष है नहीं। बीज है बीज--वृक्ष होने की संभावना है। संभावना हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है। लेकिन बीज है, होने न होने का सवाल नहीं है। और अगर बीज कहीं वृक्ष होने के सपनों में पड़ जाए, सपने देखने लगे और सपने में मानने लगे कि मैं वृक्ष हो गया हूं, तो बीज बीज रह जाएगा और वृक्ष कभी नहीं हो पाएगा। बीज को अगर वृक्ष भी होना है, तो अपने बीज होने को ही समझना पड़ेगा। उसके बीज होने से ही वह मार्ग

निकलेगा, जो वृक्ष तक पहुंचता है। लेकिन बीज एक सपना देखने लगे कि मैं वृक्ष हो गया हूं और वृक्ष होने की कल्पना में खो जाए, दिव्य स्वप्न में खो जाए, तो बीज बीज ही बना रहेगा, वृक्ष सपना होगा और वृक्ष वह कभी भी नहीं हो पाएगा।
भारत, मनुष्य जो है उसे भुलाने की कोशिश में लगा है और जो नहीं है, और
जो होना चाहिए, उसकी तस्वीर मनुष्यों के चित्त पर, उसका ढांचा, उसकी आकृति को खोदने में लगा है। हम एक-एक आदमी को समझा रहे हैं कि तुम स्वयं परमात्मा हो। सचाई यह है कि हर आदमी परमात्मा नहीं है, सिर्फ पशु है। आदमी पशु है, यह तथ्य है, आदमी परमात्मा हो सकता है, यह संभावना है। लेकिन हम समझा रहे हैं, आदमी परमात्मा है। साधु-संन्यासियों के पास पापी बैठ कर बहुत सिर हिलाते हैं और कहते हैं, धन्य महाराज, बहुत ठीक आप कह रहे हैं। क्योंकि वे साधु- संन्यासी समझाते हैं क्या? वे समझाते हैं, तुम परमात्मा हो। तुम्हारे भीतर स्वयं सच्चिदानंद ब्रह्म का निवास है, तुम वही हो। और पापी बड़ा प्रसन्न होता है। अपने को भूलने में सुविधा मिल जाती है। वह जो है, उससे बचने का रास्ता मिल जाता है। सपने में वह ब्रह्म हो जाता है और वस्तुतः वह पशु बना रहता है। और उसके पशु होने में और ब्रह्म होने में एक दीवाल खड़ी हो जाती है। होता है पशु, उसे छिपा लेता है। जो नहीं होता, उसका अभिनय करने लगता है। और इस तरह भारत का पूरा व्यक्तित्व स्प्लिट पर्सनैलिटी है, पूरा व्यक्तित्व खंड-खंड हो गया। दो बड़े खंडों में टूट गया--जो हम नहीं हैं, वह हम अपने को मानते हैं और जो हम हैं, वह हम अपने को जानना भी नहीं चाहते हैं, मानने की तो बात दूर है। हम उस तरफ आंख भी नहीं उठाना चाहते हैं। बड़ी तरकीब है यह।
आदमी पशु है, यह भारत में आज तक स्वीकृत नहीं हो सका। और आदमी पशु है। पशुओं की बड़ी जमात का ही एक हिस्सा है। और जब तक हम आदमी की इस पशुता के तथ्य को, यह रियलिटी है, यथार्थ है, इसको स्वीकार नहीं करते, तब तक इसके रूपांतरण का भी कोई मार्ग नहीं मिल सकता है।
हमने क्या रास्ता निकाला है? हमने पशुता को इनकार ही कर दिया है, हमने परमात्मा होने को स्वीकार ही कर लिया। हमारे शास्त्र घोषणा कर रहे हैं, आदमी परमात्मा है। और वह जो हम हैं, इस परमात्मा के शोरगुल में उसको छिपाए बैठे हैं। ऊपर बातें चलती जाती हैं आदर्श की, भीतर वह जो असली आदमी है, वह मौजूद है। और तब एक बड़ा तनाव पैदा होता है, बड़ी एंग्जाइटी, बड़ी चिंता पैदा होती है कि यह क्या है? और एक बड़ा दुख पैदा होता है, बहुत खिंचाव पैदा होता है कि यह क्या है? हम हैं कुछ, और होने के कुछ और भ्रम में पड़े हुए हैं। और जो हम नहीं हैं, उसको दिखाने का अभिनय कर रहे हैं, उसे दिखाने की पूरी चेष्टा कर रहे हैं। और जो हम हैं, उसे छिपाने की चेष्टा कर रहे हैं। भारत की प्रतिभा के विकास में एक जिच पैदा हो गई है, एक खाई पैदा हो गई है। और वह खाई है यथार्थ और आदर्श के बीच की खाई। और वह खाई इतनी बड़ी है कि हमने एक तरकीब से उसे पूरा कर लिया, यथार्थ को हमने भुला ही दिया है, और आदर्श को हमने स्वीकार कर लिया है कि हम ये हैं। बीज ने मान लिया है कि वह वृक्ष है और वृक्ष होने की यात्रा बंद हो गई है।
मनुष्य की पशुता को स्वीकार करने में भी बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि हमारे अहंकार को चोट लगती है। जब डार्विन ने पहली दफा यह बात कही और डार्विन ने मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान के लिए एक बहुत बड़ा सूत्र स्थापित किया कि आदमी पशुओं से आता है। तो सारी दुनिया के धार्मिक लोग डार्विन के विरोध में खड़े हो गए, उन्होंने कहा, यह क्या बात कर रहे हो? आदमी और पशुओं से! आदमी तो परमात्मा से पैदा हुआ। आदमी तो परमात्मा है। आदमी तो परमात्मा का पुत्र है। पशुओं का पुत्र! झूठ है यह बात। यह हम स्वीकार नहीं करते। लेकिन क्यों? क्योंकि पशुओं की संतति होने में अहंकार को चोट लगती है। वह जो आदमी ने अपनी ही कल्पना में अपने को परमात्मा मान रखा है, वह खत्म हो जाता है। लेकिन तथ्य यही है।
क्या है हमारे भीतर जो पशुओं के भीतर नहीं है?
वह जो पशुओं के भीतर है, वही हममें नये-नये रूपों में प्रकट हुआ है। वह
जो पशुओं के भीतर है, उसीशृंखला की हम आगे की एक कड़ी हैं। लेकिन, आदमी

बेईमान है और उसने अपने को धोखा दे रखा है। और जो चीजें पाशविक हैं, उनको भी वह बहुत ऊंचे सिद्धांतों के नाम पर सोने-चांदी का मुल्ममा चढ़ा कर पेश करता है। अगर मेरी पत्नी किसी की तरफ मुस्कुरा कर देख ले, तो मेरे दिल में आग लग जाती है, छुरा निकल आएगा बाहर। प्रेम वगैरह सब विलीन हो जाएगा। वह वही की वही बात है। एक पशु की मादा अगर दूसरे पशु की तरफ देख ले, तो खूंखार पशु फौरन दुश्मन पर टूट पड़ेगा। वह उसके बरदाश्त के बाहर है। लेकिन हमने बड़े अच्छे सिद्धांत बनाए हुए हैं, कि यह पत्नी धर्म है, यह पति धर्म है, यह एक पतिव्रता है, यह प्रेम एक साथ ही हो सकता है। और वह जो पशुता की वृत्ति है कि प्रेम भी पजेसन, प्रेम भी मालकियत चाहता है।
प्रेम भी मालिक बनने का ही एक ढंग है। वह जो पशु की प्रवृत्ति है, वह काम कर रही है। लेकिन अच्छे सिद्धांतों में हम उसको घेर रहे हैं। पशु अपनी जमीन पर अगर दूसरे पशु को आ जाना बरदाश्त नहीं कर सकता, वह जिस जमीन पर रहता है, जिस झाड़ के नीचे रहता है, उसके नीचे दूसरे को ठहरना बरदाश्त नहीं कर सकता। हार जाए तो ठहर सकता है, जीत जाए तो हटा देगा दुश्मन को। लेकिन शेयर नहीं कर सकता, बांट नहीं सकता। व्यक्तिगत संपत्ति उसी पशुता का हिस्सा है। मेरी जमीन, मेरा मकान, मेरा घेरा, मेरा मकान की बाउंडी की दीवाल, इस तरफ मत आना। एक इंच जमीन छोड़ना मुश्किल है। और हम आदमी हैं, और हम परमात्मा हैं, और भीतर वही पशु बैठा है, जो कहता है, मेरी जमीन के घेरे में मत घुसना। लेकिन पशु बेचारे सीधे साफ हैं, वे जैसे हैं, वैसे हैं। उन्होंने कोई फिलासफीज खड़ी करके धोखे की आड़ नहीं ली।
मैंने सुना है कि एक आदमी और उसकी पत्नी ने यह तय किया हुआ था कि दोनों में से जो पहले मर जाए, वह मरने के बाद जो जीवित है, उससे संपर्क स्थापित करने की कोशिश करे और उस जीवन के संबंध में बताए, जहां वह पहुंच गया है। पति को मरे हुए एक वर्ष हो गया। पत्नी रोज राह देखती रही कि पति संपर्क साधेगा, अब साधेगा, लेकिन नहीं कुछ पता नहीं चला। कोई उपाय भी नहीं था सिवाय प्रतीक्षा के। लेकिन एक सांझ पत्नी अखबार पढ़ रही थी, अचानक उसे पति की आवाज सुनाई पड़ी। और पति ने कहा, अरे, सुनती हो? क्या कर रही हो? क्या खबर है आज की? और पत्नी तो हैरान हो गई! वह ऐसे पूछ रहा है जैसे अभी दस मिनट पहले किनारे के चौरस्ते पर चाय पीने गया हो, लौट के आया हो। लेकिन एक वर्ष हो चुका उसको मरे हुए। पत्नी ने चौंक कर देखा, वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता। उसने खुशी से कहा, अच्छा तो तुम हो, कहां हो? मजे में तो हो?
उस आवाज ने कहा, बहुत मजे में हूं और देखती हो, पास के खेत में जो गाय
चर रही है, उस गाय की चमड़ी बड़ी मुलायम है, बहुत सुंदर है। उस पत्नी ने कहा, और सुनाओ, उस जीवन के बाबत? उसे बड़ी हैरानी हुई कि गाय के बाबत बता रहा है! और बताओ उस जीवन के बाबत? उस आदमी ने कहा, इतनी सुंदर गाय मैंने नहीं देखी, बहुत सुंदर है, बहुत आकर्षित करती है। उसकी पत्नी ने कहा, छोड़ो उस मूर्ख गाय को, उससे क्या लेना-देना है। सवाल यह है, मैं जानना चाहती हूं उस जीवन के संबंध में कि तुम जहां हो वहां के संबंध में कुछ बताओ? उस आदमी ने कहा, शायद में बताना भूल गया कि मैं सांड हो गया हूं और सिवाय गाय के मुझे और कुछ भी नहीं सूझ रहा है।
लेकिन एक पशु सीधा है, साफ है। वह कहता है, मैं सांड हो गया हूं, मुझे गाय के सिवाय कुछ भी नहीं सूझ रहा है। पुरुष को स्त्री के सिवाय कुछ भी नहीं सूझता; स्त्री को पुरुष के सिवाय कुछ भी नहीं सूझता। लेकिन, हम सीधे और साफ भी नहीं हैं। हम न मालूम कितनी कल्पनाओं में और न मालूम कितने आदर्शों में तथ्यों को छिपाएंगे, छिपाएंगे और ऐसा कर देंगे कि पहचानना मुश्किल हो जाए कि क्या है! पहचानना मुश्किल हो जाए कि क्या है! चक्र के भीतर चक्र और डब्बे के भीतर डब्बों को छिपाते चले जाएंगे और जो छिपाएंगे वह वही पशुता है। उस पशुता को छिपा कर आदर्शों की खोल में, आदर्शों के वस्त्रों में हम छिपा तो सकते हैं, लेकिन मिटा नहीं सकते। छिपाना मिटाने का उपाय नहीं है। वह मौजूद रहेगी, नये-नये रूपों में प्रकट होती रहेगी, नई-नई बातों में प्रकट होती रहेगी, अच्छे-अच्छे शब्दों में जाहिर होती रहेगी, नये-नये रूप लेगी।

हिंसा भीतर है, सेक्स भीतर है; ब्रह्मचर्य की आड़ में उसे छिपाया जा सकता है। लेकिन वह नये रूपों में प्रकट होना शुरू हो जाएगा, वह नये सपनों में प्रकट होने लगेगा, वह नये मार्गों से प्रकट होने लगेगा। और तब कठिनाई हो जाएगी।
ब्रह्मचर्य संभव है, लेकिन सेक्स को छिपा कर नहीं, सेक्स को जान कर, सेक्स को पहचान कर, उसके अतिक्रमण से। अहिंसा संभव है, लेकिन हिंसा को छिपा कर नहीं, हिंसा को जान कर, हिंसा को पहचान कर। परमात्मा होना संभव है, लेकिन पशु को वस्त्रों में ढांक कर नहीं, पशु को पहचान कर, उघाड़ कर, पशु से मुक्त होकर।
लेकिन हम उलटा ही काम कर रहे हैं। हम कर रहे हैं छिपाने का काम, और छिपाने को हमने बदलाहट का नाम दिया हुआ है।
छिपाना रूपांतरण नहीं है। और इस छिपाने में जितनी शक्ति लगती है, उससे बहुत कम शक्ति में क्रांति हो सकती है, रूपांतरण हो सकता है।
जीवन भर छिपाते हैं, छिपाते हैं, दबाते हैं। किसको दबाते हैं? किसको छिपाते हैं? अपने को ही! कौन दबाएगा? कौन छिपाएगा? हम हीं! हम हीं अपने को दबाएंगे, छिपाएंगे। यह संभव कैसे हो पाएगा? किसी न किसी कोने में हम जानते रहेंगे कि सत्य क्या है। फिर धीरे-धीरे हम उसे भी नहीं जानना चाहेंगे, दूसरे को भी धोखा देंगे और अंततः अपने को भी धोखा देंगे।
आदर्शवाद अंततः मनुष्य को सेल्फ डिसेप्शन, आत्मवंचना में ले जाता है। अपने को भी धोखा देना वह शुरू कर देता है। लेकिन आत्मवंचना के रास्ते इतने सूक्ष्म हैं कि अगर पहचान में न आएं तो जिंदगी, अनेक जिंदगियां भी बीत सकती हैं और वे पहचान में न आएं।
मैं एक संन्यासी के पास गया हुआ था। उन्होंने सब छोड़ दिया है। घर-द्वार छोड़ दिया है, मकान छोड़ दिया है, धन छोड़ दिया है, पत्नी-बच्चे छोड़ दिए हैं। वे कहते हैं, मैंने सब छोड़ दिया है। लेकिन नये रूपों में उन्होंने सब फिर बसा लिया है। बड़ा आश्रम बन गया है। और जब भी कोई जाए तो वे दिखाते हैं कि इस बिल्डिंग में एक लाख रुपया खर्च हुआ है, यह जमीन इतने सौ एकड़ है, इसके दाम इतने हैं। और उन्होंने सब छोड़ दिया है। यह तो आश्रम की बात कर रहे हैं वे। और यह आश्रम किसका है? यह आश्रम मेरा है।
मैं जब उनसे मिलने गया तो वे एक बड़े तख्त पर बैठे हुए थे। उनके तख्त के नीचे एक छोटा तख्त लगा हुआ था, उस तख्त पर एक दूसरे संन्यासी बैठे हुए थे। उस तख्त के भी नीचे जमीन पर और संन्यासी बैठे हुए थे। सबसे बड़े तख्त पर बैठे हुए संन्यासी, जो गुरु हैं, जिनका वह आश्रम है, जिन्होंने सब छोड़ दिया है, उन्होंने मुझसे कहा, आपको पता है, कि छोटे तख्त पर बैठे हुए सज्जन कौन है? मैंने कहाः मुझे पता करने की कोई जरूरत नहीं है; अपना ही पता हो जाए वही बहुत है। फिर भी आप चाहते हैं तो बता दें। उन्होंने कहाः आपको मालूम नहीं है, इसलिए ऐसा कह रहे हैं, यह जो आदमी बैठा हुआ है, यह साधारण आदमी नहीं है, यह हाईकोर्ट का जस्टिस था, इसने सब छोड़ दिया है। लेकिन बहुत विनम्र आदमी है। कभी मेरे साथ तख्त पर नहीं बैठता, हमेशा छोटे तख्त पर बैठता है। मैंने कहा, विनम्रता तो जाहिर है, छोटे तख्त से पता चल रही है। लेकिन आपको उनकी विनम्रता में जो मजा आ रहा है, वह क्या है? आपको बड़ा मजा आ रहा है कि यह आदमी बड़ा विनम्र है। विनम्रता आपके अहंकार को तृप्ति दे रही है। अगर यह आपके साथ तख्त पर बैठे तो तकलीफ होगी?
और मजा यह है कि यह आपसे छोटे तख्त पर बैठा है, लेकिन दूसरे संन्यासियों से ऊंचे तख्त पर बैठा है। और संन्यासी जमीन पर नीचे बैठे हुए हैं, और यह आपके मरने की राह देख रहा है कि जब आप मर जाओ तो यह बड़े तख्त पर बैठ जाएगा। नीचे वाला काम्पिटीटर छोटे तख्त पर आ जाए। और यह भी लोगों से कहे कि बहुत विनम्र आदमी है। जानते हो, यह कौन है? यह मिनिस्टर था! यह कोई साधारण आदमी नहीं है। और यह जो बन कर बैठा हुआ है, आंख बंद किए हुए बिल्कुल सीधा-सादा बन कर बैठा हुआ है। लेकिन बैठा तो छोटे तख्त पर है। छोटे तख्त के नीचे भी लोग हैं। हायरेरकी चल रही है, नीचे-ऊपर पद चल रहे हैं। बच्चों का खेल चल रहा है। और यह आदमी कहता है, मैं सब छोड़ कर आ गया, और यह आदमी भी कहता है, मैं सब छोड़ कर आ गया हूं। लेकिन क्या छोड़ कर आ गए? वह खेल, वह समाज के

अहंकार का खेल, वह जारी है। वह एक शक्ल में चलता था वहां। पड़ोस वाले का मकान छोटा था, अपना मकान बड़ा था, वह वहां चल रहा था। अब वह यहां चल रहा है कि पड़ोस वाला नीचे तख्त पर बैठा है, हम ऊंचे तख्त पर बैठे हैं। खेल जारी है। शक्ल बदल गई है, वह पशुता का खेल जारी है। लेकिन बदली हुई शक्ल में पहचानना और मुश्किल हो गया, और कठिन हो गया।

एक गांव में मैं गया, वहां एक यज्ञ था और उस यज्ञ में कोई साठ संन्यासी इकट्ठे हुए थे। यज्ञ करने वालों ने चाहा था कि साठों संन्यासी एक ही मंच पर एक साथ बैठें तो बड़ा सुखद होगा। लेकिन उस बड़ी मंच पर एक-एक संन्यासी ने बैठ कर ही व्याख्यान दिया, क्योंकि साठों एक साथ, एक ही तल पर बैठने को राजी नहीं हुए! किसी ने कहा कि मुझे सोने का सिंहासन चाहिए, मैं उसी पर बैठूंगा। मैं जगतगुरु हूं, मैं कोई छोटा-मोटा आदमी तो नहीं हूं! मैं फलां पीठ का शंकराचार्य हूं, मेरा चार इंच ऊंचा होना चाहिए तख्त! साठ आए थे, लेकिन कोई किसी से नीचे-ऊंचे बैठने को राजी नहीं था! तब एक ही उपाय था कि उस बड़ी मंच पर एक-एक बैठ कर बोलें। एक-एक बैठ कर ही बोला, वे साठ इकट्ठे नहीं बैठाए जा सके। इन्होंने सब छोड़ दिया है? लेकिन चार इंच तख्त नीचा हो कि ऊंचा, यह इनसे नहीं छूट पाया। बड़ी अदभुत बात है! छोटे-छोटे बच्चे खड़े हो जाते हैं कुर्सियों पर और अपने बाप से कहते हैं, हम आपसे बड़े हैं, देखते हैं, हम आपसे ऊंचे हैं। उन बच्चों को क्षमा किया जा सकता है, बच्चे हैं। लेकिन एक संन्यासी, जगतगुरु होने का जिसे भ्रम है, ऐसा आदमी कहता है, चार इंच ऊपर मेरा तख्त होना चाहिए, इसको चाइल्डिश कहें, बच्चा कहें, क्या कहें? सब छोड़ दिया है। लेकिन क्या छोड़ दिया है? सब मौजूद है, नई शक्लों में मौजूद है।

हमारी जो पशुता है, वह मिट नहीं पाती, क्योंकि हम आदर्श ओढ़ लेते हैं, पशुता दूसरे मार्गों से निकल कर प्रकट होनी शुरू हो जाती।

यह बहुत हैरानी की बात है, हिटलर जैसे लोगों में, हिटलर बरदाश्त नहीं कर सकता किसी आदमी को कि मेरे साथ खड़ा हो। हिटलर का कोई नाम नहीं ले सकता कि कोई कह दे हिटलर, फ्यूहरेर ही कहना पड़ेगा। आदर-सूचक शब्द ही उपयोग करने पड़ेंगे। कोई हिटलर के कंधे पर हाथ नहीं रख सकता। हिटलर का अहंकार। लेकिन किसी जगतगुरु के कंधे पर हाथ रख सकते हैं आप? किसी महात्मा के कंधे पर हाथ रख सकते हैं? महात्मा बड़ा मुस्कुराता है जब आप उसके पैर में सिर रखते हैं। लेकिन कंधे पर कभी हाथ रख कर देखा? तो महात्मा एकदम नाराज हो जाएगा। महात्मा एकदम विलीन हो जाएगा और भीतर का हिटलर दिखाई पड़ने लगेगा। वह भीतर हिटलर बैठा हुआ है। गेरुआ वस्त्र से कोई हिटलर बदल जाता है? लेकिन हिटलर फिर भी एक अर्थों में ईमानदार और साफ है। गेरुआ वस्त्र के भीतर छिपा हुआ फ्यूहरेर जो है, वह उतना साफ नहीं है, उतना स्पष्ट नहीं है। वह ज्यादा धोखे में है। दूसरे को धोखा देना तो ठीक भी है, लेकिन वह खुद के भी धोखे में है कि मैं बदल गया, मैं दूसरा आदमी हो गया हूं, मैं महात्मा हो गया हूं।

भारत आत्मवंचना में तल्लीन है। और इसलिए भारत के पास, जिसको चरित्र कहें, वह पैदा नहीं हो पाया। आज पृथ्वी पर हमसे ज्यादा चरित्रहीन समाज खोजना मुश्किल है। लेकिन हम कहेंगे, हमसे ज्यादा चरित्रहीन! हमसे ज्यादा माला जपने वाले लोग कहां है? हमसे ज्यादा मंदिर जाने वाले लोग कहा हैं? हमसे ज्यादा राम-राम कहने वाले लोग कहां है, हमसे ज्यादा रामायण और गीता पढ़ने वाले लोग कहां हैं? हम तो बहुत चरित्रवान हैं। लेकिन इन चीजों से चरित्र का क्या संबंध है?

मेरे एक मित्र हैं दिल्ली में, एक डाक्टर हैं। एक मेडिकल कांफ्रेंस में भाग लेने वे लंदन गए थे। लौट कर आए तो मुझे वहां की कई घटनाएं सुनाने लगे। एक घटना मुझे ख्याल आती है। हाइट पार्क में पांच सौ डाक्टरों की एक बैठक थी। खाना-पीना भी था, गपशप भी थी, मिलना-जुलना भी था। वे मित्र भी, वे दिल्ली के डाक्टर भी वहां गए थे। जहां यह बैठक चल रही है, लोग गपशप कर रहे हैं, खा-पी रहे हैं, एक-दूसरे से मिल-जुल रहे हैं, वहीं पास की एक बेंच पर एक युवक और एक युवती आंख बंद किए, एक-दूसरे के गले में हाथ डाले मौन बैठे हैं, जैसे किसी और दुनिया में खोए हों। मेरे मित्र डाक्टर का मन कांफ्रेंस में नहीं रहा। भारतीय का मन वह उस बेंच पर जाने लगा। सीधा देख भी नहीं सकते,

तिरछी आंखों से देखने लगे। और मन में होने लगा, कैसी चरित्रहीनता है? यह क्या चरित्रहीनता है कि एक जवान युवक और एक जवान युवती पांच सौ लोगों के सामने गले में हाथ डाले हुए बैठे हैं? यह क्या बात है? यह बहुत बुरा है! कोई पुलिस वाला आकर इनको रोकता क्यों नहीं है? बार-बार मन वहीं जाने लगा। मुझे कहने लगे कि मेरे पड़ोस के डाक्टर ने, एक डच ने मेरे कान में कहा कि मित्र बार-बार वहां मत देखें, लोग आपको चरित्रहीन समझेंगे। यह उनका काम है कि वे क्या कर रहे हैं, आप क्यों परेशान हुए जा रहे हैं?
और पुलिस बुलाने की आड़ में, उनके चरित्रहीनता की आड़ में और कोई रस नहीं है? रस दूसरा है। और अगर भीतर यह डाक्टर अपने मन में घुसे और मैंने कहा कि अपने मन में जाओ थोड़ा, अपने रस को खोजो कि रस क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि उस युवक की जगह तुम बैठना चाहते हो? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जो मौका तुम्हें मिलना चाहिए, वह कोई दूसरा लिए ले रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि पुलिस वाले को बुलाने के पीछे ईर्ष्या है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस चरित्रवान और चरित्र होने के ख्याल में तुम उन दो युवकों को मिलते हुए देखने का भी रस लेना चाहते हो? कहीं ऐसा तो नहीं है कि उस जवान लड़की को देखने का मन बार-बार वहां ले जा रहा है? लेकिन चरित्र की आड़ में वहां देखने जा रहे हो? सीधे भी नहीं जा रहे कि सुंदर युवती को देखना है, तो सीधे देख लो। उसमें भी एक चरित्र होगा कि युवती सुंदर है और हम देखना चाहते हैं। यह भी चरित्र होगा एक। लेकिन युवती को कहीं इस बहाने तो नहीं देख रहे हो कि देखना भी चाहते हैं, लेकिन चरित्र की आड़ कि यह बहुत गलत हो रहा है, यह हम नहीं होने देंगे।
सारे जगत में धीरे-धीरे मनुष्य के यथार्थ को स्वीकृति मिलनी शुरू हो
गई है, वह जैसा है। हम अस्वीकार कर रहे हैं, जैसा है उसे। और जैसा वह नहीं है, उसको आरोपित कर रहे हैं, उसको इम्पोज कर रहे हैं, उसको ऊपर थोपते जा रहे हैं और चरित्रवान बनते जा रहे हैं। तो चरित्र हमारा ऊपर होता है, लेकिन चरित्र की बातों की आड़ में दुश्चरित्रता छिपी होती है। उस आड़ के पीछे कुछ दूसरी जलन, कोई दूसरी पीड़ा, कोई दूसरी इंस्टींट, कोई दूसरी वृत्तियां काम करती हैं। आदर्शवादी इसीलिए दूसरे को बहुत गाली देता हुआ दिखाई पड़ता है। उस गाली देने में ईर्ष्या है, बदला है, रिवेंज है, प्रतिशोध है, वह जो स्वयं नहीं कर पाया, उसका क्रोध भी है।
लेकिन जिस व्यक्ति का जीवन रूपांतरित होता है, जिसके भीतर क्रांति घटित होती है--जहां अंधकार है, वहां प्रकाश आता है, जहां पशु है--पशु धीरे- धीरे विसर्जित होता है और परमात्मा प्रकट होता है। उसके भीतर दूसरों के प्रति दया तो हो सकती है, क्रोध नहीं हो सकता। और उसके प्रति दूसरे की स्थिति को समझने के लिए सदभाव हो सकता है, दंड देने की कामना नहीं हो सकती। वह जानेगा कि यही स्वाभाविक है जो हो रहा है। इससे श्रेष्ठतर भी हो सकता है, लेकिन स्वाभाविक की निंदा उसके मन में नहीं होगी। श्रेष्ठतर का जन्म हो, इसकी प्रार्थना होगी, लेकिन स्वाभाविक की निंदा नहीं होगी।
मनुष्य के स्वभाव को, निसर्ग को हम इनकार करते चले आ रहे हैं पांच-हजार वर्षों से। सब तरफ से हमने आदमी के स्वभाव को इनकार करके एक लोहे की कैद खड़ी कर दी है। उस कैद के भीतर आदमी को खड़ा कर दिया है। उसकी सारी मुक्ति छीन ली है, क्योंकि उसका सारा स्वभाव छीन लिया है। और आश्चर्य की बात यह है कि तथ्यों के इस अस्वीकार से, तथ्यों के इस निषेध से, तथ्यों से आंख चुरा लेने से तथ्य बदल नहीं गए हैं, सिर्फ छिप गए हैं और उन्होंने भीतर से काम शुरू कर दिया, वे अनकांशस हो गए हैं। और जो तथ्य अचेतन में उतर जाते हैं, अंधेरे में, और वहां से काम करते हैं, उनका काम और भी आत्मघाती हो जाता है।
मैंने सुना है, एक मां, रात नींद में उठने की उसे आदत है। वह रात नींद में उठ आई है और अपने मकान के पीछे के बगीचे में चली गई है। वह सपने में है, और नींद में ही जोर-जोर से बोल रही है और अपनी जवान लड़की को गालियां दे रही है, और कह रही है कि इसी दुष्ट के कारण मेरी जवानी नष्ट हो गई है। यह जवानी तो लड़की पर चली गई और मैं बूढ़ी हुई जा रही हूं। तभी उसकी लड़की की भी नींद खुल गई है, वह भी रात नींद में चलने की आदी है। वह बगीचे में पहुंच गई है।

वह नींद में उस बुढ़िया को वहां देखती है आधी खुली आंखों से और सोचती है, यह दुष्ट बुढ़िया यहां भी मौजूद है, इसने मेरे जीवन को कांटा बना दिया है। इसके मौजूद, जब तक यह जिंदा है तब तक मुझे स्वतंत्रता नहीं मिल सकती, तब तक मेरा जीवन एक परतंत्रता है। वे दोनों नींद में एक-दूसरे को गालियां दे रही हैं, तभी मुर्गा बाग देता है, दोनों की नींद खुल जाती है। सुबह की ठंडी हवा, बूढ़ी कहती है, बेटी, इतनी जल्दी उठ आई? सर्दी न लग जाए, शाल नहीं डाल ली है? बेटी अपने मां के पैर छूती है और कहती है, मां भीतर चल, सुबह बहुत सर्द है, कहीं तुझे सर्दी-जुकाम न पकड़ जाए। नींद में वे क्या कह रही थीं? जाग कर वे क्या कह रही हैं?
हम कहेंगे, नींद! नींद तो सपना थी, झूठ थी। जो जाग कर कह रही हैं, वह सच है! बात उलटी है। जो जाग कर वे कह रही हैं, वह झूठ है, जो नींद में उन्होंने कहा था, वह सच था।
हम यही सोचते हैं कि सपने में जो हम देख रहे हैं वह झूठ है, लेकिन अब मनोविज्ञान कहता है कि सपने में जो आप देख रहे हैं, वह जो जाग कर आप देखते हैं, वह उससे ज्यादा सत्यतर है। क्योंकि सपने में वही प्रकट हो रहा है जिसे आपने भीतर छिपा लिया है। बेटे बाप की हत्या कर रहे हैं सपने में। सुबह उठ कर कहते हैं, अरे सपना था।
वह सब झूठ है। लेकिन ऐसा बेटा खोजना मुश्किल है, जिसने बाप की हत्या
की कामना को कहीं अचेतन में छिपा न दिया हो। आदमी सपने में पड़ोसी की स्त्री को लेकर भाग गया है। सुबह उठ कर कहता है, अरे, ये सब क्या बातें हैं, यह सब सपना है। लेकिन पड़ोसी की स्त्री को लेकर भागने की अगर कोई कामना अचेतन में न दबा दी गई होती, तो सपना आसमान से पैदा नहीं होता। वह सपना भीतर से आया है। वह सपना कहीं छिपा है। वह सपने को दबा दिया है। उसने मौका पाया, जब आप सो गए और आपका कंट्रोल ढीला हो गया, नियंत्रण ढीला हो गया, चित्त शिथिल हो गया तो वह जो भीतर दबा था, वह प्रकट हो गया और चित्त के पर्दे पर चलने लगा।
सपने हमारे जाग्रत सत्य से ज्यादा सत्यतर हैं, क्योंकि हमारे छिपे हुए मन को प्रकट कर रहे हैं।
साधु-संन्यासियों के सपने देखिए, तो वे वही होंगे, जो अपराधियों ने जागने में किया है। साधु-संन्यासी सपनों में वही कर रहे हैं। अपराधी तो देख सकते हैं सपने साधु होने के, लेकिन साधु अपराधी होने के सपने देखते हैं। इसलिए साधु नींद लेने से डरते हैं। नींद में बहुत डर लगता है, क्योंकि नींद में वह जो साधु चौबीस घंटे साधुता साधी है, वह एकदम खो जाती मालूम पड़ती है। समझ नहीं पड़ता कि क्या हो जाता है, बिल्कुल उलटा आदमी भीतर से प्रकट होने लगता है। वह उलटा आदमी कहीं आसमान से नहीं उतरता, वह हमने दबाया है, वह हमारा तथ्य है, वह हमारा फैक्ट है, वही हम हैं।
इस हम को इनकार करने का एक उपाय था, जो हमने उपयोग किया भारत में। और
वह उपाय यह था, भीतर हिंसा है, बाहर से अहिंसा ओढ़ लो! भीतर हिंसा है, पानी छान कर पीओ, रात खाना मत खाओ! भीतर हिंसा है, मांसाहार छोड़ दो, अहिंसक हो जाओ! अहिंसक होना इतनी सस्ती बात नहीं है कि कोई मांसाहार छोड़ने से अहिंसक हो जाए। अहिंसक कोई हो जाए तो मांसाहार छूट सकता है, वह दूसरी बात है। लेकिन मांसाहार छोड़ने से कोई अहिंसक नहीं हो सकता। कोई अहिंसक हो जाए तो कुछ चीजें छूट सकती हैं, लेकिन कुछ चीजों के छूटने से कोई अहिंसक नहीं हो जाता। हिंसा भीतर है, तो ऊपर से अहिंसा का वर्तन व्यक्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ देगा, हिंसा भीतर सरकती रहेगी, अहिंसा ऊपर घूमती रहेगी। भीतर हिंसक आदमी तैयार रहेगा, जरा छेड़ दो और प्रकट हो जाए। जरा छेड़ दो और प्रकट हो जाए।
हिंदुस्तान में कितनी अहिंसा की बात गांधी जी ने और उनके साथियों ने की, और आजादी आई और हिंसा में डूब गया पूरा मुल्क! कोई दस लाख लोगों की हत्या हुई और करोड़ों लोगों को हत्या से भी ज्यादा दुख झेलना पड़ा। यह कैसा देश है? अहिंसा की बातें कर रहा था! फिर एकदम हिंसा का यह उबाल कहां से आ गया? यह कहां से पैदा हो गई? वह अहिंसा की बातें सब ऊपर थीं, भीतर हिंसा थी, और हिंसा प्रतीक्षा कर रही थी कि कोई मौका मिल जाए।

अभी हम यहां कितने अहिंसक भाव से बैठे हुए हैं। कोई किसी को मार नहीं रहा, कोई किसी की गर्दन नहीं दबा रहा। लेकिन अभी पता चल जाए बाहर कि हिंदू- मुस्लिम दंगा हो गया है और आप बगल के आदमी की गर्दन दबा देंगे कि यह मुसलमान है कि यह हिंदू है, मारो छुरा इसको। ये आदमी अभी दोनों शांत साथ बैठे थे। धर्म की बातें सुनते थे। गीता पढ़ते थे, कुरान पढ़ते थे, मस्जिद में हाथ जोड़े खड़े थे। अचानक पता चला कि हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया, ये आदमी बदल गए, इनके भीतर का आदमी बाहर आ गया।
भीतर कौन बैठा हुआ है? भीतर हिंसा बैठी हुई है, भीतर घृणा बैठी हुई है, भीतर क्रोध बैठा हुआ है, भीतर जंगली जानवर बैठा हुआ है। और उस जंगली जानवर को हम ऊपर अच्छे-अच्छे शब्दों के वस्त्र और अच्छे-अच्छे आदर्शों के वस्त्र ओढ़ कर छिपा रहे हैं। यह कामचलाऊ व्यवस्था है। यह व्यवस्था बहुत महंगी है। यह धोखे की व्यवस्था है। जिंदगी भी गुजर सकती है और पता न चले कि भीतर कौन था!
और भारत ने इसी तरह पांच हजार वर्ष की एक पाखंडी संस्कृति खड़ी की है, जिस संस्कृति ने ऊपर से चीजें थोप ली हैं और भीतर का आदमी नहीं बदला है। निश्चित ही इस तरह की जबरदस्ती थोपी गई व्यवस्था प्रतिभा के विकास में अवरोध बनी थी।
प्रतिभा के लिए चाहिए इंटीग्रेशन, व्यक्तित्व एक हो, इकट्ठा हो। और हमने व्यक्तित्व को तोड़ दिया दो टुकड़ों में, और विरोधी टुकड़ों में। हमने एक-एक व्यक्ति की शक्ति को दो हिस्सों में बांट दिया और दोनों हिस्सों को एक-दूसरे का दुश्मन बना दिया। व्यक्ति स्वयं से लड़ कर ही नष्ट हो जाता है। उसके पास इतनी ऊर्जा, इतनी एनर्जी, इतनी शक्ति नहीं बच पाती कि वह कुछ और क्रिएट कर पाए, वह कुछ और सृजन कर पाए। इसलिए भारत पूरा का पूरा अनक्रिएटिव हो गया है, असृजनात्मक हो गया है।
हम विध्वंस ही कर सकते हैं, क्योंकि हमने जो अपने भीतर किया है, वही हम बाहर कर सकते हैं। हम लड़ ही सकते हैं--हिंदू मुसलमान से लड़ सकता है, मराठी गुजराती से लड़ सकता है, हिंदी बोलने वाला गैर हिंदी बोलने वाले से लड़ सकता है, हिंदू मुसलमान से लड़ सकता है। हम सिर्फ लड़ ही सकते हैं, क्योंकि भीतर हम अपने से ही लड़ने की शिक्षा लिए हैं। हम अपने से ही लड़ते रहे हैं। हम भीतर ही हिंदुस्तान और पाकिस्तान में बंटे हुए हैं। एक-एक आदमी अपने भीतर ही टुकड़ों में बंटा हुआ है। भारत के पास इकहरा व्यक्तित्व, जिसको हम व्यक्तित्व कहें, इंडिविजुअलिटी कहें, जुड़ा हुआ एक आदमी नहीं है। और एक आदमी जुड़ा हुआ न हो तो खुद के खंड आपस में लड़ कर शक्ति को नष्ट कर देते हैं। और शक्ति नष्ट हो जाए तो प्रतिभा कैसे विकसित हो? और प्रतिभा न हो तो समस्याओं का समाधान कौन देगा? कौन भगवान, कौन देवता, कौन वेद, कौन ऋषि, कौन मुनि देगा? समाधान हमें लाने हैं अपनी ही प्रतिभा से। और हमारे प्रतिभा क्षीण-क्षीण खंड-खंड होकर बह गई है।
अगर भारत को प्रतिभा को जन्म देना है, अगर भारत को अपनी छिपी हुई ऊर्जा को पूरी अभिव्यक्ति देनी है, तो यह तीसरा सूत्र ख्याल में रख लेना जरूरी है। और वह यह है, आदर्शों की बकवास बंद करो। आदमी का जो तथ्य है, यथार्थ है, वह जो वस्तुतः आदमी है, उसे पहचानो।
लेकिन इसका क्या यह मतलब है कि मैं यह कह रहा हूं कि हिंसक हो जाओ, क्रोधी हो जाओ, घृणा से भर जाओ, पशु हो जाओ? नहीं, बल्कि मैं यह कह रहा हूं कि इसे जितना हम पहचानेंगे, उतनी ही पहचान के द्वारा इसमें रूपांतरण और परिवर्तन शुरू होते हैं। अगर कोई आदमी अपने भीतर देख ले कि उस-उस दिशा में उसके भीतर पशु है, सिर्फ देख ले, कुछ और करना नहीं है, पहचान ले कि में इस दिया में पशु हूं और परिवर्तन शुरू हो गया। पहचानते ही परिवर्तन शुरू हो गया। जैसे ही मैंने यह पहचाना कि मेरी यह घृणा, मेरा यह प्रेम, मेरा यह क्रोध, मेरी यह मालकियत, मेरा यह डामिनेशन एक पशु का हिस्सा है। सुना हुआ नहीं, किसी और का कहा हुआ नहीं, मैंने अपने भीतर पहचाना। मैंने अपने भीतर खोज की कि यह मेरा पशु है। और मैं आपसे कहता हूं, यह पहचान, यह रिकग्नीशन, यह प्रतिभिज्ञा कि मैंने पहचाना कि यह पशु है, और मेरे भीतर परिवर्तन की शुरुआत हो गई। क्योंकि कोई भी पशु नहीं रह सकता है, नहीं रहना चाहता है।

पशु हम तभी तक रह सकते हैं, जब तक पशु अनजान हो, अननोन हो, अनरिकग्नाइज्ड हो, पहचाना न गया हो, जाना न गया हो, आंख की रोशनी उस पर न पड़ी हो, तभी तक हम पशु रह सकते हैं। और हमारे आदर्शवाद ने यह काम पूरा कर दिया। आदर्श पर हमारी आंख लगी है, आदर्श पर, जो हम नहीं हैं। और जो हम हैं, वहां से आंख हट गई है। हम देख रहे हैं आदर्श पर; आगे, भविष्य में, कल, परसों अहिंसक हो जाऊंगा मैं। और हिंसा? हिंसा बिना देखी भीतर काम कर रही है। आज नहीं कल, परमात्मा हो जाऊंगा में। आज नहीं कल, इस जन्म में, अगले जन्म में मोक्ष मिल जाएगा। नजर वहां लगी है भविष्य पर और जो मैं हूं वहां से नजर हट गई है। जहां से नजर हट गई है, वहां अंधेरा हो गया। जहां अटेंशन नहीं है, ध्यान नहीं है, वहां अंधकार हो गया। और जहां अंधकार हो गया वहां रूपांतरण कैसे होगा? बदलाहट कैसे होगी?
आंख ले जानी है वहां, जहां मैं हूं, जो मैं हूं। लेकिन एक ही कठिनाई है। वही कठिनाई रोकती है स्वयं को देखने से। और वह कठिनाई यह है कि स्वयं को देखना बहुत कष्टपूर्ण है, बहुत तपश्चर्यापूर्ण है। क्योंकि हमने अपने अहंकार में अपनी एक प्रतिमा बना रखी है, जो बड़ी सुंदर है। और हम बड़े कुरूप हैं, हम बहुत अग्ली हैं और प्रतिमा हमने बड़ी सुंदर बना रखी है। उस प्रतिमा को देख कर, दिखाने के हम आदी हो गए हैं। हमारे अहंकार ने कहा है कि यही मैं हूं। अब उस प्रतिमा को तोड़ना पड़ेगा, अगर भीतर असली कुरूपता को देखने जाना है। इसलिए हिम्मत नहीं जुटा पाते हम। इसको ही मैं तपश्चर्या कहता हूं। स्वयं निर्मित अपने ही अहंकार की प्रतिमाओं के खंडन का नाम तपश्चर्या है। उससे ज्यादा आरडुअस, उससे ज्यादा श्रमपूर्ण, उससे ज्यादा कठिन और कुछ भी नहीं है। अपनी ही प्रतिमाओं को अपने हाथ से गिरा देना और उसे देखना जो मैं वस्तुतः हूं। जो मेरी कल्पना नहीं, जो मेरा आदर्श नहीं, जैसा मैं हूं। कैसा हूं मैं, उसे देख लेना, उसकी नग्नता में पहचान लेना क्रांति की शुरुआत है, बदलाहट की शुरुआत है।
और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर स्वयं को देखने जाता है, वैसे ही एक नये व्यक्ति का जन्म शुरू हो जाता है, एक नया व्यक्ति पैदा होने लगता है। यह जो नया व्यक्ति है, शक्तिशाली होगा, क्योंकि शक्ति आपस में बंटेगी नहीं। यह नया व्यक्ति बुद्धिमान होगा, क्योंकि इसने बुद्धि का प्रयोग किया है, बुद्धि विकसित होगी। यह नया व्यक्ति प्रतिभाशाली होगा, क्योंकि इसने चुनौती को स्वीकार किया है, चुनौती का सामना किया है और चुनौती के ऊपर उठ गया है।
प्रतिभा का जन्म एक आत्मज्ञान का परिणाम है। और हम आत्म अज्ञान में
जी रहे हैं, यद्यपि हम आत्मज्ञान की सर्वाधिक बातें करते हैं! लेकिन आत्मज्ञान से हमने मतलब समझ रखा है--उपनिषद पढ़ो, गीता-पढ़ो, गीता उपनिषद के वचन कंठस्थ कर लो। और सुबह आंख बंद करके उनको दोहराते रहो, दोहराते रहो कि अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं, मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूं, परमात्मा हूं, प्रभु हूं, शुद्ध-बुद्ध हूं, यह दोहराते रहो अपने भीतर। इसको रिपीट करते रहो, इसको दोहराते रहो। दोहराते-दोहराते धीरे-धीरे यह विश्वास बैठ जाएगा कि मैं यही हूं। लेकिन यह विश्वास धोखा होगा। दोहरा कर कोई सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। नहीं, मैं ब्रह्म हूं यह दोहराने से कोई ब्रह्म नहीं हो जाएगा। मैं जो हूं, उसे जानने से, पहचानने से, उसके रूपांतरण से, उसकी बदलाहट से, उसकी क्रांति से व्यक्ति ब्रह्म के द्वार तक पहुंचता है। मनुष्य परमात्मा हो सकता है, है नहीं! संभावना है उसकी, पोटेंशियलिटी है, लेकिन है वह पशु! पशुता तथ्य है! परमात्मा होना, बीज के भीतर से वृक्ष के आने की जैसी संभावना है। और अगर कोई बीज अपने को मान कर बैठ जाए कि मैं वृक्ष हूं, तो वह बीज कभी वृक्ष नहीं हो सकता। हम अपने को मान कर बैठ गए हैं कि हम परमात्मा हैं। इसलिए हम परमात्मा तक नहीं पहुंच पाते हैं, पशु ही रह जाते हैं। इस पशुता को पहचानना, जानना, खोजना साधना है, तपश्चर्या है। अपनी ही निर्मित अपनी ही झूठी प्रतिमाओं को तोड़ देना त्याग है, तप है। और इस तप से जो गुजरता है, वह एक नये व्यक्तित्व को उपलब्ध हो जाता है, जहां प्रतिभा अपनी पूरे प्रकाश में प्रकट होती है।

भारत की प्रतिभा प्रकट हो सकती है, लेकिन आदर्श के पाखंड छोड़ देने होंगे।
टायनबी ने कहा है कि पश्चिम की संस्कृति सेंसुअल कल्चर है, ऐंद्रिक संस्कृति है। टायनबी को शायद यह भ्रम हो कि पूरब की संस्कृति स्प्रिचुअल है; तो टायनबी को अपना भ्रम ठीक कर लेना चाहिए। पश्चिम की संस्कृति ऐंद्रिक है, यह बात टायनबी की हिंदुस्तान के साधु-संन्यासी लोगों को समझाते हैं कि देखो, पश्चिम के लोग खुद कह रहे हैं कि पश्चिम की संस्कृति ऐंद्रिक है, हमारी आध्यात्मिक है। मैं आपसे कहना चाहता हूं, पश्चिम की संस्कृति सेंसुअल है और हमारी संस्कृति हिपोक्रेट है। वह उनकी संस्कृति ऐंद्रिक है और हमारी संस्कृति पाखंडी है। और मैं आपसे कहता हूं, ऐंद्रिक संस्कृति कभी न कभी आध्यात्मिक बन सकती है, क्योंकि इंद्रिय एक सत्य है। लेकिन पाखंडी संस्कृति कभी भी आध्यात्मिक नहीं बन सकती, क्योंकि पाखंड एक झूठ है, स्व-निर्मित एक है।
मनुष्य के तथ्य का स्वीकार मनुष्य के सत्य तक ले जाने की राह है। अगर
हम मनुष्य के सत्य तक पहुंचना चाहते हैं, तो मनुष्य के तथ्य को हमें परिपूर्ण स्वीकृति देनी जरूरी है। वह कितना ही नग्न हो, वह कितना ही कुरूप हो, वह कितना ही बेहूदा हो। उसे हम अंगीकार न करें, आंख चुराएं तो हम भटक जाते हैं। हम भटक गए हैं।
इन तीन दिनों में, इन तीन सूत्रों में, पलायन से, परंपरा से और आदर्श से, इन तीन से मुक्त होने के लिए मैंने कहा। अगर ये तीन पत्थर हट जाएं तो भारत की प्रतिभा का स्रोत मुक्त हो जाए, वह भारत की सरिता सागर की तरफ दौड़ने लगे। लेकिन अगर ये तीन पत्थर भारत की प्रतिभा की सरिता को रोके रहें, तो हम एक डबरा बन गए हैं, जो दौड़ता नहीं, चलता नहीं, कहीं पहुंचता नहीं। सड़ता है, सड़ता जाता है, गंदगी बढ़ती चली जाती है, रोग बढ़ता चला जाता है। बीमारी, घाव बढ़ते चले जाते हैं, मवाद इकट्ठी होती चली जाती है, दुर्गंध फैलती चली जाती है। और हम आंख बंद करके इस सबको माया, माया; झूठ है, झूठ है; आंख बंद करके अपने को संतोष खोजते रहते हैं। इस संतोष से नहीं हो सकता है, तोड़ना पड़ेगा इस धारा को, इसे सागर की ओर उन्मुख करना पड़ेगा, ताकि एक दिन मनुष्य पशु से उठे और परमात्मा तक पहुंच जाए।
परमात्मा का मंदिर निकट है, लेकिन पशु को भुला कर, झूठला कर नहीं; पशु
को जान कर, पहचान कर। ट्रांसेंडेंस से, उसके अतिक्रमण से। और ज्ञान अतिक्रमण का मार्ग है। जानना अतिक्रमण की, ट्रांसेंडेंस की विधि है।
अज्ञान आत्मघात है। ज्ञान आत्मक्रांति है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत की खोज
छठवां प्रवचन

हिंसक राजनीतिज्ञ

इन तीन दिनों की चर्चाओं के आधार पर बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि क्या सारा अतीत ही गलत था, क्या सारा अतीत ही छोड़ देने योग्य है? क्या अतीत में कुछ भी अच्छा नहीं है?

इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी चाहिए।
पहली बात, पिता मर जाते हैं, हम उन्हें इसलिए नहीं दफनाते हैं कि वे बुरे थे, इसलिए दफनाते हैं कि वे मर गए हैं। और कोई भी यह कहने नहीं आता कि पिता बहुत अच्छे थे, तो उन्हें दफनाना नहीं चाहिए, उनकी मरी हुई लाश को भी घर में रखना जरूरी है। अतीत का अर्थ हैः जो मर गया, जो अब नहीं है। लेकिन मानसिक रूप से हम अतीत की लाशों को अपने सिर पर ढो रहे हैं। उन लाशों से दुर्गंध भी पैदा होती है, वे सड़ती भी हैं। और उन लाशों के बोझ के कारण नये का जन्म असंभव और कठिन हो जाता है। अगर किसी घर के लोग ऐसा तय कर लें कि जो भी मर जाएगा, उसकी लाश को हम घर में रखेंगे। तो उस घर में नये बच्चों का पैदा होना बहुत मुश्किल हो जाएगा। और अगर बच्चे पैदा भी होंगे, तो पैदा होते से ही पागल हो जाएंगे या आत्महत्या कर लेंगे। वह घर एक पागलखाना हो जाएगा। लाशें ही लाशें घर में इकट्ठी हो जाएं तो नये जीवन का अंकुर फूटना मुश्किल हो जाता है।
अतीत का अर्थ हैः जो अब नहीं है, जो मर चुका है। जो मर चुका, उसे हमें विदा करने की हिम्मत होनी चाहिए। दुख होता है तो भी विदा करने का सामर्थ्य होना चाहिए। उसे मन के तल पर बचा-बचा कर रखना बहुत ही खतरनाक है। तो जब मैं कहता हूं अतीत को छोड़ देने के लिए, तो मेरा अर्थ है, ताकि हम भविष्य की तरफ देख सकें। मेरा अर्थ है कि जहां से हम गुजर गए, वहां से हम गुजर ही जाएं। मन हमारा उन रास्तों पर न भटकता रहे जहां हम अब नहीं हैं, कभी थे। जहां हम हैं उन रास्तों पर हमारी दृष्टि हो, ताकि हम वहां पहुंच सकें जहां हम अभी नहीं हैं। लेकिन जहां हम नहीं हैं, उनकी स्मृतियों में खोया हुआ चित्त भविष्य के निर्माण में और वर्तमान के जीवन में असुविधाएं पैदा कर लेता है।
अगर रूस के बच्चों से जाकर पूछो, तो वे चांद पर बस्तियां बसाने के लिए योजना बना रहे हैं। अगर अगर अमरीका के बच्चों से पूछो, तो वे आने वाले भविष्य के निर्माण के लिए न मालूम कितनी कल्पनाएं ढूंढ़ रहे हैं। उनका चित्त भविष्य में है। और हमारे बच्चे? हमारे बच्चे रामलीला देख रहे हैं। रामलीला देखना बुरा नहीं है और राम बहुत सुंदर हैं, अदभुत हैं। लेकिन रामलीला ही देखते हुए रुक जाना, और रामलीला ही देखते रहना, और रामलीला की तरफ ही चित्त का मुड़ा रहना बहुत खतरनाक है। क्योंकि यह पीछे की तरफ मुड़ी हुई गर्दन धीरे-धीरे पैरालाइज्ड हो जाती है, फिर यह आगे की तरफ नहीं देखती। जैसे किसी कार में पीछे लाइट लगा दिया गया हो। वे तो कारें पश्चिम में बनती हैं और हम उनकी नकल में बनाते हैं, अगर हम शुद्ध भारतीय कार बनाएं, तो उसमें एक लक्षण यह होगा कि उसके लाइट पीछे की तरफ लगे होंगे। चलेगी गाड़ी आगे, देखेगी पीछे। धूल उड़ रही है उस रास्ते पर रोशनी पड़ेगी और आगे अंधेरा होगा जहां जाना है।
प्रकाश वहां होना चाहिए जहां जाना है। जहां से चल चुके हैं वहां अंधेरा भी हानिकर नहीं है। क्योंकि पीछे तो कोई जा ही नहीं सकता। जाना तो सदा आगे ही पड़ता है। और जहां हम नहीं जा सकते वहां ध्यान को अटकाना, निश्चित ही जहां हम जा सकते हैं वहां से ध्यान को वंचित करना है, एक बात। दूसरी बात, यह अतीत का इतना गुण-गान जो हम करते हैं, अतीत के स्वर्ण-युग होने की, गोल्डन एज होने की, राम-राज्य होने की जो हम बातें करते हैं, यह अतीत इतना सुंदर कभी था नहीं, जितनी हम कहानियां बनाए हुए हैं। लेकिन हमने ये कहानियां क्यों बना ली हैं? इन कहानियों के बनाने के पीछे कुछ मनोवैज्ञानिक कारण हैं।

एक बच्चा पैदा होता है, तो बच्चा भविष्य की तरफ देखता है। उसके पीछे कोई अतीत नहीं होता। एक बूढ़ा आदमी है, बूढ़ा आदमी बैठ कर अपनी आराम कुर्सी पर आंख बंद करके अतीत की तरफ देखता है--बचपन, जवानी, जो बीत गए। क्योंकि बूढ़े के आगे कोई भविष्य नहीं है। बूढ़े के आगे मौत है। मौत वह देखना नहीं चाहता। वह पीछे लौट कर अतीत की स्मृतियां देखता रहता है। और जिन जवानी की स्मृतियों को वह बड़ा सुखद पाता है, जब वह जवान था, तब वे इतनी सुखद नहीं थीं। और जिन बचपन की बातों को अब वह इतना स्वर्णिम बना लेता है, सपने बना लेता है; वह बचपन वैसा ही साधारण बचपन था जैसा सबका होता है। लेकिन दुखद को तो छोड़ देता है आदमी, सुखद को संजो लेता है। एक चुनाव चलता है पूरे वक्त। दुखद को हम भूलते चले जाते हैं, सुखद को याद करते चले जाते हैं। बाद में जब लौट कर देखते हैं तो सुखद की एक लंबी धारा दिखाई पड़ती है, दुखद भूल चुका होता है। हमारे अहंकार को दुखद बरदाश्त नहीं है। उसे हम अंधेरे में सरका देते हैं। सुखद को याद रखते हैं।
बच्चों से पूछो, कोई बच्चा नहीं कहेगा कि बचपन बहुत आनंद दे रहा है। बच्चे पूरे वक्त इस कोशिश में लगे हैं कब जवान हो जाएं। क्योंकि उन्हें दिखाई पड़ रहा है कि जवानी बहुत आनंद मालूम पड़ रही है। छोटे-छोटे बच्चे रास्तों के किनारे गलियों में छिप कर सिगरेट पी रहे हैं। यह मत सोचना कि बच्चे सिगरेट इसलिए पी रहे हैं कि सिगरेट पीने में उन्हें बहुत आनंद आ रहा है? वे बड़ों को सिगरेट पीते देख रहे हैं, सिगरेट बड़े होने का सिंबल है। वे उसे पीकर बड़े होने की अकड़ से भर रहे हैं।
एक दिन सुबह मैं घूमने निकला था, एक पोस्ट आफिस के पास से जा रहा था।
एक छोटा सा बच्चा हाथ में छड़ी लिए हुए, छोटी सी मूंछ दो आने की खरीद कर लगाए हुए, रास्ते पर चल रहा था। मुझे देखा, एकदम घबड़ा गया, झाड़ के पीछे छिप गया। मैं उसके पीछे गया। उसने जल्दी से अपनी मूंछ निकाल ली। मैंने कहा, यह तू क्या कर रहा है? उसके पिता से मैं परिचित था। दोपहर उसके पिता से मिला। उसके पिता ने कहा, हमें पता नहीं, यह मूंछ काहे के लिए लगा कर सुबह सड़क पर घूम रहा था!
मैंने कहा, पता होना चाहिए। बच्चों को बचपन बहुत साधारण मालूम होता है। जवानी बहुत असाधारण, बड़ी ताकत, बड़ी प्रतिष्ठा है। तो छोटा बच्चा भी मूंछ लगा कर हाथ में छड़ी लेकर सिगरेट पीना चाहता है। वह कोशिश करता है उन प्रतीकों को चुनने की जो बड़ों के हैं। लेकिन यही बच्चा कल बूढ़ा होकर बचपन की याद करेगा और कहेगा, बहुत सुंदर दिन थे।
जो कौम बूढ़ी हो जाती है, वह याद करती है अतीत के संबंध में। जो जवान होती है कौम, वह हमेशा भविष्य के संबंध में विचार करती है। यह कौम बूढ़ी हो गई है, इसलिए पीछे लौट-लौट कर देखती है। और यह बड़ा खतरनाक है। आदमी का बूढ़ा होना स्वाभाविक है, कौम का बूढ़ा होना दुर्घटना है। एक-एक आदमी को तो बूढ़ा होना पड़ेगा। लेकिन फिर भी शरीर ही बूढ़ा हो, आदमी के मन को बूढ़ा होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। आदमी का मन मरते क्षण तक जवान हो सकता है, रह सकता है। शरीर तो बूढ़ा होगा, हो जाए। लेकिन समाज को तो बूढ़ा होने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि समाज तो सदा जवान है, वह कभी बूढ़ा नहीं होता। लेकिन भारत में एक दुर्घटना घट गई, समाज भी बूढ़ा हो गया। समाज भी पीछे की तरफ देखता है।
यह पीछे की तरफ देखने का कारण यह नहीं है कि पीछे बहुत सुंदर दुनिया बीत गई है। पीछे की तरफ देखने का कारण यह है कि भविष्य का निर्माण करने की क्षमता और साहस हमने खो दिया है। भविष्य में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता सिवाय अंधकार के। तो पीछे लौट कर मन को समझाते रहते हैं, पीछे लौट कर देखते रहते हैं।
और तीसरी बात, एक बहुत अदभुत तार्किक भूल हो रही है और वह यह हो रही है, जैसे आज, आज से दो हजार साल बाद न तो मुझे कोई याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा, लेकिन गांधी का नाम दो हजार साल बाद लोग याद रखेंगे और दो हजार साल बाद लोग कहेंगे, गांधी इतना अच्छा आदमी, उस जमाने के लोग कितने अच्छे रहे होंगे। और उस जमाने के लोग? उस जमाने के लोगों का गांधी से क्या संबंध है? लेकिन गांधी की याद रहेगी, हम सब भूल जाएंगे। और गांधी की याद पर हमारे

संबंध में निर्णय लिया जाएगा कि बहुत अच्छे लोग थे। और हम? हमारा गांधी से तो कोई भी संबंध नहीं है, गोडसे से संबंध हो भी सकता है। गांधी से हमारा क्या लेना-देना? लेकिन गांधी हमारे प्रतीक बन कर इतिहास में जिंदा रहेंगे और लोग गलती करते रहेंगे हमेशा, वे कहेंगे, गांधी-युग, कितने अच्छे लोग थे। वही भूल सदा होती है। हम कहते हैं, राम-राज्य, राम का युग। कितने अच्छे लोग थे। राम याद रह गए, और वह जो वृहत्तर मनुष्य था, उसका हमें कुछ भी पता नहीं कि वह कैसा था। वह बहुत अच्छा नहीं रहा होगा। बुद्ध याद रह गए, महावीर याद रह गए। उस जमाने का आम आदमी हमें याद नहीं रहा। मैं कहता हूं, वह बहुत अच्छा नहीं रहा होगा। क्यों कहता हूं? आप कहेंगे, जब उसके संबंध में कुछ पता नहीं तो ऐसा मैं क्यों कहता हूं? कुछ कारण से कहता हूं। इसलिए कहता हूं कि बुद्ध सुबह से सांझ तक लोगों को समझाते हैं, चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो, बेईमानी मत करो। किसको समझाते हैं? अच्छे आदमियों को? महावीर सुबह से सांझ तक, चालीस साल तक यही समझाते रहे--संयम साधो, असंयम बुरी चीज है, चोरी बुरी चीज है; ज्यादा मत खाओ, कम खाओ। किन लोगों को समझा रहे थे महावीर यह? अच्छे लोगों को? जो चोर नहीं थे उनको समझा रहे थे चोरी मत करो? और अगर महावीर ने चालीस साल में एकाध बार कहा होता कि चोरी मत करो, तो हम समझते कि एकाध आदमी मिल गया होगा चोर। लेकिन सुबह से सांझ तक महावीर यही चिल्लाते हैं कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो। इससे क्या पता चलता? इससे दो बातें हो सकती हैं, या तो महावीर का दिमाग खराब रहा हो या समाज खराब रहा हो। तो मुझे लगता है, महावीर का दिमाग तो खराब नहीं है। समाज चोरों और बेईमानों का रहा होगा, इसलिए बेचारे महावीर को सुबह से सांझ तक यही समझाना पड़ता है।
शिक्षाएं बताती हैं कि लोग कैसे थे। शिक्षाओं से पता चलता है कि लोग कैसे थे। शिक्षाएं खबर देती हैं कि किनको दी गई होंगी। महावीर और बुद्ध से पता नहीं चलता कि जमाना कैसा था। महावीर और बुद्ध की शिक्षाओं से पता चलता है कि जमाना कैसा था। क्योंकि महावीर-बुद्ध से तो महावीर-बुद्ध का पता चलता है कि कैसे थे। लेकिन शिक्षाओं से पता चलता है कि जिनको वे शिक्षा दे रहे थे, वे कैसे थे।
दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब यही कहती है कि आजकल के लोग खराब हो रहे हैं, पहले के लोग अच्छे थे। चीन में छह हजार वर्ष पुरानी किताब है और उसकी भूमिका को अगर पढ़ें तो ऐसा लगेगा, पूना के किसी दैनिक अखबार में एडिटोरियल लिखा हो। भूमिका में लिखा हुआ है कि आजकल के लोग बिल्कुल ही अनैतिक हो गए हैं, दुराचारी हो गए हैं, व्यभिचारी हो गए हैं। आजकल के लोग बिल्कुल धार्मिक नहीं रहे। आजकल के लोगों में कुछ नहीं रहा जो अच्छा है। पहले के लोग बहुत अच्छे थे। छह हजार साल पहले की किताब है! तो पहले के लोग कब थे जो अच्छे थे? कभी थे? अब तक ऐसी एक भी किताब नहीं मिली, जिसमें यह लिखा हो कि इस समय के लोग अच्छे हैं। सब किताबें कहती हैं, पहले के लोग अच्छे थे। ये पहले के लोग बहुत काल्पनिक मालूम पड़ते हैं। ये पहले के कुछ अच्छे लोगों की स्मृति के कारण सारे लोगों को अच्छे मानने की कल्पना मालूम पड़ती है।
मैंने सुना है, बेबीलोन में, खुदाई करने वाले, पुरातत्व की खोज करने वाले लोगों को एक ईंट मिली है, जो ईंट अंदाजन दस हजार से पंद्रह हजार साल पुरानी होनी चाहिए। उस ईंट पर जो लिखा हुआ है, उसको खोज करने वालों ने पता लगाया है कि क्या लिखा है। उस ईंट पर एक मोटो लिखा हुआ है, चोरी करना पाप है। पंद्रह हजार साल पुरानी ईंट पर लिखा है, चोरी करना पाप है। क्या मतलब है इसका? इसका मतलब है कि पंद्रह हजार साल पहले भी चोरी बड़े जोर से चल रही थी। ईंटों पर लिख कर मकानों पर लगाना पड़ता था, चोरी करना पाप है। लोग कहते हैं कि मकानों में ताले नहीं लगाना पड़ते थे। इसका एक ही कारण हो सकता है कि लोग ताला बनाना न जानते हों। चोरी तो जारी थी। या इसका दूसरा कारण यह हो सकता है कि ताले में रखने योग्य पास में कुछ भी न रहा हो। लेकिन चोरी तो जारी थी, क्योंकि पुरानी से पुरानी किताब कहती है कि चोरी करना पाप है। चोरी नहीं करनी चाहिए, चोरी करने वाले को नर्क में सड़ना पड़ता है। चोरी

करने वाले को बहुत-बहुत कष्ट देने का वर्णन है। चोरी करने वाले को बहुत-बहुत दंड का डर है। यह क्या है?
समाज कभी भी अच्छा नहीं था। आदमी कुछ अच्छे पैदा हुए हैं, व्यक्ति कुछ अच्छे पैदा हुए हैं। समाज आज से पहले से हर हालत में अच्छा है, समाज! समाज रोज अच्छा हो रहा है। आने वाला समाज कल और भी अच्छा हो सकता है। समाज विकास कर कर रहा है। इसलिए पीछे की स्मृति और गुणवान बहुत धोखे के हैं। और खतरनाक हैं। खतरा यह है कि जो लोग यह मान लेते हैं कि पीछे का समाज बहुत अच्छा था, वे जाने-अनजाने अपने समाज को एक हीनता के भाव से भर देते हैं। और वह हीनता आदमी को बुरा होने की तरफ ले जाती है, अच्छे होने की तरफ नहीं। और भारत में तो एक बहुत अजीब धारणा है। हमारा तो ख्याल यह है कि पतन हो रहा है, विकास नहीं हो रहा। पहले था सतयुग, अब चल रहा है कलियुग। अच्छे युग पहले हो चुके, बुरे युग अब चल रहे हैं। आदमी रोज पतित हो रहा है। हिंदुस्तान के सोचने का जो ढंग है, वह कहता है कि समाज पतित हो रहा है। ढंग खतरनाक है।
विकसित, श्रेष्ठतर आगे आ रहा है, यह अगर ख्याल और धारणा हो, तो हम श्रेष्ठतर होने का प्रयास करते हैं। और अगर यह पक्का ही है कि कलियुग आ रहा है, बुरा होना जरूरी है, तो फिर भले होने की कोशिश कौन करे? हमारा कसूर भी नहीं है, क्योंकि कलियुग चल रहा है, हम बुरे हैं। पंचम-काल चल रहा है, हम बुरे हैं। हमारा बुरा होना मजबूरी है। हम क्या कर सकते हैं? समय ऐसा है कि बुरे हैं।
ये धारणाएं समाज की प्रतिभा को ऊंचा उठाने का कारण नहीं बनतीं, रोकने
का कारण बनती हैं। महापुरुष हुए हैं, महान मनुष्य अब तक पैदा नहीं हुआ। महान मनुष्य को पैदा होना है। और जो महापुरुष पैदा हुए हैं, वे महापुरुष भी इसीलिए महापुरुष मालूम पड़ते हैं, यह चौथी बात आपसे कहना चाहता हूं। बुद्ध को हुए ढाई हजार वर्ष हो गए। ढाई हजार वर्ष तक बुद्ध को याद रखने की जरूरत क्या है? आप कहेंगे, बुद्ध को याद न रखें? महावीर को याद न रखें? नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि ढाई हजार वर्ष तक महावीर, बुद्ध या राम और कृष्ण को याद रखना पड़ता है, उसका एक ही कारण हो सकता है कि राम, बुद्ध और महावीर जैसे आदमी मुश्किल से पैदा होते हैं। गिने-चुने, कभी अंगुलियों पर गिने जा सकें। अगर दुनिया में बहुत अच्छे आदमी पैदा होंगे, तो महापुरुषों को याद रखना मुश्किल हो जाएगा। महापुरुष अति न्यून हैं, इसलिए ये याद रखे जा सकते हैं।
और ध्यान रहे, महापुरुष पैदा ही इसलिए हो पाते हैं कि चारों तरफ हीन आदमियों का जमघट है।
स्कूल में शिक्षक लिखता है काले बोर्ड पर सफेद खड़िया से। उससे कहो न
कि काली खड़िया से क्यों नहीं लिखते? या उससे कहो कि सफेद दीवाल पर क्यों नहीं लिख कर काम चला लेते सफेद खड़िया से? वह कहेगा, पागल हो गए हो, सफेद खड़िया से लिखूंगा सफेद दीवाल पर, लिख तो जाएगा, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा। सफेद खड़िया का लिखा हुआ दिखाई पड़ता है काले ब्लैक बोर्ड पर। महापुरुष दिखाई पड़ते हैं काली मनुष्यता के बोर्ड के ऊपर, नहीं तो दिखाई नहीं पड़ेंगे। कैसे दिखाई पड़ेंगे? महापुरुष होंगे, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेंगे। अगर दुनिया अच्छी होगी, तो महावीर, बुद्ध, ऐसे लोग खो जाएंगे, इनका पता नहीं चलेगा कहां हैं। लेकिन आदमी की काली तख्ती का लंबा फैलाव है। उस ब्लैक बोर्ड पर कभी किसी महावीर के हस्ताक्षर सफेद खड़िया में हो जाते हैं। हजारों साल बीत जाते हैं और हम उन्हें देखते रहते हैं, क्योंकि वे दिखाई पड़ते हैं। और उन हस्ताक्षरों पर भी नये हस्ताक्षर करने वाले नहीं आते हैं, कि वे दब जाएं, वे दिखाई ही पड़ते रहते हैं।
यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि महापुरुष इतने कम हैं कि अंगुलियों पर गिने
जा सकते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि एक-एक महापुरुष को दो-दो चार-चार हजार साल तक याद रखना पड़ता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि महामनुष्यता नहीं है इसलिए महापुरुष पैदा होते हैं, दिखाई पड़ते हैं। महापुरुष तो पैदा होते रहेंगे, लेकिन दिखाई नहीं पड़ने चाहिए। इतनी अच्छी आदमियत को जन्म देना जरूरी है।

मैं कहता हूं, पीछे अच्छे लोग हुए हैं। अच्छा समाज आगे होगा। और अच्छे समाज पर ध्यान देना जरूरी हो गया है। अच्छे लोगों पर ध्यान देने से कुछ भी नहीं हुआ। एक आदमी अच्छा हो जाए इससे क्या होता है?
पूना में अगर पांच लाख आदमी हैं और एक आदमी स्वस्थ हो जाए, तो ठीक है, लेकिन क्या होगा? पांच लाख आदमी बीमार हैं और एक आदमी स्वस्थ है। इसका स्वास्थ्य भी पांच लाख लोगों की बीमारी में सुंदर नहीं मालूम होगा। इसका स्वस्थ होना भी एक दुर्घटना मालूम होगी, एक एक्सीडेंट मालूम होगा। होना ऐसा चाहिए कि पांच लाख लोग स्वस्थ हों, कभी कोई एकाध आदमी अस्वस्थ हो जाए। होना यह चाहिए कि दुनिया में जो बुरे आदमी पैदा हों उनका नाम हम अंगुलियों पर गिन सकें। अच्छा आदमी आम बात हो। बुरा आदमी मुश्किल हो जाए, वह कभी पैदा हो, तो हम याद रख सकें कि फलां आदमी बुरा पैदा हुआ था दो हजार साल पहले। जब तक हम अच्छे आदमियों को याद रखते हैं, तब तक समझ लेना कि समाज बुरा है। जिस दिन समाज अच्छा होगा, बुरे आदमी की याद रहेगी, अच्छे आदमी का कोई हिसाब नहीं रह सकता है। ऐसा समाज भविष्य में हो सकता है। ऐसा समाज अतीत में नहीं था। इसलिए मैं कहता हूं कि अतीत से मुक्त होकर निरंतर, निरंतर भविष्य की तरफ गति जरूरी है।
एक मित्र ने पूछा है कि मैं कहता हूं कि भारत ने पांच हजार सालों में कुछ भी नया नहीं सोचा। तो उन्होंने एकाध-दो उदाहरण दिए कि गांधी जी ने नॉन-कोआपरेशन, असहयोग का आंदोलन नया सोचा। रामदास ने राष्ट्रधर्म की धारणा नई सोची।
फिर वे मेरी बात नहीं समझ पाए। यह ऐसा ही है कि जैसे कोई मरुस्थल में जाकर कहे कि मरुस्थल में पानी बिल्कुल नहीं है और एक पागल आ जाए और वह कहे कि चलिए मैं दिखाता हूं, एक जगह छोटे से डबरे में पानी भरा हुआ है। हम गलत करते हैं आपकी बात को। एक डबरे में पानी भरा हुआ है, यह रहा। और आप कहते हैं मरुस्थल में पानी बिल्कुल नहीं है। मरुस्थल में पानी बिल्कुल नहीं है, इसका मतलब? इसका मतलब यह नहीं है कि मरुस्थल में कहीं दो-चार डबरे न मिल जाएंगे, जहां पानी नहीं होगा।
पांच हजार वर्षों तक भारत ने नये तरह से सोचने की प्रवृत्ति विकसित नहीं की है। इसका मतलब, यह हमारी मूलधारा है। कभी इक्का-दुक्का कोई आदमी कुछ नया सोचता है, लेकिन इससे भारतीय संस्कृति की मूलधारा पता नहीं चलती। मूलधारा हमारी पुराने को पकड़ रखने की है। जोर से पकड़ रखने की है।
कभी कोई एक गांधी कोई नई बात सोचता है, लेकिन गांधी की बात भी बहुत नई नहीं है, जितना हम सोचते हैं। सिर्फ नये संदर्भ में प्रयोग है, पर वह भी नया... । ऐसे तो गांधी की बात रस्किन, थॉरो और टाल्सटाय से ली गई है। भारतीय लोगों को यह दिमाग से ख्याल बहुत छोड़ देना चाहिए कि गांधी जी भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। गांधी के तीनों गुरु अ-भारतीय हैं। थॉरो, रस्किन, टाल्सटाय, इन तीनों आदमियों से गांधी की दृष्टि का जन्म हुआ है। इन तीनों में से कोई भी भारत का नहीं है। नॉन-कोआपरेशन का, असहयोग की धारणा थॉरो से मिली।
लेकिन, ऐसे असहयोग की धारणा बहुत पुरानी है। घरों में स्त्रियां पतियों से हमेशा असहयोग करती रही हैं। असहयोग कमजोर हमेशा प्रयोग करते रहे हैं। स्त्रियां कमजोर हैं, इसलिए पुरुषों के खिलाफ असहयोग, नॉन-कोआपरेशन का हजारों साल से प्रयोग करती रही हैं। अभी भी घर में स्त्री कुछ नहीं करती तो नॉन-कोआपरेट करती है। आप कहते हैं, सिनेमा चलो, वह देर तक साड़ी पहनती रहती है, वह नॉन-कोआपरेशन है। कमजोर हमेशा से असहयोग करता रहा है। कमजोर और कर क्या सकता है? ज्यादा से ज्यादा यह कर सकता है कि आपको सहयोग न दे।
भारत कमजोर था। उस कमजोरी में भारत को गांधी की बात समझ में आ गई, असहयोग की। उसका मतलब यह मत समझ लेना कि भारत ने असहयोग की दृष्टि को स्वीकार कर लिया। भारत को अपनी कमजोरी को छिपाने का मौका मिल गया। और उस असहयोग को उसने मान लिया और चल पड़ा। कमजोर हमेशा से वही करते रहे हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गांधी ने कुछ नया नहीं किया। गांधी बहुत सी दृष्टियों में नये ढंग से सोचे। वह सोचना गलत हो सकता है, लेकिन फिर भी नया

है। नये होने से ही कोई चीज ठीक नहीं हो जाती, यह मत समझ लेना कि मैंने कह दिया कि गांधी ने कुछ नया सोचा तो वह ठीक हो गया। नये होने से कुछ ठीक नहीं हो जाता। लेकिन फिर भी पुराने के पकड़े रहने से नया सोचना बेहतर है। नया सोचना भी गलत हो सकता है। नये सोचने में भी सैकड़ों विकल्प हो सकते हैं ठीक और गलत के।
यह मैं नहीं कह रहा हूं कि भारत में कभी ऐसे लोग ही पैदा नहीं हुए। बुद्ध ने बहुत कुछ नया सोचा, चार्वाक ने बहुत कुछ नया सोचा; नागार्जुन के पास बहुत कुछ नया है, शंकर के पास भी बहुत कुछ नया है। लेकिन भारत का जो आम दिमाग है, भारत का जो ट्रेडीशनल दिमाग है, जो मूलधारा है, जो भारत की गंगा है, उस गंगा में कभी-कभी कोई एक छोटी सी धारा थोड़ी देर को चमकती है और खो जाती है। लेकिन मूल-गंगा की जो धारा है, जो मेन स्ट्रीम है भारतीय चेतना की, वह अतीतगामी है, वह पुरातनपंथी है, वह परंपरावादी है। उसके खिलाफ मैंने बातें कही हैं। इसलिए कोई इक्के-दुक्के उदाहरण खोज कर यह मत सोचना कि मेरी बातों के विरोध में कुछ सोच लिया। डबरे बताए जा सकते हैं मरुस्थल में, लेकिन इससे मरुस्थल मरुस्थल ही रहता है। इससे मरुस्थल कुछ उद्यान सिद्ध नहीं हो जाता है।
लेकिन कई बार मुझे ऐसा लगता है कि कमजोर चित्त अपने को बचाने की न मालूम कैसी-कैसी कोशिश करता है।
अभी एक मित्र ने, रास्ते में मैं आया हूं, उन्होंने कहा कि आपने सुबह सांड का उदाहरण दिया। सांड़ तीन साल में जवान होता है और आपने कहा एक साल में। अब मुश्किल हो गई, सांडों का मैं कोई हिसाब रखता हूं। कोई वैटेनरी का डाक्टर नहीं हूं। सांडों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। जो बात कही थी, वह क्या कही थी? वे मित्र कह रहे हैं कि सांड़ तीन साल में जवान होता है। कहा मैंने यह था कि सांड़ जब सोचेगा, तो गाय के संबंध में सोचेगा। वह उसका सोचना, वह उसके सांड़ के माइंड का सवाल है, वह तीन साल में सोचेगा तो तीन साल में सही। उतना फर्क कर लेना। लेकिन उससे कुछ मतलब ही नहीं होता, उससे कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसी-ऐसी बातें लिख कर भेजते हैं कि मुझे हैरानी होती है कि हम सोचते हैं, सुनते हैं या क्या कर रहे हैं? जैसा हमने सोचना बंद ही कर दिया है! तो जो मूल-आधार होता है, उसकी तो बात ही भूल जाते हैं और न मालूम क्या-क्या उसमें से खोजते हैं कि यह ऐसा होगा। सांड़ तीन साल में जवान होगा! हो तीन साल में हो कि तीस साल में! और न भी हो तो कोई चिंता नहीं है। जो मैंने कहा, उससे इसका कुछ लेना-देना नहीं है। मेरा प्रयोजन कुल इतना है कि हम जो हैं वही सोचते हैं और जो हम सोचते हैं उससे पता लगता है कि हम कौन हैं?
मैं यह कह रहा था सुबह कि आदमी भी पशु है। पशुओं में भी एक पशु है। उसके चिंतन का अगर हम गौर करेंगे, तो हम पाएंगे कि वह वही है, जो पशुओं का है। वह पशुओं के ऊपर उठ सकता है, लेकिन उठ नहीं गया है। और अपने को धोखा देना खतरनाक है, कि हम अपने को मान लें कि हम पशु नहीं हैं, हम परमात्मा हैं। यह धोखा खतरनाक है।
आदमी परमात्मा हो सकता है, है नहीं। यह संभावना है, सत्य नहीं है। और संभावना को सत्य मान लेना धोखा है। संभावना को सत्य बनाने का प्रयत्न बिल्कुल दूसरी बात है। और उस प्रयत्न में पहली बात यह होगी कि हम अपने तथ्य को समझें। हजारों-लाखों साल हो गए, जब आदमी जानवरों से दूर हो गया। लाखों साल हो गए, अंदाजन दस-लाख साल हुए होंगे। दस लाख साल से आदमी वृक्षों से नीचे उतर आया है, बंदर नहीं रह गया है। आज बंदर में और आदमी में कोई भी समानता नहीं है। लेकिन बहुत भीतर गौर करें तो बहुत समानताएं मिल जाएंगी। आप हैरान होंगे, दस लाख साल में भी बुनियादी आदतों में कोई अंतर नहीं पड़े हैं। अभी हम रास्ते पर चलते हैं, तो आपने देखा, दोनों हाथ हिलते हैं--बाएं के साथ दायां हाथ हिलता है, दाएं पैर के साथ बायां हाथ हिलता है। ये काहे के लिए हिल रहे हैं? चलने में इनसे कुछ मतलब है? कोई मतलब नहीं है। दस लाख साल पहले हम चारों हाथ-पैर से चलते थे, उसकी याददाश्त बाकी रह गई शरीर में। वह शरीर उसी ढंग से काम कर रहा है। वह मैकेनिकल हो गया, उसे पता ही नहीं कि अब इसकी कोई जरूरत नहीं है। आपके लोकॅमोशॅन में, आपकी गति में, हाथों के

हिलाने से कोई संबंध नहीं है। दोनों हाथ काट दें, तो भी आप इतनी ही तेजी से चल सकते हैं। लेकिन दाएं पैर के साथ बायां हाथ क्यों हिल रहा है? बाएं पैर के साथ बायां हाथ क्यों नहीं हिलता? क्योंकि पशु, जो चार हाथ-पैर से चलता है, जब उसका बायां पैर आगे उठेगा तो पीछे का दायां पैर आगे उठेगा। वह दोनों के मूवमेंट का आंतरिक संबंध है। दस लाख साल से हम नहीं चले चार-हाथ पैर से, लेकिन हाथ की आदत वही है। वह हाथ की आदत बताती है कि हमारा पूर्वज कभी न कभी चारों हाथ-पैर से चलता रहा है।
अगर हम आदमी के भीतर खोज-बीन करें तो पता चलेगा कि उसके भीतर पशु मौजूद है और उस पशु को पहचानना जरूरी है, ताकि हम उसे बदल सकें। जिसे भी हम जान लेते हैं, उसे हमें बदलने का हक मिल जाता है। जिसे हम नहीं जान पाते हैं, हम उसके हाथ में खिलौने होते हैं। अज्ञान के हाथ में हम खिलौने हैं। यह बिजली जल रही है। यही तीन हजार साल पहले वेद का ऋषि हाथ जोड़े इंद्र भगवान से कह रहा था कि हे भगवान, नाराज मत होना, बिजली मत चमकाना! आज का स्कूल का छोटा बच्चा भी यह नहीं कहेगा कि इंद्र भगवान बिजली मत चमकाना। आज का छोटा सा बच्चा भी जानता है, बिजली क्यों चमकती है। इसमें इंद्र भगवान का कोई भी कसूर नहीं है। उनका हाथ ही नहीं है बेचारों का। सच तो यह है कि वे है ही नहीं, तो उनका हाथ हो ही नहीं सकता। बिजली चमकती थी, हम डरते थे, क्योंकि अनजान थी बिजली, पहचान नहीं थी उससे कुछ। हमारे प्राणों को कंपा देती थी। कभी गिरती थी; वृक्ष जल जाता था, आदमी मर जाता था। हम डरते थे, घबड़ाते थे। सोचते थे, इंद्र सजा दे रहा है।
अब हमने बिजली को कैद कर लिया, हमने बिजली के राज को जान लिया। अब इंद्र भगवान पानी की टंकी चला रहे हैं, इंद्र भगवान घर में पंखा चला रहे हैं। अब इंद्र भगवान से कहो कि जरा पंखा ठीक से चलाना? कोई नहीं कहेगा, क्योंकि पंखे की जो राज है, बिजली, वह हम जानते हैं। ज्ञान ने हमें बिजली का मालिक बना दिया।
आदमी अपने भीतर के संबंध में जब तक अज्ञान में है, तब तक अपना मालिक नहीं हो सकता। विज्ञान ने हमें प्रकृति का मालिक बना दिया, धर्म हमें अपना मालिक बनाता है। लेकिन अपना मालिक कोई भी ज्ञान के बिना नहीं बनता। अज्ञान में कोई कभी मालिक नहीं बन सकता है। और हम अपने संबंध में अज्ञान में हैं। और बड़े से बड़े अज्ञान ऐसे हैं कि उन्हें हम उघाड़ना भी नहीं चाहते, क्योंकि डर लगता है कि कहीं हमारे भीतर का असली आदमी प्रकट न हो जाए। असली आदमी हमारा पशु है। हां, उस पशु को जान कर रूपांतरित किया जा सकता है। और हम ऐसी सीमाएं छू सकते हैं जिनकी कल्पना भी नहीं है। हम ऐसे वृक्ष देख सकते हैं, जो कभी नहीं देखे गए हैं। हम वहां पहुंच सकते हैं, जहां कभी कोई नहीं पहुंचा। हम वह जान सकते हैं, जो कभी नहीं जाना गया। हम उसे पा सकते हैं, जिसे पा लेने पर सब पा लिया जाता है।
लेकिन, उस यात्रा को करना तो हमें पड़ेगा। और हम अगर अपने ही प्रति अज्ञानी हैं तो यह नहीं हो सकता है। इसलिए मैंने वह बात कही।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि धर्मों ने दुनिया को लड़ाया। और आदमी को वैज्ञानिक होना चाहिए। लेकिन अब तो साइंस दुनिया को लड़ा रही है। एटम बम, हाइडरेजन बम बना रही है।
उन मित्र को मैं कहना चाहूंगा, साइंस दुनिया को नहीं लड़ा रही है। एटम
तो जरूर साइंस बना रही है, लेकिन साइंस यह नहीं कह रही है कि एटम को जाकर हिरोशिमा पर पटको। ये बेवकूफ राजनीतिज्ञ कर रहे हैं। विज्ञान तो सिर्फ शक्ति खोज रहा है और नासमझ राजनीतिज्ञों के हाथ में शक्ति दे रहे हैं आप। राजनीतिज्ञ लड़ा रहा है। धर्मों ने लड़ाया, राजनीति लड़ा रही है। विज्ञान तो एक कर रहा है। इस वक्त दुनिया में वैज्ञानिकों की कम्युनिटी ही अकेली एकमात्र अंतर्राष्ट्रीय संप्रदाय है, एकमात्र। जापान में एक वैज्ञानिक कुछ खोजता है, वह भारत के वैज्ञानिक की संपत्ति हो जाती है। अमरीका में एक वैज्ञानिक कुछ खोजता है, वह फ्रांस के वैज्ञानिक की संपत्ति हो जाती है। सिर्फ रूस और चीन के मामले में झंझट हो गई है, क्योंकि उन्होंने लोहे की दीवालें खड़ी कर रखी हैं। उनका वैज्ञानिक क्या खोजता है, वे बड़ी मुश्किल से पता चलने देते हैं।

यह जो विज्ञान है, वह तो जोड़ रहा है सबको। लेकिन राजनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ नहीं जोड़ना चाहता। क्यों? क्योंकि राजनीतिज्ञ की सारी ताकत लोगों के लड़ने पर निर्भर है। अगर आप लड़ते हैं, तो राजनीतिज्ञ मालिक रहेगा। अगर आप नहीं लड़ते हैं, तो राजनीतिज्ञ बेकार हो जाएगा। इसलिए राजनीतिज्ञ सीमाएं बनाता है--हिंदुस्तान की, पाकिस्तान की, चीन की, बर्मा की, रूस की, अमरीका की। ये सीमाएं कहीं भी पृथ्वी पर नहीं हैं। और ये सीमाएं कोई वैज्ञानिक नहीं खींचता, ये सीमाएं पहले धर्मों ने खींची हैं, अब राजनीतिज्ञ खींच रहा है। और ये सीमाएं वह क्यों खींच रहा है? क्योंकि जब वह आपको सीमाओं में बांट देता है और जब वह दो सीमाओं में बंटे हुए लोगों को लड़ने के लिए राजी कर लेता है, तब वह मालिक हो जाता है। जब आप लड़ते हैं, तब आपको नेता चुनना पड़ता है।
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा हैः नेता बनने के लिए खतरा पैदा करना जरूरी है। अगर हिंदुस्तान में नेता बनना हो, खबर पैदा करो कि चीन का खतरा है! जिन्ना को नेता बनना है, खबर करो कि इस्लाम पर खतरा है! हिंदुओं को इकट्ठा करना है, तो गोलवेल्कर से सीक्रेट पूछो कि क्या है सीक्रेट! वह सीक्रेट यह है कि हिंदू-धर्म नष्ट हो रहा है, हिंदू-धर्म खतरे में हैं। इकट्ठे हो जाओ। दुश्मन चारों तरफ इकट्ठे हैं। दुश्मन इकट्ठे हैं। दुश्मन कौन बना रहा है? और वे जो दुश्मन इकट्ठे हैं, हिंदुस्तान का नेता कह रहा है कि इकट्ठे रहो, क्योंकि पाकिस्तान का डर है। पाकिस्तान का नेता पाकिस्तान की गरीब जनता को कह रहा है, इकट्ठे रहो, क्योंकि हिंदुस्तान का डर है। लेकिन डर किसका है? जब दोनों डरे हुए हो, छोड़ दो डर, खत्म। लेकिन राजनीतिज्ञ मर जाएगा, अगर डर छोड़ दे। कौन मानेगा नेता? दुनिया को भयभीत रखना जरूरी है। बांट कर खंड-खंड में रखना जरूरी है। जब तक दुनिया बंटी है, तब तक राजनीतिज्ञ मालिक रहेगा।
दुनिया को राजनीतिज्ञ लड़ा रहा है। राजनीति नहीं लड़ा रही है। राजनीति नये तरह के धर्म पैदा कर दिए हैं उसने। पुराने धर्मों के नाम थे--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन। ये पुराने धर्मों के नाम हैं। सच में पूछिए तो ये पुरानी पॉलिटिक्स के नाम हैं, पुरानी राजनीति के। नई राजनीति के नाम हैं-- कम्युनिज्म, सोशलिज्म, कैपिटलिज्म, डेमोक्रेसी। ये नये धर्म हैं, नई राजनीति है। इनके भी मक्का-मदीना हैं। इनके भी पोप, जगतगुरु हैं। वह कम्युनिस्ट क्रेमलिन की तरफ उसी तरह देखता है, जैसे हिंदू काशी की तरफ देखता है, मुसलमान मक्का की तरफ देखता है। क्रेमलिन पर चमकता हुआ रेड स्टार वही मतलब रखता है, जो काशी में विश्वनाथ के मंदिर के ऊपर का झंडा रखता है। दिमाग वही है, नये ढंग से आदमी को फिर बांट दिया गया है।
विज्ञान ने तो मौका पैदा किया है कि आदमी को बांटने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि विज्ञान ने वे खोजें की हैं, अब विज्ञान कहता है कि अगर एक शूद्र की और एक ब्राह्मण की हड्डी निकाली जाए, तो दोनों में कोई फर्क नहीं है। और बड़े से बड़ा खोज करने वाला वेद का ज्ञाता भी नहीं बता सकता कि यह हड्डी ब्राह्मण की है और यह शूद्र की है। कि बता सकता है? कोई रास्ता नहीं है। हड्डियां एक सी हैं। और जब एलोपैथ डाक्टर के पास एक शूद्र जाता है, तो वह यह नहीं कहता कि तुझे, तुझे दूसरी दवा कारगर होगी। ब्राह्मण के लिए है यह, यह जो पैनिसिलिन है, यह शुद्ध ब्राह्मणों के लिए है, तेरे लिए कोई शूद्र पैनिसिलिन खोजनी पड़ेगी, वह अभी है नहीं? वह दोनों को लगा देता है। और बड़े मजे की बात है कि पैनिसिलिन बड़ी नासमझ है, वह दोनों को ठीक कर देती है, ब्राह्मण को भी शूद्र को भी। कोई फर्क नहीं करती।
दुनिया के बड़े-बड़े संत हार गए, थक गए चिल्ला-चिल्ला कर कि सब एक हैं।
शूद्र भाई है, फलां-ढिकां। और संतों-वंतों की किसी ने नहीं सुनी। रेलगाड़ी चली, और ब्राह्मण बैठा है, उसके बगल में शूद्र बैठ कर सिगरेट पी रहा है। ब्राह्मण बेचारा अपना खाना खा रहा है, और बगल में शूद्र बैठा है। कुछ पता नहीं चल रहा कि कौन कौन है, क्योंकि रेलगाड़ी में हजार आदमी बैठे हैं। रेलगाड़ी ने ब्राह्मण को, शूद्र को पास बिठा दिया, जो हजारों संत नहीं कर सके। रेलगाड़ी महा संत है। रेलगाड़ी को नमस्कार करना चाहिए कि धन्य है तू

जिसने ब्राह्मण और शूद्र को साथ-साथ बिठा दिया। अगर आदमी पैदल चलता रहता, बैलगाड़ी में चलता रहता, तो शूद्र और ब्राह्मण कभी पास नहीं बैठ सकते। यूरी गागरिन पहली दफा जब अंतरिक्ष में गया, तो वहां से जो उसने मैसेज भेजी, उसका पता है, उसने क्या कहा? उसने कहा, यहां आकर पहली दफा मुझे लग रहा है, माई अर्थ, मेरी पृथ्वी। यहां से मुझे ऐसा नहीं लगता, मेरा रूस। वहां रूस दिखता ही नहीं। अंतरिक्ष में दिखता है पृथ्वी। वहां न कोई रूस है, न कोई चीन है, न कोई भारत है। उसने यह नहीं कहा वहां से, माई रसिया। यूरी गागरिन ने कहा, कहां है रूस? यहां से तो सिर्फ पृथ्वी दिखाई पड़ती है, मेरी पृथ्वी। अगर चांद की यात्रा शुरू हो गई, और चांद पर आप गए; समझ लें मंगल पर गए, और मंगल पर अगर निवास करने वाले लोग हुए और उन्होंने पूछा, कहां से आते हैं? तो आपको कहना पड़ेगा, पृथ्वी से। यह नहीं कि महाराष्ट्र से आ रहे हैं। वह मंगल का आदमी महाराष्ट्र का कोई मतलब नहीं समझ पाएगा। अगर हमें चांद पर पहुंचा दिया विज्ञान ने, तो पृथ्वी एक हो जाएगी। धारणा बदल जाएगी, दृष्टि बदल जाएगी।
विज्ञान ने इतने जोर का कम्युनिकेशन के साधन पैदा किए हैं कि आज एक हिंदू लड़का अमरीका में जाकर शादी कर सकता है, अमरीकी लड़की भारत आकर शादी कर सकती है। कितना सुंदर और सुखद है। अगर सारी दुनिया के बच्चे दूर-दूर शादी कर लेंगे, तो दुनिया में युद्ध होना बहुत मुश्किल हो जाएगा। अगर युद्ध जारी रखना है, अपनी ही जाति में शादी करना। अगर युद्ध मिटाना है, जाति में भूल कर शादी मत करना। क्योंकि जितने हमारे संबंध दूसरी जातियों में फैल जाते हैं, उतने दूसरी जातियों से हमारा खून जुड़ जाता है, हम एक हो जाते हैं।
दुनिया के पुराने धर्मों ने सिखाया, अपनी जाति के बाहर मत जाना! यह लड़ाई का अड्डा है। अगर हिंदुस्तान में एक-दूसरी जाति में विवाह होता रहता, तो संतों-वंतों को समझाने की कोई जरूरत नहीं थी। सब एक अपने आप ही होते। हिंदुस्तान इतना टूटा हुआ है, उसका कारण यह है कि सब अपने-अपने घेरे में विवाह कर रहे हैं। घेरे के बाहर कोई संबंध ही पैदा नहीं हो पाता। घेरे के बाहर प्रेम के बढ़ने का कोई उपाय नहीं है।
विज्ञान ने सब सीमाएं तोड़ दी हैं। आने वाले पचास वर्षों में बची-खुची सीमाएं टूट जाएंगी और दुनिया एक हो सकेगी। लेकिन राजनीतिज्ञ बाधा डाल रहा है। राजनीतिज्ञ, जैसे पहले धार्मिक लोगों ने बाधा डाली थी, विज्ञान को नहीं बढ़ने दिया था, क्योंकि धर्म के लोगों को डर लगा कि अगर विज्ञान बढ़ेगा तो धर्म की जो कपोल कल्पनाएं, पोप लीलाएं, मूढ़तापूर्ण कथाएं हैं, वे सब मिट्टी हो जाएंगी। वे सब मिट्टी हो गईं। तो धार्मिक गुरु डरा, उसने कहा कि विज्ञान नहीं बढ़ना चाहिए, क्योंकि हमने जो जाल फैला रखा है, वह सब टूट जाएगा।
लेकिन सत्य को ज्यादा देर तक नहीं रोका जा सकता। सत्य विज्ञान के पक्ष में था। धर्मों को हार जाना पड़ा, विज्ञान जीता। अब राजनीतिज्ञ विज्ञान में बाधा डाल रहा है, क्योंकि अब विज्ञान एक दुनिया, वन वर्ल्ड पैदा कर रहा है, और राजनीतिज्ञ को लग रहा है कि मेरी राजनीति गई। तो अब राजनीतिज्ञ कह रहा है कि यह तो बड़ा मुश्किल है। राजनीति नहीं जानी चाहिए। धर्मगुरु चला गया, अब राजगुरु के जाने का मौका आ रहा है। विज्ञान के खिलाफ वह अड़ंगे डाल रहा है। लेकिन वह भी नहीं जीतेगा। पक्ष फिर विज्ञान के पक्ष में है। सत्य फिर विज्ञान के साथ है। विज्ञान का अर्थ ही हैः सत्य की खोज। और सत्य जीतता चला जाएगा। इसलिए यह मत कहिए कि विज्ञान लड़ा रहा है।
एटम बनाया है विज्ञान ने यह सच है, अणु शक्ति खोजी है। लेकिन अणु शक्ति से आप आदमियों को मारें, यह किस वैज्ञानिक ने कहा है? शायद आपको पता न होगा, सारे दुनिया के पांच हजार वैज्ञानिकों ने दस्तखत करके यू.एन.ओ. को दिए हैं कि हम जो शक्तियां खोज रहे हैं, वह इसलिए नहीं खोज रहे हैं कि उनके द्वारा हत्या की जाए। लेकिन उनकी कौन सुनता है? हिरोशिमा पर एटम बम गिरा, तो सारे दुनिया के वैज्ञानिकों की बुद्धि चौंक गई, उनकी समझ में नहीं आया कि हमने इसलिए बनाया था कि एक लाख आदमी मर जाएगा कुछ घड़ी में?

अणु की शक्ति तो इतनी सृजनात्मक है कि अगर अणु की शक्ति खेतों में उपयोग की गई, कारखानों में उपयोग की गई, तो दुनिया से दरिद्रता हमेशा के लिए मिट जाएगी। और जैसा हम सुनते हैं कि देवता तरसते हैं पृथ्वी पर पैदा होने को, अब तक तो नहीं तरसे, लेकिन अगर अणु शक्ति का प्रयोग हुआ तो देवता अर्जी लगा कर, क्यू लगा कर खड़े हो जाएंगे कि हमको पृथ्वी पर पैदा होना है। लेकिन राजनीतिज्ञ विज्ञान जो शक्ति पैदा कर रहा है उसका समुचित सृजनात्मक, क्रिएटिव उपयोग नहीं होने देना चाहता। क्योंकि राजनीति मूलतः हिंसा पर खड़ी है। हिंसा ही राजनीति है। तो वह हिंसक राजनीतिज्ञ का क्या होगा? वह बाधा डाल रहा है, विज्ञान बाधा नहीं डाल रहा है।
इसलिए दुनिया को धर्मों से मुक्त होने की जरूरत है, और राजनीतिज्ञों
से भी, ताकि जीवन की सारी चिंतना धीरे-धीरे-धीरे-धीरे वैज्ञानिक होती चली जाए, और हम जीवन को सुंदर से सुंदर बनाने में समर्थ हो सकें। यह हो सकता है। यह इसके पहले कभी नहीं हो सकता। और अगर यह नहीं हुआ तो राजनीतिज्ञ सारी दुनिया की हत्या का कारण बन जाएंगे। सारी दुनिया की हत्या का कारण वे बनेंगे।
आज हम समुद्र से भोजन निकाल सकते हैं और समुद्र में इतना भोजन पड़ा है,
कि अभी जमीन की आबादी साढ़े तीन अरब है, अगर जमीन की आबादी तीन सौ अरब भी हो जाए तो किसी आदमी को भूखा मरने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन साढ़े तीन अरब में ही हम भूखे मरने शुरू हो गए हैं। आधी दुनिया भूखी मर रही है। क्योंकि आणविक शक्ति का समुद्रों में प्रयोग करके समुद्र से भोजन निकाला जा सकता है। वह भोजन निकाले कौन? हमें तो एटम बम बनाना है, पड़ोसी पर डालने को! पड़ोसी को भी एटम बम बनाना है, हम पर डालने को! पड़ोसी भी भूखा मर रहा है, हम भी भूखे मर रहे हैं। और दोनों के नासमझ राजनीतिज्ञ, दोनों को बरगला रहे हैं और धोखा दे रहे हैं कि लड़ने में तुम्हारा हित है। लड़ने में किसी का भी हित नहीं है। किसी का भी हित नहीं है, नक्शों पर लकीरें बदल जाने में किसी का भी हित नहीं है। लेकिन बड़े मजे की बात है, चीन और हिंदुस्तान लड़े, समझ में आता है। महाराष्ट्र और मैसूर भी लड़ते हैं, तब सिर ठोंक लेने का मन होता है कि हद हो गई!
पागलों के हाथ में सारा का सारा मामला मालूम होता है। अगर दुनिया में कोई ताकत उतर आए और सारी राजधानियों के राजनीतिज्ञों को पकड़ ले और पागलखानों में डाल दे, तो दुनिया आज शांत हो जाए, अभी शांत हो जाए। सारे पागल राजधानियों में इकट्ठे हो गए हैं और उन्होंने सारी दुनिया को मैड हाउस बना दिया है।
अब जहां आज मिसाइल्स रखे हुए हैं रूस ने और अमरीका ने, एक चाबी एक आदमी घुमा दे और सब गड़बड़ हो जाए। तो एक-एक मिसाइल की चाबी तीन-तीन आदमियों को दी हुई है। जब तीन आदमी चाबी लगाएं, तब मिसाइल चल सकता है, अणु बम फेंका जा सकता है। क्योंकि खतरा है, एक आदमी का झगड़ा हो जाए पत्नी से, और वह गुस्से में आ जाए, और गुस्से में आदमी को क्या नहीं सूझता, सोचता है, खत्म करो! और एक आदमी का अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया, वह मिसाइल पर लादे एटम या हाइडरेजन बम फेंक दे न्यूयार्क पर या मास्को पर, तो आग लग जाए, सारी दुनिया इसी वक्त बर्बाद हो जाए। तो तीन-तीन आदमियों को चाबी दी है। लेकिन तीन आदमी सांठ-गांठ कर लें तो? या तीन आदमियों का दिमाग खराब हो जाए? हजारों आदमियों का एक साथ दिमाग खराब हो जाता है तीन की क्या बात है?
हिंदू-मुस्लिम दंगा हुआ तो हमने नहीं देखा कि हजारों आदमी एक साथ पागल हो गए। तीन आदमी का दिमाग खराब नहीं हो सकता है? तीन आदमी जरा ज्यादा शराब पी जाएं? आज दुनिया में कोई पचास हजार उदजन बम इकट्ठे हैं और इन इकट्ठे उदजन बमों से कितना बड़ा खतरा पैदा हो सकता है, इतनी आग कि इस तरह की सात पृथ्वीयां जल कर नष्ट हो जाएं। इस खतरे पर हम बैठे हैं और राजनीतिज्ञों के हाथ में ताकत है। और आप पूछते हैं कि विज्ञान खतरा ला रहा है? विज्ञान खतरा नहीं ला रहा है। विज्ञान सिर्फ ताकत ला रहा है। ताकत गलत लोगों के हाथ में पड़ जाती है, तो खतरा शुरू हो जाता है।
ताकत तो शुभ है, या कहना चाहिए, ताकत न शुभ है, न अशुभ है। ताकत के उपयोग पर निर्भर करता है कि हम क्या उपयोग करते हैं। लेकिन हमारा चिंतन

अगर वैज्ञानिक न हो तो बड़ी गड़बड़ हो जाती है। एक आदमी यहां आकर खड़ा हो कर कह देता है कि हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया, और हम लड़ना शुरू कर देते हैं। कोई भी नहीं पूछता कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है? कैसे पता चला कि मैं हिंदू हूं? कुछ मालूम नहीं है, कहीं लिखा हुआ नहीं है। भगवान के यहां से कोई सर्टिफिकेट लेकर नहीं आता कि यह हिंदू है। कहीं चमड़ी पर खुदा हुआ नहीं है कि यह हिंदू है। सिर्फ बचपन से सिखाया गया इस आदमी को कि तू हिंदू है, तू हिंदू है, तू हिंदू है, वह बेचारा चिल्ला रहा है कि मैं हिंदू हूं! फलां को सिखाया कि तू मुसलमान है, वह चिल्ला रहा है, मैं मुसलमान हूं! ये दो शब्द सिखा दिए, और ये दो शब्द एक-दूसरे की छाती में छुरा भौंक देंगे! कैसा पागलपन है? दो शब्दों की शिक्षा कि मैं हिंदू हूं, और एक आदमी मुसलमान है, और छुरे चल जाएंगे, और एक-दूसरे की छाती में घुस जाएंगे! और धर्म गुरु कहेगा, घबड़ाओ मत, धर्म के जेहाद में जो मरता है, वह स्वर्ग जाता है! धर्म का जेहाद हो सकता है? धर्म के जेहाद में जो-जो मरेंगे, अगर कहीं नर्क है, तो उस नर्क से कभी नहीं छूट सकते। क्योंकि धर्म का जेहाद नहीं हो सकता। धर्म का? क्या हिंसा हो सकती है धर्म से? धर्म से युद्ध हो सकता है? तो फिर अधर्म से क्या होगा?
राजनीतिज्ञ और धर्मगुरु ने पीड़ित किया है जगत को। इसलिए मैंने इन तीन दिनों में कहा कि हमारे पास एक साइंटिफिक एटिट्यूड, सोचने का एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना जरूरी है।
एक-दो छोटे प्रश्न और हैं, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।
एक मित्र ने पूछा है कि आप डिस्ट्रक्शन पर, विध्वंस पर बहुत जोर देते हैं। कंस्ट्रक्शन पर इतना जोर क्यों नहीं देते, निर्माण पर इतना जोर क्यों नहीं देते?
पहली तो बात यह, एक आदमी बीमार पड़ा हो, पैर सड़ गया हो और वह सर्जन के पास जाए और सर्जन कहे, पैर काटना पड़ेगा। वह आदमी कहे, विध्वंस की क्यों बातें करते हैं, निर्माण की बात करिए, कंस्ट्रक्शन की बात करिए। तो वह सर्जन कहेगा, तो जाइए, लेकिन कल तक, जब तक आएंगे, तब तक दोनों पैर काटना पड़ेंगे, और अगर परसों तक आए, तो फिर बचना मुश्किल है।
समाज सड़ गया है, सब अंग सड़ गए हैं, और आप कह रहे हैं रचनात्मक? वे जितने लोग रचनात्मक कार्यक्रम चला रहे हैं, वे सब इसी सड़े-गले समाज को बचाने की कोशिश कर रहे हैं। थेगड़े लगा रहे हैं इसी समाज को। मकान गिरने के करीब है, सब दब कर मर जाएंगे उसमें। वे इसी में बल्लियां लगा रहे हैं, पलस्तर बदल रहे हैं, बोर्ड पेंट कर रहे हैं, दरवाजों पर नया रंग-रोगन कर रहे हैं। कंस्ट्रक्टिव वर्क कर रहे हैं, रचनात्मक कार्यक्रम कर रहे हैं। सर्वोदय का आंदोलन चला रहे हैं। उसी समाज में, जो सड़ गया है!
उस सड़े समाज में जो भी रचना का काम कर रहा है, वह उस सड़े समाज को बचाने
की कोशिश कर रहा है, वह उसको जिलाए रखने की कोशिश कर रहा है। वे मरे-मरे आदमी को आक्सीजन पीला रहे हैं कि किसी तरह बच जाए। क्यों? इतना बचाने का मोह क्या है? जो मर गया है, उसे मर जाने दो। नया सदा जिंदा होने को है। नया सदा पैदा होता है। पुराने पत्ते गिरते हैं पतझड़ में, वृक्ष चिल्ला कर नहीं कहते कि हे परमात्मा, यह क्या विध्वंस कर रहे हो, सब पुराने पत्ते गिराए दे रहे हो, हम बिल्कुल नंगे हो जाएंगे। नहीं, वृक्ष नहीं कहते। वृक्षों की अपनी वि.जडम है, अपना ज्ञान है। वे जानते हैं कि जो पुराने पत्ते गिरे, उन्हीं जगह से नये पत्ते निकल आएंगे। पुराने का विध्वंस होना जरूरी है, ताकि नये का जन्म हो।
और ध्यान रहे, विध्वंस सृजन की प्रक्रिया का पहला चरण है। विध्वंस विध्वंस ही नहीं है। विध्वंस के बिना सृजन ही नहीं होता। विध्वंस बनाने की प्रक्रिया का हिस्सा है। तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तोड़ डालो, क्योंकि तोड़ने में बहुत मजा आता है। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि तोड़ो ताकि बनाया जा सके। लेकिन बनाने के पहले इस सड़े-गले को तोड़ना जरूरी हो गया।
इस पर क्यों जोर दे रहा हूं? इस पर जोर इसलिए दे रहा हूं कि इसे हम तोड़ने को राजी हो जाएं, तो फिर बनाने का भी विचार किया जाए। लेकिन आप कहते

हैं, तोड़ने की बात मत करिए, बनाने के संबंध में कुछ समझाइए? और आपको बनाने के संबंध में समझाया जाए, तो आप इसी सड़े-गले समाज में बनाने की कोशिश करेंगे। और अब यह समाज आमूल जड़ से सड़ गया है, इसे उखाड़ना जरूरी है।
लेकिन हमें विध्वंस से बड़ा डर लगता है। जिसने पूछा है, उन्होंने बड़े
भय से पूछा, लगता है। उन्होंने पूछा, विध्वंस ही विध्वंस, तोड़ो ही तोड़ो, बहुत डर लगता है। इतना डर क्या है तोड़ने से? क्या बनाने की ताकत बिल्कुल नहीं बची है, कि तोड़ने से इतना डर पैदा होता है? बनाने की ताकत हो, तोड़ने से कोई डर नहीं है। यह बात जरूर है कि तोड़ने के लिए तोड़ने का कोई मतलब नहीं है।
मैं नहीं कहता कि तोड़ने के लिए तोड़ो, डिस्ट्रक्शन फॉर डिस्ट्रक्शंस सेक, यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं, डिस्ट्रक्शन फॉर क्रिएशंस सेक, विध्वंस सृजन के लिए। और निर्माण की बात मैं नहीं कह रहा हूं, मैं बात कह रहा हूं सृजन की। कंस्ट्रक्शन और क्रिएशन में फर्क ख्याल है आपको? सृजन में और निर्माण में क्या फर्क है? निर्माण पुराने का ही लीप-पोत कर बनाया हुआ ढोंग-धतूरा होता है। सृजन नये का जन्म है। निर्माण ऐसे है, जैसे एक बूढ़े आदमी की एक टांग टूट गई तो लकड़ी की टांग लगा दी, एक आंख फूट गई तो पत्थर की आंख लगा दी, एक हाथ उखड़ गया तो एक नकली हाथ लगा दिया, दांत निकल गए तो नकली दांत लगा दिए। यह निर्माण है। यह रचनात्मक कार्यक्रम है। सृजनात्मक का मतलब है कि बूढ़ा अब विदा होने के करीब आ गया, उसे प्रेम से विदा कर दो। दुनिया में नये बच्चों के लिए जगह बनाओ। आने दो, नया बच्चा भगवान देने को तैयार है। सृजन का मतलब हैः नया और निर्माण का मतलब हैः वही पुराना।
लेकिन कुछ लोग होते हैं, मैंने सुना है, एक आदमी ने शादी की। बड़ी उम्र में शादी की, चालीस साल का हो गया, तब शादी की। बहुत दिन तक लोगों ने देखा कि अब शादी का निमंत्रण मिलेगा, अब मिलेगा। मिला ही नहीं, फिर लोग भूल ही गए कि अब शायद नहीं मिलेगा। चालीस साल में निमंत्रण मिला। लोग बड़े चौंके! एक मित्र नहीं जा पाया शादी में। महीने भर बाद एक होटल से दूल्हा और दुल्हन बाहर निकलते थे। वह मित्र नहीं जा पाया था, उससे क्षमा मांगने के लिए रुका। लेकिन दुल्हन को देख कर तो वह बहुत हैरान हो गया! सब बाल नकली थे। आंख एक पत्थर की थी। जरा सा मसल हिलती थी तो दांत खड़खड़ाते थे, सब नकली थे। एक टांग लकड़ी की थी, एक हाथ था ही नहीं। उसने कहा, मेरे भगवान! इससे शादी की है तुमने? इस मरी हुई स्त्री से तुमने शादी की है? उस आदमी ने खिलखिला कर हंस कर कहा, घबड़ाओ मत, जोर से बोलो, बेफिक्री से, शी इ.ज डेफ टू, वह बहरी भी है, तुम घबराओ मत, यह उसे नहीं सुनाई पड़ता।
यह आदमी बड़ा रचनात्मक दृष्टि का रहा होगा। यह जो दुल्हन लाए हैं, बड़ी कंस्ट्रक्टिव है। इस मुल्क में ऐसे कंस्ट्रक्शन करने वाले बहुत लोग हैं। वे कहते हैं, पुराने को टीम-टाम, ठीक-ठाक करके, फिर लीप-पोत कर खड़ा कर दो। लेकिन नये के सृजन की हिम्मत हमने खो दी है। नये का सृजन करना हो तो पुराने का विध्वंस करना जरूरी है। पुराने को जाने दें; नया आ सके, जगह खाली हो। हिरोशिमा पर, नागासाकी पर एटम बम गिरा, तो लोग सोचते थे, अब हिरोशिमा
और नागासाकी कभी भी पनप नहीं सकेंगे। सब बंजर हो गया, सब जमीन से मिल गए मकान, सब दरख्त टूट गए, सब बदल गया, सब खत्म हो गया, वीरान हो गया। लेकिन जाओ--अभी मेरे मित्र लौटे जापान से, वे कहने लगे, मैं दंग रह गया। हिरोशिमा देखा, बिल्कुल नया हो गया। और हिरोशिमा के लोग कहते हैं कि बड़ी कृपा रही कि एटम हम पर ही गिरा, दूसरे नगर पर नहीं गिरा। सब पुराना खत्म हो गया। पुराने झोपड़े, मकान, पुराना सब खत्म हो गया। एकदम सब नया बन सका।
वहां जर्मनी में इतना विध्वंस हुआ--युद्ध से गुजरे, पहले महायुद्ध से गुजरे। लोग सोचते थे, अब सौ वर्ष लग जाएंगे जर्मनी को लड़ने के लिए तैयार होने में। वह पंद्रह साल में फिर तैयार हो गया। फिर दूसरे महायुद्ध में कितना भयंकर विध्वंस हुआ। दुनिया की सारी ताकतें लग कर जर्मनी को रौंद डाली। आज जाकर जर्मनी को देखें, वह फिर नया हो गया। और हिंदुस्तान में पता है, युद्ध कब से नहीं हुआ। महाभारत के बाद नहीं हुआ। पांच हजार साल कम से कम, और महाभारत का भी हुआ कि नहीं, कहना बहुत कठिन है। उससे जो विध्वंस हो

गया महाभारत के युद्ध से, वह अभी तक पूरा नहीं हो पाया। अभी भी जाएं पूना में, खोजें गली-कूचे में, वह मकान मिल जाएगा जो महाभारत के जमाने में बना होगा, जिसमें कौरव-पांडव ठहरे होंगे। जरूर मिल जाएगी वह जगह जहां रामचंद्र जी निकले होंगे। और जहां सीता जी ठहरी हुई होंगी जिस झाड़ के नीचे, वह जरूर पूना में होगा। सब जगह हैं वे। वे मिटते ही नहीं। कोई विध्वंस नहीं हुआ इस मुल्क में, तो भी यह सड़ा हुआ जी रहा है। और बहुत इकट्ठा हो गया कचरा। मैं यह नहीं कहता हूं कि युद्ध हो जाए। मैं यह कहता हूं, हमें खुद ही हिम्मत जुटानी चाहिए पुराने को जाने देने की। और पुराने को जाने देंगे तो नये को बनाना ही पड़ेगा, क्योंकि बिना बनाए हम नहीं रह सकते। एक बार पुराने को जाने देने का साहस जब इकट्ठा कर लेती है कौम, तो नये को बनाने में लग जाती है।
आपको शायद अंदाज न हो, इस समय पृथ्वी पर जिन दो मुल्कों में अदभुत प्रगति हुए है, जैसी कभी नहीं हुई थी। उन दोनों मुल्कों की प्रगति का कारण आपको पता है? रूस ने उन्नीस सौ सत्रह में पुराने को विदा दे दी, नमस्कार कर ली। और कोई कारण नहीं है रूस की प्रगति का। पचास साल में रूस में इतनी प्रगति हुई है, जितनी हम जैसे लोग पांच हजार साल में नहीं कर सकते। पचास साल में रूस क्या से क्या हो गया। लेकिन क्या किया रूस ने? राज क्या है? सीक्रेट क्या है? सीक्रेट यह है कि उन्नीस सौ सत्रह की तारीख में कसम खाकर उन्होंने पीछे को नमस्कार कर लिया कि तुम पीछे, हम आगे जाते हैं। अब हमें क्षमा करो, अब हमारे ऊपर सिर पर मत सवार रहो। अमरीका ने इतनी प्रगति क्यों की, आपको पता है? अमरीका नया मुल्क है। उसके पास कोई पुराना अतीत नहीं है। उसकी उम्र ही केवल तीन सौ साल की है। तीन सौ साल कुल उनकी सयता की उम्र है। उसके पास पुराना कुछ है ही नहीं। कोई इतिहास जैसी चीज नहीं है। कोई अतीत नहीं है। इसलिए अमरीका ने आकाश छू लिया। संपत्ति का इतना निर्माण हुआ, जैसा कभी न हुआ। शक्ति इस तरह फूटी, जिस तरह कभी नहीं फूटी। आज सारी दुनिया को भोजन दे रहे हैं।
एक हम हैं, पांच हजार साल से सिवाय खेती के और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। मुल्क के नब्बे आदमी सौ में से खेती में लगे हैं। बाकी दस में से आठ भी वह खेती में जो लगे हैं, वे उनकी चीजें लाने, ले जाने की दलाली कर रहे हैं। सारा मुल्क पांच हजार साल से खेती कर रहा है और जब देखो तब हाथ जोड़े खड़ा है कि अकाल पड़ गया, भूख हो गई, फलांना हो गया। और अब तो बीस साल से हम युनिवर्सल बैगिंग कर रहे हैं, खड़े हैं सारी दुनिया के सामने भिखारी बने हुए, हमको भीख दो। और जिनसे भीख मांग रहे हैं, उनको गाली दे रहे हैं कि तुम, तुम मैटीरियलिस्ट हो, हम स्प्रिचुअलिस्ट हैं! क्योंकि हम पैदा करते, हम सिर्फ मांगते हैं। हम भी पैदा करते हैं, सिर्फ एक चीज पैदा करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं। हम आध्यात्मिक लोग हैं। भौतिक लोग गेहूं पैदा करते हैं, गेहूं पदार्थ है। भौतिक लोग मशीनें बनाते हैं, कारें बनाते हैं। हम आध्यात्मिक, हम आत्माएं पैदा करते हैं। हम बच्चे पैदा करते हैं। हम, सिर्फ एक इंडिस्ट्री है हमारी, बच्चे पैदा करने की, वह हम करते जाते हैं। अमरीका तीन सौ वर्ष में आसमान छू लिया, हम तीन हजार वर्ष में भी कुछ नहीं कर पाते। रूस ने पचास साल में कैसी गति की, जिसकी कल्पना करनी मुश्किल है, और हम? हो क्या गया है हमें? हम तोड़ने से डर गए हैं। हम तोड़ते ही नहीं, हम उसी को बचाए चले जाते हैं, बचाए चले जाते हैं।
मैं एक घर में कुछ दिन तक मेहमान था। बहुत लखपती आदमी थे, जिनके घर मैं ठहरा। लेकिन देख कर हैरान हो गया, घर देखा तो ऐसा लगा जैसे किसी कबाड़ी का घर हो। पुराने डिब्बे भी इकट्ठे हैं, पुरानी बुहारियां भी, जो टूट गई, ठूंठ रह गई, जिनसे अब कोई उपाय झाड़ने का नहीं है, वह भी सम्हाल कर रखी हुई हैं! उस घर से कभी कोई चीज फेंकी ही नहीं गई ऐसा मालूम पड़ता है, वहां सब इकट्ठा ही है। घर के लोगों को रहने की मुसीबत हो गई है। न मालूम बापदादों की शादी हुई होगी, तो उनके साथ जो ट्रंक सूटकेस आए होंगे, वे सब रखे हुए हैं, ढेर लगा हुआ है! दो-चार-दस पीढ़ी पहले जिन पलंग पर उनके घर में कोई सोता होगा, उनकी निवाड़ और उनके टूटे हुए अंग भी रखे हुए हैं! वह घर एक ऐतिहासिक नमूना है। उस घर में जिंदा आदमी का रहना मुश्किल है, क्योंकि मरे हुए के इतने सामान

वहां इकट्ठे हैं। मैंने उनसे पूछा, यह काहे के लिए इकट्ठे किए हुए हो? इनको फेंको। वे कहने लगे, पता नहीं, कब कौनसी चीज काम पड़ जाए।
यही भारत का दिमाग है। कुछ फेंको मत, सब बचा कर रखो! पता नहीं कब किस चीज की जरूरत पड़ जाए। जरूरत किसी चीज की नहीं पड़ेगी, सिर्फ अरथी की पड़ेगी, और उसमें हमारी अरथी निकलेगी। और यह सब सामान यहीं रखा रहेगा, हमारी अरथी निकल जाएगी। अगर विध्वंस की तैयारी नहीं है, तो विध्वंस होगा। उसमें हम मरेंगे। सामान बच जाएगा, इतिहास की किताबें बच जाएंगी, गीता-रामायण सब बच जाएंगी, आदमी मर जाएगा। अब दो में से एक निर्णय करना है, या तो आदमी को बचाना हो, तो इस सामान को आग लगाओ, फेंको, अलग करो इसे और जगह बनाओ। स्पेस की कमी पड़ गई है, चित्त में जगह नहीं रह गई है, इतना कबाड़ इकट्ठा है। इसमें जगह बनाओ, ताकि इस जगह में नया आ सके, नया अंकुर आ सके।
तो विध्वंस से मुझे कोई रस नहीं है। कोई मुझे मजा नहीं आता कि चीजें टूट जाएं तो मुझे बहुत मजा आएगा। विध्वंस के लिए जो कहता हूं, उसका कुल कारण इतना है कि वह मार्ग साफ करेगा। जैसे कोई आदमी एक जमीन पर बगीचा लगाए, तो पहले घास-पात को उखाड़ कर फेंक देता है, जमीन को खोद कर जड़ें निकाल कर फेंक देता है। आप खड़े हैं दरवाजे के बाहर और कह रहे हैं, क्या यह विध्वंस कर रहे हो? अरे बीज बोओ, निर्माण करो। घास है तो रहने दो, जड़ें पुरानी हैं तो रहने दो, तुम तो बीज बोओ, निर्माण करो! हम निर्माण को मानते हैं। हम घास को उखाड़ेंगे नहीं, हम जड़ों को उखाड़ेंगे नहीं। वह आदमी कहेगा फिर? फिर बीज खो जाएंगे घास में, फूल पैदा नहीं होंगे। घास-पात इतना इकट्ठा हो गया है कि उसे साफ करना जरूरी है। देश के चित्त की भूमि साफ करनी जरूरी है। कोई चीजें तोड़ने का उतना सवाल नहीं है जो मैं कह रहा हूं। जो मैं कह रहा हूं वह जो माइंड है हमारा, वह जो जरा-जीर्ण हो गया चित्त है, उसे तोड़ने और बदलने का सवाल है ताकि वह नया हो सके। और वह नया हो सके तो भारत की प्रतिभा का जन्म हो सकता है।
और मैं आपसे अंत में यह कहना चाहता हूं, अगर भारत यह हिम्मत कर ले और नये चित्त का स्वागत करने को तैयार हो जाए, तो शायद भारत में इतनी प्रतिभा प्रकट हो, जितनी दुनिया का कोई दूसरा देश प्रकट नहीं कर पाया। उसका कारण है। जैसे कोई खेत बहुत दिन तक बंजर पड़ा रहे, उस पर कोई खेती-बाड़ी न हो और पड़ोस के खेतों पर खेती-बाड़ी होती रहे। तो जिन खेतों में खेती-बाड़ी होती रही है, वे अपशोषित हो जाते हैं। उनका सारा का सारा जो भी सार तत्व है, वे वृक्ष पी जाते हैं। फिर खेती क्षीण होने लगती है, फिर कम फसल होने लगती है। और खेत पड़ा है, जिसमें हजारों साल से खेती नहीं हुई, खाली पड़ा है। उस पर अगर आज कोई दाने फेंक दें, तो सारे पड़ोस के खेत पीछे पड़ जाएं, उसमें जो फसल आए, उसका मुकाबला न हो। भारत अगर नया होने की तैयारी कर ले, तो शायद भारत से बड़ी प्रतिभा खोजना पृथ्वी पर मुश्किल है। लेकिन हमारी नये होने की तैयारी न हो, तो फिर सिवाय निराशा के भविष्य में और कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
लेकिन निराश होने का मैं कोई कारण नहीं देखता हूं। मुझे लगता है कि नया हुआ जा सकता है। नये के सूत्र खोजे जा सकते हैं। नये को आमंत्रित किया जा सकता है।

(द्वार बंद है। द्वार खोल दें, सूरज की किरणें अपने आप आ जाएंगी।
पुरानी हवाएं, सड़ी हवाएं, अपने आप बाहर निकल जाएंगी। द्वार-खिड़की खोल दें, नई हवाएं आ जाएंगी। हम द्वार-खिड़की-दरवाजे जब बंद करके भीतर बैठे हैं। सांस घुट गई है--न रोशनी आती है, न हवाएं आती हैं, न नये बादल झांकते हैं। कुछ भी नया नहीं होता। कि हम बैठे हैं और किसी प्रतीक्षा में? भाग्य की प्रतीक्षा में कि कुछ होना होगा तो भगवान करेगा। घंटी बजा रहे हैं वहीं, वहीं, अपने ही बनाए हुए भगवान रखे हैं, उसी अंधेरी कोठरी में!)
(नाट इन द टेप)

स्वयं चंदन टीका लगा रहे हैं, वहीं भोग लगा रहे हैं। खुद भूखे बैठे हैं, भगवान को भोग लगा रहे हैं। घंटी बजा रहे है, भजन-पूजन चल रहा है कि हे भगवान, रोशनी भेजो! और दरवाजे बंद हैं। हे भगवान, नया करो सब! हे भगवान,

सांस घुटी जा रही है, नया झोंका भेजो! लेकिन भाग्य की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।
एक छोटी कहानी और बात मैं पूरी करूं।
मैंने सुना है, एक बार ज्योतिषियों ने यह खबर की कि सात साल तक पानी नहीं गिरेगा। एक किसान बेचारा अपने खेत की तैयार कर रहा था। वर्षा आने के करीब थी। छोटी-छोटी बदलियों ने निकलना शुरू कर दिया था। वह खेत खोद रहा था। सुनी खबर लोगों ने कहा, सुना ज्योतिषी कहते हैं, सात साल तक अब वर्षा नहीं होगी! तो उसने अपना सामान हल-बक्खर उठा कर मकान के भीतर सम्हाल कर रख दिए कि जब वर्षा ही नहीं होगी, तो फिर खेत क्या तैयार करना! सात दिन घर में बैठे-बैठे बहुत घबड़ा गया, हाथ-पैर ढीले पड़ गए। सोचा कि सात दिन में यह हालत हो गई मरने की। कुछ न करूंगा तो सात साल में तो मैं नहीं बचूंगा और अगर बच भी गया मरा-खुरा किसी तरह, तो सात साल में खेती कैसे की जाती, यह न भूल जाऊं? तो उसने सोचा, जब होगा, जो होगा; हम खेत तो खोदे हीं। खेत तो खोदते ही रहें, कम से कम अभ्यास तो जारी रहेगा, कम से कम जानते तो रहेंगे कि खेती कैसे की जाती है। उसने आकर बाहर सात दिन बाद खेत खोदना शुरू कर दिया।
एक छोटी सी बदली ऊपर से निकलती थी, उसने कहा, अरे मूर्ख किसान, तुझे पता नहीं कि ज्योतिषियों ने कहा है, वर्षा सात साल तक नहीं होगी! क्या कर रहा है यह, सुना नहीं तूने?
उस किसान ने कहाः मैंने सुना है देवी! सात दिन बैठा रहा, बैठे-बैठे घबड़ा गया। बैठना तो मौत हो गई। मैंने सोचा, कहीं भूल न जाऊं सात साल में? कहीं मर न जाऊं? कहीं भूल गया खेती करना, तो वर्षा भी होगी तो किसी काम पड़ेगी। इसलिए मैं अपना काम जारी रखे हूं। जब होगी वर्षा, तब ठीक है। तब तक कम से कम काम का अभ्यास तो रहेगा।
उस बदली ने सोचा, यह भी ठीक कहता है। कहीं सात साल में ऐसा न हो कि मैं पानी बरसाना भूल जाऊं? भाड़ में जाएं ज्योतिषी! उसने वहीं पानी बरसा दिया। सात साल में भूल गए पानी बरसाना, तो और मुश्किल हो जाएगी।
जो श्रम करता है, वहां भाग्य आ जाता है। भाग्य श्रम की छाया है। और हम भाग्य की प्रतीक्षा कर रहे हैं। और देख रहे हैं कि जो होगा उसे देखते रहेंगे। तमाशबीन की तरह खड़े हुए हैं। राहगीर जैसे दर्शक एक-दूसरे को देख रहा हो कि क्या हो रहा है। ऐसे भारत की प्रतिभा नहीं जन्म सकती है।
इन तीन दिनों में ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।

(भारत में वर्षा हो सकती है, भारत में भी समृद्धि आ सकती है, असीम प्रतिभाओं का जन्म हो सकता है, यदि हम पुराने को हटा कर, नये की जगह बना दें। पुराने का विध्वंस कर दें, नये को आमंत्रित करें तो निश्चित ही प्रतिभाओं का जन्म होगा, नई संपदा का जन्म होगा। मैं जो कह रहा हूं, उसे मान मत लें; उस पर सोचें, विचार करें, और ठीक लगे तो नये श्रम में लग जाएं।) (नाट इन द टेप)

मेरी बातों को इतने प्रेम और इतनी शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत की खोज
सातवां प्रवचन

कुछ और
(Note- incomplete discourse in beginning)

...इसमें कोई श्रद्धा-विश्वास की जरूरत नहीं, मैं पांच मील चल सकता हूं। होना चाहिए कि मैं एक घंटे में पांच मील चल सकता हूं। इसमें कोई श्रद्धा-विश्वास की जरूरत नहीं, मैं पांच मील चल सकता हूं। मुझे अपनी शक्तियों का ज्ञान होना चाहिए। और मैं विश्वास करूं कि मैं पच्चीस मील चल सकता हूं, तो मरूंगा, झंझट में पडूंगा। जबरदस्ती कर लिया तो झंझट में पड़े, क्योंकि वह सीमा के बाहर हो जाएगा। और कम किया तो भी नुकसान में पड़ जाएंगे, क्योंकि वह सीमा के नीचे हो जाएगा।
इसलिए मैं कहता हूं, आत्म-ज्ञान होना चाहिए हमें अपनी सारी शक्तियों का। हम क्या कर सकते हैं, क्या नहीं कर सकते हैं, वह सबका हमें पता होना चाहिए। और उस पता होने पर, उस ज्ञान के होने पर, हम उसके अनुसार जीते हैं। आत्म-ज्ञान होना चाहिए और आत्म-ज्ञान अपने आप श्रद्धा बन जाता है। जो आदमी जानता है, मैं पांच मील चल सकता हूं, वह पांच मील चलने के लिए हमेशा तैयार है, उसे कोई भय नहीं है इसका। लेकिन होता क्या है, होता क्या है हम गलत चीजों में श्रद्धाएं कर लेते हैं। जैसे एक आदमी श्रद्धा कर ले कि मैं मर नहीं सकता हूं, वह बिल्कुल पागलपन की बातें कर रहा है। कितनी जबरदस्ती करो, इससे क्या होने वाला है? कितनी ही जबरदस्ती करो। आत्म-ज्ञान होना चाहिए, और उससे आत्म-श्रद्धा अपने आप बन जाती है, उसको कुछ बनाने की जरूरत ही नहीं है। पर उसको श्रद्धा कहने की भी कोई जरूरत नहीं है। और जो लोग कहते हैं, जबरदस्ती श्रद्धा करनी चाहिए, वे कमजोर लोग होते हैं हमेशा। वे कमजोरी को पूरा कर रहे हैं श्रद्धा करके। कभी भी सचमुच अपने को जानने वाला आदमी न श्रद्धा करता है, न अश्रद्धा करता है। वह जानता है, वह उसके अनुसार जीता है।
लेकिन एक डरपोक आदमी है, डरा हुआ आदमी है, वह कहता है, मैं बिल्कुल नहीं डरता, मुझे अपने पर बड़ी श्रद्धा है। लेकिन वह डरा हुआ आदमी है, इसलिए ये बातें कह रहा है। जो डरा हुआ है, वही यह कहता है कि मेरी जबरदस्त श्रद्धा है।
मेरे एक शिक्षक थे, जिस स्कूल में मैं पढ़ता था। वे मुझे पांचवीं अंग्रेजी पढ़ाते थे। वे पहले ही दिन पढ़ाने आए, तभी मुझे लगा कि यह आदमी बहुत कावर्ड और डरा हुआ आदमी है। क्योंकि पहले ही दिन उन्होंने कहा कि मैं किसी विद्यार्थी से डरता नहीं हूं। पर यह कोई बात कहने की कि विद्यार्थी से डरता नहीं! तो मेरी कक्षा में अगर किसी ने गड़बड़ की तो ठीक नहीं होगा। मैं बहुत खतरनाक आदमी हूं। मैं अंधेरे रास्ते में अकेला चला जाता हूं। तो मैंने उनको एक चिट्ठी लिख कर भेजी। उसी वक्त मैंने उनको चिट्ठी लिखी। और चिट्ठी में मैंने लिखा कि आपने अपनी स्थिति जाहिर कर दी है और लड़के आपको डराएंगे। और आप जब यह कहते हैं कि मैं अंधेरे में जाने से नहीं डरता, तो इससे पक्का पता चलता है कि आप अंधेरे में जाने से डरते हैं। नहीं तो पता ही नहीं चलना चाहिए, अंधेरा है कि उजाला। जिस आदमी को जाना है, वह चला जाता है। उसको पता ही नहीं चलता है कि अंधेरा था।
तो इसलिए आत्म-श्रद्धा, जबरदस्त श्रद्धा, ये सब किसी बात की बातें हैं। हमको अपने को जानना चाहिए। और जानने में हमेशा दो बातें पता चलेंगी। यह भी पता चलेगा, हम कितना कर सकते हैं और यह भी पता चलेगा, हम कितना नहीं कर सकते हैं। और बुद्धिमान आदमी को दोनों बातें जाननी चाहिए कि हम यह कर सकते हैं और यह हम नहीं कर सकते हैं।
एक मुसलमान, मोहम्मद के बाद अली हुए न, तो अली से किसी ने पूछा कि हमारी ताकत कितनी है? तो अली ने उससे कहा कि तुम अपना एक पैर ऊपर उठा लो। उसने अपना बायां पैर ऊपर उठा लिया। फिर अली ने कहाः अब तुम दूसरा पैर भी ऊपर उठा लो। उसने कहाः यह कैसे हो सकता है? मैं एक पैर पहले उठा चुका, अब

मैं दूसरा कैसे उठा सकता हूं? तो अली ने कहा कि तुमको समझ आना चाहिए, एक पैर उठाने की सामर्थ्य तुम्हारी है। तुम कोई भी उठा सकते हो, चाहे बायां, चाहे दायां। लेकिन दूसरा पैर उठाने की तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है। तो अली ने कहा, यह दोनों बातें जाननी चाहिए कि मैं कितना कर सकता हूं और कितना नहीं कर सकता हूं। जो नहीं कर सकता हूं, उस झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। जो कर सकता हूं, उससे कभी भागना नहीं चाहिए। पर यह ज्ञान से होगा, श्रद्धा की कोई जरूरत नहीं है।

खैर, पुरुषों को भी एक आधार जहां... ।

जिसको भी आधार की जरूरत है... ।

मेरा अर्थ क्या और संयम क्या है? ये दो प्रश्न।

ये सब आधार झूठ हैं। और जो इन आधारों को पकड़ता है, वह कभी जी नहीं पाएगा। क्योंकि झूठ को पकड़ कर कोई जी भी नहीं सकता। हां समय गुजार लेगा। समय गुजार लेना एक बात है। एक आदमी कहता है कि मैं इसलिए जी रहा हूं कि मेरा बेटा हो जाए, मेरी लड़की की शादी हो जाए, मेरे सब छोटे बच्चे सुखी हो जाएं। बड़े मजे की बात है। इसका बेटा बड़ा हो कर क्या करेगा? वह यह करेगा कि उसका बेटा बड़ा हो जाए! और उसका बेटा क्या करेगा? वह उसका बेटा बड़ा हो जाए! यह तो समय गुजारना हुआ सिर्फ। लेकिन चूंकि हमें जिंदगी में कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए हम कुछ व्यर्थ के आधार खोज लेते हैं। और उसी को अर्थ मान कर जी लेते हैं।
तो पहले तो मेरा कहना है कि जिंदगी खुद ही आधार है, इसलिए दूसरा आधार खोजना ही मत। खोजा, तो असली आधार खो जाएगा। बच्चे को आधार मत बनाना जीने का। तुम्हारे जीने से बच्चा आ जाए, यह समझ में आने वाली बात है। तुम इतने आनंद से जी रहे हो, उसमें एक बच्चा भी आया, तुमने उसको भी प्रेम किया। लेकिन इसलिए तुम नहीं जीए कि यह बच्चा बड़ा हो जाए। तुम इस तरह जीए कि बच्चा भी बड़ा हुआ। लेकिन यह तुम्हारा कोई जिंदगी का लक्ष्य नहीं था। हमें जीवन का आधार बनाना ही नहीं चाहिए, क्योंकि जीवन खुद ही आधार है, अपना ही आधार है। और अगर जीवन का पूरा आनंद लेना है तो जीने को ही आधार बनाना चाहिए और किसी चीज को नहीं--एक-एक पल जीना चाहिए पूरी खुशी से।
आधार बनाने वाला क्या है, वह कहता है कि अब मेरा लड़का बड़ा हो जाएगा, तो
वह उसके लिए मेहनत कर रहा है। फिर लड़का बड़ा हो गया, फिर वह कहता है, मेरे लड़के की शादी हो जाए, अब इसके लिए मेहनत कर रहा है। वह जी ही नहीं रहा। यह तो आगे होता रहेगा। फिर लड़के का लड़का हो जाए, फिर उसके लिए जी रहा है। पोस्टपोन कर रहा है जीने को। और क्या होगा? लड़का बड़ा हो जाए, शादी हो जाए, बच्चे हो जाएं, तुम्हें क्या जीवन मिल जाएगा इससे?
मुझे तो जीना चाहिए इसी वक्त और पूरे आनंद से जीना चाहिए और जीने को
ही लक्ष्य मानना चाहिए। एक श्वास भी मैं लूं तो मुझे ऐसे लेना चाहिए कि हो सकता है यह श्वास अंतिम हो, इसलिए इसे पूरे आनंद से ले लूं। कोई मुझसे महिला मिलने आई है, तो मुझे जानना चाहिए, हो सकता है कल मिलना न हो सके, तो इससे पूरे प्रेम से मिल लूं। खाना खाने बैठा हूं, हो सकता है सांझ खाना फिर न हो, तो इस खाने को पूरे आनंद से खा लूं। यह साड़ी पहनी है तुमने, तो इसको ऐसे ही मत डाल लो, इसे पूरे आनंद से पहनो। जीवन की प्रत्येक छोटी-छोटी क्रिया को स्वनिर्भर बना दो और उसमें पूरा रस लो, पूरा आनंद लो। तो छोटी- छोटी क्रिया में दिन भर आनंद लेने से आनंद की बड़ी भारी राशि इकट्ठी हो जाती है। जो आदमी सुबह आनंद से उठा और भगवान को धन्यवाद दिया कि अच्छा आज फिर सूरज के दर्शन हुए और आनंद से उसने सूरज को देखा। और फिर दिन की सब छोटी चीजों में आनंद लिया। रात वह सोया, आनंद की एकशृंखला इकट्ठी हो गई सुबह से रात तक। और उसने कहा, बहुत आनंदित हूं। बहुत आनंद था।
मेरा मतलब समझ रही हैं आप? मेरा मतलब यह है कि जीवन का आनंद ही जीवन का आधार है। इसलिए किसी दूसरे के सिर पर मत टालो उसे। टालना धोखा है। तो कोई

कहता है कि हमें यश मिल जाए, तो बड़ा आनंद मिलेगा। लेकिन यश कल मिलेगा न, अभी तो मिल नहीं गया? कल मिलेगा, तो आज का दिन तो हम टाल रहे हैं कल के लिए। फिर कल यश मिल जाएगा, तो यश की और आगे की यात्रा कायम है। वह यश कहेगा, अभी क्या हुआ, कुछ भी नहीं हुआ। अभी तो आगे और बड़ा पद मौजूद है। वह आगे है, वह आगे है। तो हम निरंतर, जितने लोग लक्ष्य बनाते हैं, लक्ष्य हमेशा भविष्य में होते हैं और जीवन वर्तमान में होता है। इसलिए वे सिर्फ समय गुजारते हैं, जी नहीं पाते हैं। तो मेरा कहना यह है कि जीवन खुद अपना पर्याप्त साधन है। और यह तुम जो कहती हो कि स्त्री पुरुष का सहारा लेती है। वह पुरुष ने समझाया होगा उसे, एक। उसने समझाया हुआ कि बेसहारा तू खड़ी नहीं हो सकती। बाप बेटी को समझाता है कि बाप के सहारो पर चलो; फिर पति समझाएगा, हमारे सहारे पर चलो, फिर बेटा समझाएगा मां को, हमारे सहारे पर चलो; तुम अकेली खड़ी होगी तो भटक जाओगी। डराया है हजारों साल से और गुलामी, गुलामी पैदा कर ली है। और स्त्री का भी मन डरा हुआ है। उसकी भी जिंदगी में कोई अर्थ नहीं है, वह भी सहारा खोजती है--कभी पति का, कभी बेटे का, कभी किसी का, कभी किसी का।

पुरुष को भी यही है।

हां-हां, पुरुष को भी यही है। पुरुष भी डरा हुआ है। मेरा तो कहना ही यह
है कि डराता वही है, जो डरा हुआ है। जो पुरुष डरा हुआ नहीं, वह किसी स्त्री को भी नहीं डराएगा। डराएगा किसलिए? वह कहेगा कि तुम आनंद से जीओ, मैं आनंद से जीऊं। और अगर हम एक क्षण में साथ हों, तो हम दोनों आनंद से जीएं। मेरा मानना यह है कि तुम जितने आनंद से जीओगी, मैं जितने आनंद से जीऊंगा, तो हमारा कोई अगर एक साथ क्षण हुआ, साथ हुआ, तो वह क्षण भी आनंद का होगा, क्योंकि दोनों आनंदित व्यक्ति मिले।
अभी हालत क्या है? अभी दो डरे हुए आदमी हैं। मैं डरा हुआ हूं, तो मैं
कह रहा हूं कि तुम्हारा मुझे सहारा है। और तुम डरी हुई हो, तुम कह रही हो कि आपका मुझे सहारा है। अब हम दोनों डरे हुए आदमी हैं। यह ऐसे ही हो गया है, जैसे एक भिखमंगा दूसरे भिखमंगे के सामने हाथ फैलाए खड़ा हुआ है कि कुछ मिल जाए। और वह दूसरा भी हाथ फैलाए हुए है कि कुछ मिल जाए। और दोनों भिखमंगे हैं। देने को दोनों के पास कुछ भी नहीं है।
किसी को सहारा मत बनाओ। खुद सहारा बनो। मेरा मतलब जो हुआ। खड़े हो जाओ अपने पैरों पर जिंदगी के। और तब मेरा कहना है, बहुत से साथी मिलेंगे, लेकिन वे सहारे नहीं होंगे। और तब तुम उन्हें आनंद दे भी सकोगी, उनसे पा भी सकोगी, लेकिन वह लक्ष्य नहीं होगा। वह लक्ष्य नहीं होगा तुम्हारा। वह जिंदगी की सहज... जैसे मैं रास्ते से निकला और देखा किसी के घर फूल खिला हुआ है और रास्ते के किनारे मुझे फूल दिख गया, मैंने उसका आनंद लिया और आगे बढ़ गया। वह फूल न मेरे लिए खिला था, न मैं उस फूल के लिए निकला था। बिल्कुल संयोग की बात थी कि वह फूल खिला था, मैं उस रास्ते से निकला था। घड़ी भर मैंने देखा और मैं खुश हुआ। और हो सकता है फूल भी जीवित है; कोई देख कर उसे खुशी हुआ हो, तो फूल भी खुश हुआ हो। यह हमें पता नहीं क्योंकि फूल ने हमसे कुछ कहा नहीं। लेकिन फूल ने भी, एक आदमी ठहर गया एक क्षण को और उसको देखा है तो खुश हुआ होगा। बस जिंदगी ऐसी होनी चाहिए। मैं अपने आनंद में हूं, फूल अपने आनंद में है। हम एक क्षण को मिले हैं, हम दोनों आनंद में हैं, फिर आगे बढ़ गए हैं।
किसी का सहारा नहीं, किसी का आधार नहीं। नहीं तो क्या खतरा होता है, जिसको हम आधार बनाते हैं, पहली तो बात हम उसके लिए बोझ हो जाते हैं तत्क्षण। क्योंकि तुमने तो आधार बनाया न, और उसके लिए तुम बोझ हो गई। बेटी बाप के लिए बोझ है। वह कह रहा है, कब इसका शादी-विवाह करें और इससे छुटकारा पाएं। बूढ़ी मां बेटे के लिए बोझ है, यह कब स्वर्गवासी हो जाए, भीतर यही चल रहा है। क्योंकि वह बूढ़ी मां उसको सहारा बनाए हुए है। तो वह तो सहारा जिस पर, उस पर बोझ हो गया है।
पत्नी पति के लिए बोझ है, पत्नी के लिए पति बोझ है, क्योंकि वे एक-दूसरे को सहारा बनाए हुए हैं। फिर जिसके लिए हम बोझ हैं, उस पर क्रोध आता

है। पता नहीं चलता। पूरे वक्त क्रोध रहता है, क्योंकि बोझ हो गया। और जिसके प्रति हमारा बोझ है, उसके साथ हम आनंदित कभी नहीं हो सकते। इसलिए कोई पत्नी किसी पति के साथ कभी आनंदित नहीं हो सकती। जब तक कि वह साथी न हो जाए। सहारा-वहारा नहीं। और दोनों स्वतंत्र न हों, तब तक कभी सुखी नहीं हो सकते।
इसलिए तुम हैरान होओगी, कभी हम अनजान आदमी से मिल कर जितने खुश होते हैं, अपने ही घर के आदमी से मिल कर उतने खुश नहीं होते। ज्यादा होना चाहिए। क्यों? वह यही कारण है कि उससे हमारा कोई लेना-देना नहीं है, कोई अपेक्षा नहीं है। अगर तुम रास्ते पर मुझे मिली और तुमने नमस्कार करके मुझे, और मैंने हंस कर तुम्हें नमस्कार का उत्तर दिया, तुम खुश हुई, क्योंकि मुझसे कुछ लेना-देना नहीं था। मैंने मुस्कुरा कर तुम्हें जवाब दिया, तुम्हें अच्छा लगा। लेकिन तुम्हारा पति भी मुस्कुरा कर जवाब देगा। यह रोज का धंधा है और अपेक्षा है हमारी। नहीं देगा तो गर्दन पकड़ लेंगे उसकी कि आज मुस्कुरा कर जवाब नहीं दिया। या मुस्कुरा कर दिया तो भी हम जांच रखेंगे कि सच में मुस्कुराया था कि धोखा दे रहा था। यह सब चलेगा, क्योंकि हमने गलत संबंध बना लिए हैं।
मेरा कहना यह है, प्रत्येक को अपने व्यक्तिगत जीवन को आधार बनाना चाहिए। फिर बहुत लोग किनारे से आएंगे--पति भी होगा, बेटा भी होगा, मां भी होगी, मित्र भी होंगे, साथी भी होंगे, ठीक है, वे साथ मिलेंगे, हम आनंदित होंगे, हम शेयर करेंगे अपना आनंद उनसे। लेकिन किसी के कंधे पर हाथ मत रखना। क्योंकि जिसके कंधे पर तुमने हाथ रखा, तुम उसी के लिए बोझ हो गई। और मजा यह है कि एक-दूसरे के कंधे पर दोनों हाथ रखे हुए हैं, तब तो बहुत मुसीबत हो गई। वह भी सहारा खोज रहा है। तो इसलिए मैं सहारे के दर्शन को ही नहीं मानता। मैं मानता हूं, एक-एक व्यक्ति की इंडिविजुअलिटी, वह उसकी मुक्ति होनी चाहिए। और यह भी मेरी समझ है कि जब दो मुक्त व्यक्ति मिलते हैं, तो एक-दूसरे को आनंद देते हैं। और जब दो बंधे हुए व्यक्ति मिलते हैं तो कैसे आनंद देंगे? तुम मेरी लगाम पकड़े हो, मैं तुम्हारी लगाम पकड़े हुए हूं, क्या आनंद देंगे? और तरकीबों से लगाम पकड़े हुए हैं। वह एक पति है, उसकी लगाम पत्नी पकड़े हुए है कि खिसक न जाए यहां-वहां यह, पति वह पत्नी की लगाम पकड़े हुए है। और ब्राह्मण ने दोनों की लगाम बंधवा दी है सात चक्कर लगवा कर। और सारे समाज ने कहा है कि ठीक है, लगाम अब बंध गई, अब यह छोड़ नहीं सकते हो। खाते हो कसम कि अब कभी छोड़ोगे नहीं? इन दोनों ने कसम खा ली है। अब यह बेवकूफी हो गई है। और अब रस ही चला गया, जीवन की जो सुगंध होनी चाहिए, प्रफुल्लता, वह सब गई। अब बोझ ही बोझ होगा।

पति-पत्नी में कभी आनंद भी नहीं आता?

पति-पत्नी होने की वजह से नहीं आ सकता। दो मित्र की तरह आ सकता है। वह पति-पत्नी होना बिल्कुल ही अग्ली, कुरूप बात है। वह बरदाश्त के बाहर है। अगर जिसमें भी थोड़ी बुद्धि है, तो वह बहुत बरदाश्त के बाहर है। मित्रों में आनंद आ सकता है। और इसलिए वही पत्नी और वही पति, जब तक विवाह नहीं हुआ था, अगर उनमें प्रेम रहा हो, तो जैसे आनंदित थे, विवाह के बाद पाओगी कि वह आनंद सब खो गया।

समाज के लिए आज क्या केवल... नेतृत्व पर निर्भर है सब?

आज तो नहीं है। इसलिए समाज बिल्कुल सड़ा-गला है, एकदम गंदा है। नर्क है बिल्कुल समाज तुम्हारा। लेकिन होना चाहिए, तो समाज स्वर्ग बन जाए।

तो फिर हमारे पूर्वज क्या?

पूर्वज तो हमेशा ही नासमझ होते हैं। मेरा मतलब समझ लें? मेरा मतलब यह
कि मुझसे आने वाले पांच सौ साल बाद जो बच्चे आएंगे, उनसे मैं ज्यादा नासमझ हूं, क्योंकि उनको पांच सौ साल का अनुभव और समझ मिल जाएगी।

हमारे विचार से वे दिन ऐसे थे, लेकिन वे भी बहुत दुखी थे।

कौन सुखी था? वे ऋषि-मुनि, पूर्वज?

न-न, जो कुछ समाज के उन्होंने बंधन बांधे हुए हैं--जो पति-पत्नी, कुछ समाज के नियम, जब नहीं थे, तब बहुत आनंद था।

नहीं-नहीं, तब भी आनंद नहीं था। तब भी आनंद नहीं था, इसीलिए तो यह सारा इंतजाम करना पड़ा। नहीं तो इंतजाम काहे के लिए करते हम? तब दूसरी तरह का दुख था। कि जिस आदमी के हाथ में ताकत है, वह सारी खूबसूरत स्त्रियों को घेर कर खड़ा हो जाता। उनकी ताकत थी क्योंकि और तो कोई नियम नहीं था। ताकत ही नियम थी। अभी भी निजाम हैदराबाद की पांच सौ औरतें हैं! अभी भी! कृष्ण की कोई सोलह हजार औरतें हैं!

लेकिन यह केवल पुरुष...

मेरा मतलब नहीं समझी? पुरुष के हाथ में ताकत है, इसलिए ताकत वाला कुछ करेगा। ऐसे समाज भी रहे हैं जहां स्त्रियों के हाथ में ताकत रही, तो उन्होंने भी सब जवान खूबसूरत लड़कों को बांध कर रख लिया। ताकत जहां होगी, तो ताकत ही कानून थी उन दिनों। तो उसका परिणाम यह हुआ था कि एक आदमी सारी सुंदर स्त्रियों को पकड़ लिया, एक स्त्री सारे सुंदर जवानों को पकड़ ले। इस स्थिति को बदलने के लिए इंतजाम करना पड़ा। वह इंतजाम किया, कि भई कुछ संबंध हो, कुछ नियम हो, समाज की कोई व्यवस्था हो। वह व्यवस्था हो गई। अब उस व्यवस्था में हमें पता चला कि दूसरी बीमारियां हैं। अब उस व्यवस्था को भी बदलना चाहिए। उसका मतलब यह नहीं है कि अब हम पीछे लौट जाएंगे पचास हजार साल पहले। वहां तो हम कभी नहीं लौट सकते। अब तो जो हम व्यवस्था देंगे, वह इससे बेहतर होगी। यह व्यवस्था उससे बेहतर थी।
पूर्वज हमेशा अपने पूर्वजों से ज्यादा समझदार थे, लेकिन अपने आने वाले बेटों से ज्यादा समझदार नहीं हो सकते। जिन्होंने व्यवस्था दी विवाह की, वे उन पूर्वजों से ज्यादा समझदार थे, जो समाज में लाठी का बल चलाते थे। लेकिन अब फिर वक्त आ गया कि फिर इसे बदलो। यह भी सड़ गया है। और अब दुनिया ऐसी हालत में आ गई है कि यह बात समझी जा सकती है। यह मित्रता की बात यह आज तक समझी नहीं जा सकी। और अब दुनिया ऐसी हालत में आ गई है कि स्त्री इंडिविजुअल की हैसियत से खड़ी हो सकती है। अब तक खड़ी ही नहीं हो सकती थी। यानी पहले ही, और मजा यह है कि यह सारा का सारा जो विकास हुआ है, इस सारे विकास में अब एक स्थिति ऐसी आ गई है।
जैसे हुआ क्या है, पुरुष के हाथ में ताकत थी, जो स्त्री के हाथ में नहीं थी। शरीर के लिहाज से वह थोड़ी कमजोर है, स्वभावतः, तो पुरुष उसको दबाता रहा। लेकिन अब, अब हमने एक ऐसी समाज विकसित कर ली, जिसमें ताकतवर कमजोर को दबाए इसकी जरूरत नहीं रह गई, और दबाए तो हम इंतजाम कर सकते हैं कि वह न दबा सके। अब यह संभव हुआ है। यह आज के पहले संभव नहीं था।
फिर हमने यह व्यवस्था कर ली कि पुरुष के हाथ में अर्थ की सारी ताकत थी। कमाता वह था और पूछता ही नहीं था कि स्त्री कैसे कमाए। क्योंकि कुछ काम ऐसे थे कि वह स्त्री कर ही नहीं पाती थी। जैसे शिकार का काम था, हजारों साल तक आदमी शिकार से जीता था। तो वह स्त्री की फिजियोलाजी नहीं थी कि वह शिकार कर सके। ऐसे मसल्स नहीं थे कि वह जाकर जंगली जानवरों से जूझ सके। तो वह पिछड़ गई। शिकार जो कर सकता था वह मालिक ज्यादा बड़ा होगा, क्योंकि वही भोजन लाता था, भोजन जुटाता था।

अब जो दुनिया आई है, अब हमने टेक्नालॉजी का ऐसा विकास कर लिया कि अब बटन दबाने से सारे घर की बिजली जल जाती है। अब पुरुष दबाए कि स्त्री दबाए, यह सवाल नहीं है और इसके लिए कोई ताकत की जरूरत नहीं कि कोई पहलवान लाना पड़ेगा जो बटन दबाए। टेक्नालॉजी के विकास ने ताकत आदमी के हाथ से खत्म कर दी। ताकत मशीन के पास चली गई। और मशीन न स्त्री है, न पुरुष है। अब मशीन को चलाने की बात है, वह कोई भी चला सकता है। तो पहली दफे दुनिया में टेक्नालॉजी ने ऐसी हालत ला दी है कि अब स्त्री और पुरुष दोनों कमा सकते हैं। और इसलिए अब स्त्री को गुलाम होने की कोई जरूरत नहीं, अब वह मित्र हो सकती है।
लेकिन पूरब के मुल्कों में अभी भी नहीं हो सकती, क्योंकि पूरब के मुल्कों की स्त्रियां बेवकूफी की बातें मानती चली जा रही हैं अभी भी। सच बात तो यह है कि स्त्री ठीक से शिक्षित हो जाए, तो उसे पुरुष के पैसे पर निर्भर होने से इनकार करना चाहिए। बिल्कुल इनकार करना चाहिए। क्योंकि तुम पैसे की तो सारी सुविधा चाहो और स्वतंत्रता भी चाहो, ये दोनों बातें बेईमानी की हैं। यह जरूरी नहीं है। यह तो बेईमानी की बात है। यानी कमाए तो वह और बांटते वक्त दोनों मित्र होने का दावा करो। यह गलती बात है, वह जो कमाएगा, वह बुनियादी रूप से मालिक होगा। तो जब दुनिया में थोड़ी और समझ बढ़ेगी, जैसी समझ मैं चाहता हूं, तो कोई भी स्त्री अपने पति के पैसे को अपना नहीं मानेगी। वह कहेगी कि इसे तुमने कमाया है, ठीक है; वह भी कमाएगी। यह दूसरी बात है कि दोनों पूरक कर लें और दोनों मिल कर घर का काम चलाएं, लेकिन स्त्री डिपेंडेंट नहीं होगी। वह कहेगी कि हम कोई पैसे पर तुम्हारे निर्भर नहीं रह सकते।

जैसे ही वह पति के--जो वह सुपिरिआरिटी कांप्लेक्स...

वह खत्म हो जाएगा। वह है इसलिए, उसके कारण हैं। पश्चिम में वह खत्म होना शुरू हो गया। उसके तो कारण हैं। वह सुपिरिआरिटी कांप्लेक्स जो है न, उसके लिए तो उसने कारण बनाए हुए हैं। सबसे बड़ा कारण तो पैसा है, वह कमाता है, तुम निर्भर हो। तो तुम जब तक पैसे पर निर्भर हो, तो तुम भयभीत भी हो कि अगर आज वह इनकार कर दे, तो तुम कहां जाओगी? कल ही एक लड़की आई, वह कहती है कि वह पति ऐसा-ऐसा कहता है, यह-यह करो। वह नहीं करना चाहती है। लेकिन है तो निर्भर पैसे पर। कपड़ा पति से लो, पैसा पति से लो, मकान पति से। तो फिर पति उसके साथ शर्तें लाता है कि यह मानो, नहीं तो जाओ, तुम्हें जो दिखता है तुम करो। जाओ कहां? वह कहती है, मैं जाऊं कहा? पिता कहते हैं कि वहां लौट आऊं। तो वे कहते हैं, हमने एक दफे बोझ उतार दिया, अब हम क्यों झंझट लें। आखिर पिता भी, वह भी पैसे का ही मामला है।

तो लड़कियों को अपने पांव पर खड़े होना चाहिए।

हां, लड़की को, सारी दुनिया की स्त्रियों को अगर स्वतंत्र होना है और पुरुष की बराबरी हासिल करनी है तो यह बातचीत से होने वाला नहीं है। उसके कारण मिटाने पड़ेंगे, जिनकी वजह से गैर-बराबरी है। और बड़ा कारण आर्थिक है, सबसे बड़ा कारण आर्थिक है। पहले एक कारण और था कि पुरुष ताकतवर है। वह कारण अब बेमानी हो गया। अब उसका कोई मतलब नहीं है। अब उसका मतलब ही नहीं रहा है। क्योंकि वह तो हमने, हमारे विकास ने उसको व्यर्थ कर दिया। अब दूसरा कारण रह गया, आर्थिक का।
अब जैसे रूस है, तो रूस में पुरुष की सुपिरिआरिटी विलीन हो गई है, क्योंकि स्त्रियां कमा रही हैं, उतना ही जितना पुरुष कमा रहा है। और जब एक स्त्री और पुरुष विवाह करते हैं तो फैमिली बनती रूस में, हिंदुस्तान में तो बन ही नहीं सकती। क्योंकि स्त्री बिल्कुल ही खाली हाथ खड़ी होती है। वह कुछ करेगी नहीं, वह सिर्फ निर्भर रहेगी। सारी चिंता पुरुष पर है, सारी परेशानी उस पर है। नहीं कमाए, परेशान हो, तो वह चिंता करे। स्त्री को कोई फिकर नहीं है, वह डिमांड करती चली जाएगी। तो इसके बदले में तुम्हें गुलाम

होना पड़ेगा, इनफिरिअर होना पड़ेगा। इसके बदले में कुछ तो पुरुष मांगेगा कि कम से कम तुम हमारी दासी तो रहो, हमारे पैर तो छुआ करो। स्वभावतः इसकी मांग फिर एकदम नाजायज भी नहीं है। और अगर हम कहते हैं कि नहीं, हम यह भी नहीं करेंगे और यही हम जारी रखेंगे सिलसिला, तो यह मांग नाजायज है।
तो मेरा कहना है, स्त्री आर्थिक रूप से पैर पर खड़े होने की हिम्मत जुटानी चाहिए। और अगर घर में भी वह काम करती है, तो उस काम का भी आर्थिक विनियोग होना चाहिए। वह काम तो काफी करती है, लेकिन उसका आर्थिक मूल्य नहीं है। जैसे अगर तुम एक रसोइया घर में रखते हो, तो उसको तुम पचास रुपये महीने देते हो। एक कपड़ा धोने वाला रखते हो, तो उसको तुम पचास रुपये महीने देते हो। एक बुहारी लगाने वाला रखते हो, तो उसको भी बीस रुपये महीने देते हो। वह पत्नी यह सब कर रही है। वह दो सौ रुपये महीने का काम कर रही है, लेकिन इसका कोई आर्थिक हिसाब नहीं है। इसका आर्थिक हिसाब होना चाहिए। लेकिन यह कांशसनेस जितनी बढ़ेगी, तब साफ होगा।
तो एक तो स्त्री को पूरे आर्थिक रूप से स्वनिर्भर। पति नहीं चाहेगा
कि स्वनिर्भर स्त्री हो। इसलिए पति कहेगा, मेरे इज्जत के खिलाफ है कि तुम कुछ काम करो। क्योंकि तुम जैसे ही स्वनिर्भर हुई, पति की सुपिरिआरिटी गई। इसलिए पति कभी नहीं चाहेगा कि स्त्री कमाए। पति कहेगा, जब मैं हूं, तुम्हें कमाने की क्या जरूरत है? मैं जब नहीं रहूं तब सवाल है। मैं जब कमा सकता हूं, तुम क्यों कमाओगी? और स्त्री इससे बड़ी खुश होती है कि पति कितनी प्रेम की बातें कर रहा है। लेकिन बहुत गहरे में पति यह कह रहा है कि तुमने कमाया कि तुम मुक्त हो गई। तो तुम मेरी गुलाम नहीं हो सकती।

अभी भी वे मुक्त तो नहीं हैं। अभी बहुत लड़कियां हैं जो कमा भी रही हैं
वे भी गुलाम हैं। और दूसरे कारण भी हैं।

न-न, कारण और भी हैं, कारण और भी हैं। वे जो लड़कियां कमा रही हैं, जो लड़कियां कमा रही हैं, वे सिर्फ प्रतीक्षा कर रही हैं कि कब उनको पति मिल जाए, और कमाना वे छोड़ दें।

नहीं, शादी की हुई लड़कियां।

शादी की हुई लड़कियां जैसे ही कमाती हैं, तो उन लड़कियों में और जो पत्नियां नहीं कमा रही हैं, बुनियादी फर्क पड़ जाएगा। फर्क पड़ेगा, उनके पास बल हो जाएगा। यानी वे अकेली खड़ी हो सकती हैं, एक, इतनी हिम्मत हो जाएगी। वे पति पर बिल्कुल निर्भर नहीं हैं, एक बात। दूसरा, उनका पूरा माइंड जो अब तक सिखाया गया स्त्रियों को, कहा है कि पुरुष तो है वृक्ष की भांति और स्त्री है लता की भांति। वह उसके सहारे ही खड़ी हो सकती है। गिर जाएगी, तो नीचे जमीन पकड़ जाएगी। बिल्कुल झूठी बात है। पुरुष ने सिखाई है, इसमें कोई मतलब नहीं है, इसमें कोई भी मतलब नहीं है।

आगे यह हो सकता है कि लेडीज जेंटल ओवर हो।

कर सकती हैं, यह कर सकती हैं, यह रिवेंज हो सकता है। यह संभावना है। यह संभावना है। क्योंकि जैसे-जैसे टेक्नालॉजी विकसित होगी, ताकत बेमानी हो जाएगी। जैसे मैं दौडूं और एक स्त्री मेरे साथ दौड़े, तो मैं तेजी से दौडूंगा, वह उतनी तेजी से नहीं दौड़ सकती है। लेकिन एक स्त्री ड्राइव कर रही है और मैं डरइव कर रहा हूं, बेमानी हो गई बात। मेरे पुरुष होने की वजह से मैं ज्यादा तेजी से डरइव नहीं कर लूंगा। मोटर की टेक्नालॉजी ने दौड़ने में आपको बराबर कर दिया। आप मेरा मतलब समझी न? सब मामलों में टेक्नालॉजी विकसित होती चली जाएगी और टेक्नालॉजी के वजह से ताकत का जो फर्क था, वह क्षीण होता चला जाएगा। अब एक आदमी कुल्हाड़ी चला रहा है, तो स्त्री नहीं चला सकती उतनी कुल्हाड़ी। वह चलाएगी तो पांच मिनट में थक जाएगी। वह दो घंटे चलाएगा, तो वह सुपीरियर हो गया। लेकिन अब बिजली की आरा मशीन चल रही है, बटन

दबाना है, चाहे पुरुष दबाए, चाहे स्त्री दबाए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह आरा मशीन पूछती नहीं कि किसने दबाया। लेकिन कुल्हाड़ी पूछती है कि तुम पुरुष हो कि स्त्री? मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? टेक्नालॉजी के विकास ने ताकत की बात खत्म कर दी। अब ताकत बेमानी है। इसलिए ताकत-वाकत का कोई सवाल नहीं है अब। अब कोई ताकत से नहीं डरवा सकता किसी को।
तो वह तो एक आधार छूट गया है। अर्थ का एक आधार रह गया है। एक और दूसरा माइंड का रह गया सबसे गहरे में। स्त्री जो है, उसको इतने दिन तक यह सिखाया गया है कि तुम निर्भर ही सुखी रह सकती हो। जब तुम बच्ची हो तो बाप पर निर्भर रहो, जवान हो तो पति पर निर्भर रहो, बूढ़ी हो जाओ, बेटे पर निर्भर रहो, यह सिखाया पुरुषों ने। पूरी फिलासफी पुरुषों ने खड़ी की है। और पूरे टीचर्स पुरुषों के हैं--गुरु, संन्यासी, साधु पुरुषों के हैं, वे सब वही समझा रहे हैं। स्त्री उनको सुन रही है और वही सीख रही है।
यह माइंड का स्ट्रेक्चर तोड़ना पड़ेगा और यह कहना पड़ेगा कि कोई किसी पर निर्भर नहीं है। हम एक-दूसरे पर निर्भर हो सकते हैं, लेकिन कोई किसी पर निर्भर नहीं है। इंटर-डिपेंडेंस हो सकती है, लेकिन डिपेंडेंस नहीं हो सकती। म्युचुअल डिपेंडेंस है, हम दोनों ही किसी पर निर्भर नहीं, हम मित्र हैं, हम शेयर करना चाहता हैं, तो हम एक-दूसरे पर निर्भर हुए हैं। लेकिन कोई मालिक, कोई गुलाम, ऐसा नहीं है, एक बात।
दूसरी एक बात थी, जो टेक्नोलॉजी ने वह भी खत्म कर दी। वह थी स्त्री के साथ बच्चों का प्रश्न। जैसे ही स्त्री को बच्चे पैदा होते हैं, वह निर्भर हो जाती है। क्योंकि उतने वक्त वह कमा नहीं सकती, काम नहीं कर सकती, कमजोर हो जाती है। चार-छह महीने बच्चे को पालने में भी उसको घर बैठना चाहिए, तो वह निर्भर हो जाती है। तो टेक्नालॉजी ने वह स्थिति भी साफ कर दी। टेक्नालॉजी ने यह स्थिति साफ कर दी। तो बर्थ-कंट्रोल ने इतनी बड़ी ताकत दे दी स्त्री को जिसकी कल्पना नहीं है। और जब तक बर्थ-कंट्रोल पर स्त्रियां पूरे बल से प्रयोग नहीं करतीं, पुरुषों के मुकाबले खड़ी नहीं हो सकेंगी। बर्थ-कंट्रोल ने बड़ी ताकत दे दी, एक बात। अब दूसरी बात जो है, बच्चे को पालने की, बच्चे को बड़ा करने की, यह पुरुष और स्त्री की समान जिम्मेवारी है, यह कोई स्त्री की अकेली जिम्मेवारी नहीं है। यह अकेली जिम्मेवारी नहीं है बच्चे को पालने बड़े करने की। तो इसके लिए बहुत जल्दी लीगल व्यवस्था होनी चाहिए कि बच्चे का बोझ कोई स्त्री पर ही पूरा पड़ने का नहीं है। और दूसरी बात, अब तो संभावना इतनी बढ़ती जाती है कि जिसकी हम कल्पना ही नहीं कर सकते। मां के पेट में ही बच्चा बड़ा हो, यह भी जरूरी नहीं रह गया। वह तो टेस्ट-ट्यूब में भी बड़ा हो सकता है। स्त्री को वह नौ महीने की जो परेशानी उससे मुक्त किया जा सकता है। बिल्कुल मुक्त किया जा सकता है। वह जो उसकी वजह से निर्भरता, वह मुक्त हो गई। और दूसरी बात है, बच्चों का सारा का सारा कंट्रोल स्टेट के हाथ में जाएगा, जैसे ही समाज वैज्ञानिक होगा। बच्चों का कंट्रोल मां-बाप के पास रहना ही नहीं चाहिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

टूटना ही चाहिए। मित्रता के ही संबंध रह जाना चाहिए। यह रिलेशनशिप बहुत कुरूप है और इसकी वजह से बहुत दुख है। यह सारी स्थिति जो नई आ गई है, इस नई स्थिति का पूरा विनियोग अगर हम करेंगे सोच कर, तो स्त्री आज स्वतंत्र हो सकती है, मुकाबले पर समान हो सकती है। कोई कठिनाई नहीं रह गई। लेकिन स्त्री को बहुत सी ऐसी धारणाएं छोड़नी पड़ेंगी जो पुरुष ने उसमें पैदा की हैं। अब जैसे स्त्री जा रही है और सड़क पर एक आदमी का धक्का लग गया और वह घबड़ा गई। यह पुरुष ने उसमें पैदा किया हुआ है। अगर स्त्री सड़क पर चलते आदमी के धक्के से घबड़ाती है तो वह पुरुष के समान कभी नहीं हो सकती। तो उसको घर में बंद रहना पड़ेगा और जब पति उसको लेकर निकले, तब निकलना पड़ेगा। यह जो मामला है न...
मैं आगरा से लौट रहा था। मेरे साथ एक कपल था, एक पति और उनकी पत्नी थी।
तो पति जैसे ही गाड़ी में चढ़े, उन्होंने नीचे हाथ बढ़ाया, पत्नी को चढ़ा लेने

के लिए। मैंने उनकी पत्नी को कहा कि इनकार कर दो कि यह बात गलत है, क्योंकि मैं चढ़ सकती हूं। प्रेम के लिए धन्यवाद। लेकिन यह बात गलत है, मैं जिस सीढ़ी पर चढ़ सकती हूं, उस पर तुम्हारा हाथ पकड़ कर चढूं, यह बात गलत है। उसने कहा, लेकिन क्यों? मैंने कहाः फिर तुम अपने हाथ से डिपेंडेंस को पालती हो। और तुम इसमें खुश हो रही हो कि यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन ऐसा मौका नहीं तुमने कभी दिया कि तुम गाड़ी में पहले चढ़ गई हो और तुमने हाथ पकड़ कर पति को ऊपर लिया हो। तो पति इनकार कर देता कि यह इनसल्टिंग है। आप मेरा मतलब समझ रहे न? अगर आपकी पत्नी ट्रेन में चढ़ जाए और ऐसा हाथ बढ़ा कर कहे कि आओ। तुम कहोगे, यह इनसल्टिंग है। आस-पास के लोग देख कर क्या कहेंगे, यह जरा भी समझ की बात नहीं। लेकिन आप चढ़ जाओगे और पत्नी को हाथ बढ़ाओगे और पत्नी बड़ी खुश होगी, यह बहुत सम्मानपूर्ण लगेगा उसको। हमने उसको सिखाई हैं सारी बातें।

एक पहाड़ पर चढ़ते वक्त लेडिज को अपना हाथ देकर ऊपर लेते हैं।

जरूरत हो, तो हाथ देना चाहिए, लेडीज को नहीं, किसी को भी। लेडीज का सवाल नहीं है। मेरा मतलब समझे न आप?
जगह-जगह मेरी क्लास होती थी, तो लड़कियों का अलग बैठने का है, लड़कों का अलग। मैंने लड़कियों से कहा कि तुम जब तक इतनी भी हिम्मत नहीं जुटा सकती कि लड़कों के साथ बैठो, तब तक तुम कभी स्वतंत्र नहीं हो सकती। मेरी क्लास मैं, मैंने कहा, यह मैं बरदाश्त नहीं करूंगा। अगर मेरी क्लास में बैठना है, तो जो जब आ जाए और जहां जिसे जगह मिल जाए, वह वहां बैठ जाए। कि ये लड़कियां एक झुंड बना कर एक कोने में बैठी हुई हैं, लड़के एक झुंड बना कर कोने में बैठे हुए हैं। यह बिल्कुल अशिष्ट और असंस्कृत मालूम होता है, अनकल्चर्ड मालूम होता है। अनकल्चर्ड है यह।
हम कहते हैं सभा में महिलाओं के लिए विशेष सुविधा है। सारी महिलाओं
को मुकदमा चलाना चाहिए सभा के संयोजकों पर। क्योंकि विशेष सुविधा क्यों? विशेष सुविधा हमेशा कमजोरों को दी जाती है, इसका ख्याल नहीं हमको? विशेष सुविधा कमजोरों के लिए दी जाती है। और विशेष सुविधा मिलने से कमजोर कमजोर होता चला जाता है, क्योंकि वह विशेष सुविधा के एक्सपेक्टेशन मांगता है। और पश्चिम में वे कहते हैं, लेडिज फर्स्ट, और स्त्रियां बड़ी खुश होती हैं। उनको बिल्कुल इनकार करना चाहिए। कि नहीं, जो फर्स्ट है वह फर्स्ट। लेडीज का क्या सवाल है? जो पहले क्यू में आया, वह पहले खड़ा होगा, अगर हटता है तो अपमानजनक है। हम पीछे आए, हम पीछे खड़े होंगे। मगर मजा क्या है, इस वक्त शिक्षित से शिक्षित स्त्री कहती है, हमें पुरुष के बराबर होना है, लेकिन पुरुष जो सुविधाएं देता है, वह बड़े मजे से लिए चली जाती है। यह कंटाडिक्ट्री है, यह कभी हो नहीं पाएगा। सुविधाओं को इनकार करो।
अभी मैं अहमदाबाद में था। तो अहमदाबाद के हरिजन एक पूरा मंडल बना कर आए। कोई पच्चीस-तीस हरिजन आए। पहले उन्होंने मुझे चिट्ठी लिखी। और मुझे लिखा कि जैसे गांधी जी हरिजनों की कॉलोनी में ठहरते थे, आप क्यों नहीं ठहरते हैं? हम आपको मिलना चाहते हैं। वे मिलने आए। उन्होंने मुझसे कहा कि आप हरिजन कॉलोनी में क्यों नहीं ठहरते? आप हरिजन के घर में क्यों नहीं ठहरते, जैसे गांधी जी ठहरते थे? तो मैंने कहा, पहली तो बात यह कि मैं किसी को हरिजन नहीं मानता। गांधी किसी को हरिजन मानते होंगे। मैं किसी को हरिजन नहीं मानता। मैं घर में ठहरता हूं, हरिजन और गैर-हरिजन का सवाल ही नहीं है। तुम आओ, मुझसे कहो कि हमारे घर में ठहरने की व्यवस्था है, मैं चलूंगा। लेकिन तुम कहो कि हरिजन के घर में ठहरने चलो, मैं नहीं चलूंगा। क्योंकि हरिजन को मानना, हरिजन को जारी रखना है। उसको जारी रखना है, उसको नीचा, यह भी नीचा दिखाना है। यानी महात्मा गांधी हरिजन के घर में ठहरते हैं, यह बड़ा भारी उपकार कर रहे हैं वे और हरिजन बड़ा प्रसन्न है। और बेवकूफ है वह अपनी प्रसन्नता में। क्योंकि यह उसकी हीनता का सबूत है। और वह कहता फिर रहा है कि महात्मा जी हमारे घर में ठहरे हुए हैं। तुम आदमी हो कि जानवर हो, तुम क्या हो? जो तुम्हारे घर में ठहरने से महात्मा जी ने कोई बहुत बड़ा काम किया हुआ है!

एक जमाना था कि उसको रिकग्निशन दिया जा रहा था कि हरिजन के घर में हम नहीं ठहरेंगे। वह भी विशेष व्यवहार था। अब वह गांधी जी कहते हैं कि हम हरिजन के घर में ही ठहरेंगे, यह भी विशेष व्यवहार है। और विशेष व्यवहार हमेशा कमजोरों के साथ होता है। तो मैंने कहा, मैं तो हरिजन किसी को मानता नहीं। और मैंने उनसे, तो वे बोले कि फिर हरिजन कैसे मिटे? तो मैंने कहा, पहली तो बात यह है कि तुम मिटना नहीं चाहते। तुमसे कहता कौन है कि तुम अपने को हरिजन कहो? तुम क्यों अपने को हरिजन कहने यहां आए हो पच्चीस आदमी मिल कर। और हरिजन होने से तुमको जो विशेष सुविधाएं मिल रही हैं, वह तुम इनकार नहीं करते? उसका तुम पूरा फायदा लेना चाहते हो।

इसमें गांधी जी के विरोध की बहुत जरूरत है?

बहुत जरूरत है, एकदम जरूरत है। क्यों? एक तो मैं पूरे का विरोध करता हूं। ऐसा कोई भूल से भी कभी न सोचे कि गांधी की कुछ बातों का विरोध करता हूं, कुछ का नहीं करता। क्योंकि मेरा मानना है कि या तो आदमी गलत होता है या आदमी ठीक होता है। कुछ गलत और कुछ ठीक ऐसा आदमी होता ही नहीं। हो नहीं सकता। क्योंकि एक ही आदमी से सारी बातें निकलती हैं और वह एक ही दिमाग की बाई-प्रॉडक्ट होती हैं। गांधी का दिमाग गलत है, जो मेरा कहना है। यह सवाल नहीं है कि वह क्या कहते हैं और क्या नहीं कहते हैं। इसलिए जो भी उस दिमाग से निकलता है, वह गलत है। और विरोध करना बहुत जरूरी है। उसका कारण है, उसका कारण है।
महावीर और बुद्ध का विरोध उतना जरूरी नहीं है, क्योंकि पच्चीस सौ साल में धूल जम गई है, उनकी कोई फिकर नहीं कर रहा है, सिवाय पूजा-पाठ के। और पूजा-पाठ कोई फिकर नहीं है, निपटारा है। एक दिन आता है वर्ष में निपटा देते हैं!
गांधी नये हैं, और गांधी की छाया दिमाग पर है। गांधी का विरोध एकदम जरूरी है। मैं तो बहुत कम करता हूं तुम्हारी हिम्मत देख कर। और नहीं तो जितना विरोध करना चाहिए, क्योंकि मुझे दिखाई यह पड़ता है कि अगर गांधी का विरोध नहीं हुआ, तो इस मुल्क की हत्या हो जाएगी। जो मुझे दिखाई पड़ता है, तो मुझे करना चाहिए। और नहीं तो फिर मैं बड़ा खतरनाक आदमी हूं। अगर मुझे ऐसा दिखाई पड़े कि--भला वह गलत हो, तो जिनको गलत दिखाई पड़े, वह मेरा विरोध करें। उसका कोई हर्जा नहीं है। लेकिन मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि गांधी को अगर माना मुल्क ने, तो मुल्क को इतना बड़ा नुकसान पहुंचेगा, जितना किसी एक व्यक्ति को मानने से किसी मुल्क को कभी नहीं पहुंचा।

जैसा आपने जो कहा, कि गांधी जी थोड़े ठीक हैं, यह बॉम्बे के व्याख्यान में आपने कहा।

जो मैं, जो-जो ठीक कहा हूं, जो ठीक कहता हूं, यानी ठीक का मतलब यह, आपके दिमाग से जो निकल रहा है, मैं गलत कहता हूं। तो इसका मतलब यह थोड़े ही है कि आप कपड़ा पहने हुए हैं कमीज तो वह गलत पहने हुए हैं। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न?
गांधी को जिस मामले में मैं ठीक कहता हूं, वह मामला बिल्कुल दूसरा है। उसके ठीक होने से गांधी की फिलासफी का कोई संबंध नहीं। जैसे मैं कहता हूं, गांधी सिनसियर आदमी हैं, ईमानदार आदमी हैं; उन्हें जो ठीक लगता है, वह कर रहे हैं। लेकिन जो उन्हें ठीक लगता है, वह गलत है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? मैं उनकी नियत पर शक नहीं करता, मैं यह नहीं कहता कि गांधी बेईमान हैं। कि गांधी जानते हैं कि इससे नुकसान होगा और कर रहे हैं, यह मैं नहीं कहता। तो गांधी एक गंभीर सिनसियर आदमी हैं। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? एक डाक्टर है, वह एकदम ईमानदार आदमी है। उसे लगता है कि आपका पैर काटने से आपका हित होगा। वह पैसे के लिए पैर नहीं काट रहा, वह आपका दुश्मन नहीं है। वह आपको नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता। लेकिन मैं यह कहता हूं कि वह डाक्टर बिल्कुल ईमानदार है, लेकिन डाक्टर बिल्कुल नहीं है, पैर काटने

से नुकसान होगा। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? वह डाक्टर बिल्कुल ईमानदार है, लेकिन डाक्टर बिल्कुल नहीं है, और पैर काटने से नुकसान होगा।
गांधी की ईमानदारी पर मैं शक नहीं करता। नेहरू की ईमानदारी पर मुझे
शक है। गांधी की ईमानदारी पर शक नहीं है। क्योंकि नेहरू जिसको ठीक समझते हैं, उसको नहीं कहते, क्योंकि गांधी उसको ठीक नहीं समझते। और नेहरू गांधी को बिल्कुल गलत समझते हैं, लेकिन हिम्मत नहीं जुटाते कहने की और गांधी का जय-जयकार किए चले जाते हैं। नेहरू बिल्कुल इनसिनसिअर हैं। अगर नेहरू ईमानदार हों, तो नेहरू को गांधी के खिलाफ खड़े होना चाहिए। लेकिन गांधी के साथ प्रतिष्ठा मिलती है, इज्जत मिलती है। और गांधी के खिलाफ हो कर नेहरू हिंदुस्तान के प्रधानमंत्री नहीं हो सकते थे। एक उन्नीस साल तक अकेला आदमी तानाशाही नहीं कर सकता था। वह गांधी के बल पर की गई तानाशाही। और नेहरू को बिल्कुल विश्वास नहीं गांधी की किसी बात में। कि गांधी जो भी कह रहे हैं, वह सब उनको गड़बड़ मालूम होता है।

तो वे कह तो रहे थे पुस्तकों में, कि जो गांधी कह रहे हैं, समझ में नहीं आता।

हां, जब समझ में नहीं आता, तो जब समझ में नहीं आता और लिखते हो कि गड़बड़ है, तो इसका विरोध करो। और फिर जब हुकूमत में आते हो तो फिर खादी को प्रोत्साहन मत दो, फिर ग्रामोद्योग की बात मत करो, फिर गांधी की फोटो लगा कर राष्ट्र-पिता मत बनाओ। यानी, मेरा मतलब समझ रहे न? इनसिनसिआरिटी जो मैं कह रहा हूं, वह यही है। कि नेहरू को लगता तो ऐसा है कि गांधी गलत हैं, और व्यवहार ऐसा करते हैं वे कि जैसे गांधी सब कुछ ठीक हैं!

नियोजन का तो प्रोत्साहन नेहरू ने ही किया न। गांधी की जय-जयकार करे
तो भी क्या हर्जा है?

न-न, हर्जा है, हर्जा है, क्योंकि अगर नेहरू बर्थ-कंटरेल के लिए प्रोत्साहन देते हैं, तो उन्हें कहना चाहिए कि गांधी बर्थ-कंटरेल के लिए जो कहते हैं वह गलत है और खतरनाक है। वे यह कहने की हिम्मत नहीं जुटाते। क्योंकि यह पोलिटिकल मामला हो गया, इससे नुकसान पहुंचेगा नेहरू को। मेरा मतलब समझे न आप?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। यह ठीक और गलत का नहीं, मैं कहता हूं, सिनसियर नहीं हैं। यानी मैं कहता हूं, नेहरू गांधी से ज्यादा ठीक हैं, लेकिन सिनसियर नहीं हैं। गांधी बिल्कुल गलत हैं, लेकिन एकदम सिनसियर हैं। मेरी जो तकलीफ है, तो वह जो मैं जहां ठीक कहता हूं, ठीक का कुल मेरा मतलब इतना है, गांधी के साथ हिंदुस्तान में सैकड़ों महात्मा थे, लेकिन गांधी की तरह सिनसियर कोई आदमी नहीं था। लेकिन गांधी की सिनसिआरिटी बिल्कुल गलत थी, जिसमें वह लगी हुई थी। और इसलिए मेरा कहना है कि उनकी सिनसिआरिटी खतरनाक है। क्योंकि एक आदमी आपकी गर्दन काट दे बिल्कुल सिनसिआरिटी से, तो भी गर्दन ही काट रहा है आखिर में। उनको शक नहीं है कि वह जो कह रहे हैं वह गलत है या नुकसान पहुंचाएगा। शक हो तो फौरन रुक जाएं। वह जो जहां भी मैं कहता हूं उनको, जिस अर्थ में मैं कभी भी ठीक कहा हूं, वह इतने अर्थ में ठीक कहता हूं। लेकिन जो भी गांधी कहते हैं, वह जो गांधीयन फिलासफी है, वह जो जिंदगी को देखने का ढंग है, वह पूरा गलत है। और उसका विरोध करना... ।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बड़ा मजा यह है, बिके कि गलत चीज ही चल सकती है, क्योंकि सारा समाज गलत है। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? ठीक चीज को चलना ही मुश्किल है। ठीक चीज

को चलने में हजारों वर्ष लग जाते हैं। और गलत चीज ही चल सकती है, क्योंकि सारा समाज गलत है। और उस गलत चीज के अनुकूल है सारा समाज। अब हजारों-लाखों साल तक गलत चीजें चलती हैं, उससे कोई मतलब नहीं है।

ठीक आदमी को सक्सेस होना बहुत मुश्किल हो जाता है।

ठीक आदमी को सक्सेस होने में समय लगता है। बहुत समय लगता है। और यह भी
हो सकता है, उसकी जिंदगी में कोई सक्सेस न हो। और अक्सर ऐसा हुआ है कि ठीक आदमी अपनी जिंदगी में सक्सेस नहीं हो सके। हजारों साल, मर जाने के बाद कहीं उनकी बात को बल मिला और लोगों को समझ में आया कि वह बात ठीक थी।
और गलत आदमी एकदम सक्सेसफुल हो सकते हैं। गांधी की सक्सेस फिनामिनल है। ऐसा कोई आदमी अपनी जिंदगी में इस तरह सफल नहीं हो सकता। और हो जाने का कुल कारण इतना है कि गांधी जो कहते हैं, भारत का जो मूढ़ चित्त है, उसको वह अपील होता है। मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? वह जो हमारा चित्त है, वह बना हुआ है, वह उसको अपील करता है कि बिल्कुल ठीक है यह बात। गांधी की सफलता गांधी के गलत होने की वजह से है। और यह भी हो सकता है कि गांधी के खिलाफ जो बात कही जाए ठीक उलटी दिशा में, वह सफल न हो पाए इतनी जल्दी। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
लोग कहते हैं कि सत्य हमेशा जीतता है, लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि असत्य जीतता है, सत्य को बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती है। क्यों करनी पड़ती है? क्योंकि जिन लोगों से हम बात कर रहे हैं, उनका पूरा का पूरा दिमाग निर्मित है एक तरह से। अब जैसे कि जिन्ना सक्सेस नहीं हुआ, सफल नहीं हुआ? जिन्ना सफल हुआ! मुसलमान इतिहास में लिखा जाएगा कि जिन्ना जैसा सफल आदमी खोजना मुश्किल है। क्या होती और सफलता? लेकिन जिन्ना मुसलमानों का नेता कैसे हो सका? क्योंकि मुसलमानों ने जो बेवकूफी, उसको वह सहारा दे रहा है। इसलिए वह नेता है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? जिन्ना की जो सफलता है वह...

समझदार मुसलमान हो जाएंगे तो जिन्ना गलत हो जाएगा न।

समझदार मुसलमान हो जाएं, तो जिन्ना से एकदम छुटकारा हो जाए। समझदार मुसलमान हो जाएं, तो मुसलमान होने से छुटकारा हो जाए। जिन्ना तो गया। यानी मतलब यह है, वह जिन्ना तो तभी तक है, जब तक नासमझी है। लेकिन जिन्ना पूरी तरह सफल हुए। इसमें क्या असफलता है? लेकिन किस चीज को अपील किया उन्होंने? वह जिस चीज को अपील किया वह चीज ही गलत है।
तो मेरी जो दृष्टि है, यह तय नहीं होता कि कौन सफल हो गया, इसलिए कोई सही नहीं होता, इसलिए कोई सही नहीं होता।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, वही चीज, हम सफलता-वफलता का विचार ही नहीं करते। तो वह तो जैसे- जैसे लोग तैयार होते चले जाएंगे, मैं गांधी के पूरे विचार के विरोध में हूं, एक-एक इंच। लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता न वह सब कुछ।

कल आपको लगे कि गांधी ठीक था, तो आपको सुनने वाले कहां चले जाएंगे?

अगर मेरे सुनने वालों ने मुझे अंधे की तरह माना है, तो वे दिक्कत में
पड़ जाएंगे। और अंधे हमेशा दिक्कत में पड़ते हैं, इसमें मेरा क्या कसूर है? समझे न आप? और अगर मेरे सुनने वालों ने और मैं तो पूरी कोशिश यह कर रहा हूं कि अंधेपन की दुश्मनी की कोशिश कर रहा हूं, अगर मेरे सुनने वालों ने ठीक सुना है तो वह मुझे गलत कहेंगे कि यह आदमी गलत हो गया है। इससे क्या फर्क पड़ता है? यानी यह अगर मैंने कहा इसलिए आपने मान लिया, तो मुश्किल में पड़ने ही वाले हैं, क्योंकि कल मैं बदल सकता हूं। लेकिन मैंने जो कहा, आपने सोचा, और इसलिए माना कि आपकी बुद्धि को जंचा, तो कल जो मैं कहूंगा, वह भी आप सोच

लेना, जंचे तो ठीक है नहीं तो बात खत्म। बंधने का सवाल ही नहीं है। और इसलिए मेरा कहना है, मुझसे बंधने का कोई सवाल ही नहीं है, कोई मुझसे बंधा ही नहीं है, कोई प्रश्न नहीं है। मुझे जो ठीक लगेगा, वह मैं कहूंगा। आपको ठीक लगेगा, आप मानेंगे, नहीं लगेगा ठीक, नहीं मानेंगे। और मेरा कहना ही यह है कि आप मानना ही मत अंधे की तरह। गांधी जी ने इस पर बहुत जोर दिया, अंधे की तरह मानने पर। गांधी जी ने अपनी सारी बातें बिना दलील के इस मुल्क को मनवाने की कोशिश की, बिना दलील के!

उन्होंने सत्याग्रह... ।

सत्याग्रह करना कोई दलील नहीं है। और यह कहना कि मेरी अंतरात्मा कहती है, इसलिए मैं ऐसा ही करूंगा, यह भी कोई दलील नहीं है। कल मैं यह डायरी देख रहा था, गांधी सिनटोनी पर निकाली। तो उसमें लिखा है कि जब किसी चीज का निर्णय न हो पाए, तो अंतिम निर्णय अंतरात्मा का है, वही सत्य है। तुम्हारे लिए होगा। लेकिन तुम कहते हो, पूरे मुल्क के लिए सत्य है! अंबेदकर की अंतरात्मा कुछ और कहती है, जिन्ना की अंतरात्मा कुछ और कहती है, तुम्हारी अंतरात्मा कुछ और कहती है! हम किसको सत्य मानें? हमारी अंतरात्मा को मानेंगे न हम, तुम्हारी तो नहीं।

बेसिकली रांग इनट्रेक्शन।

बेसिकली रांग। अंतरात्मा की आवाज आपके लिए सत्य है, लेकिन आप दूसरे
पर नहीं थोप सकते हैं। और यह बड़ी थोपने की तरकीब है। मैं कहूं कि अगर आप नहीं मानोगे, तो मैं भूखा मर जाऊंगा। तो एक अच्छे आदमी को सोच कर कि यह आदमी भूखा न मर जाए, पता नहीं यही ठीक हो। और सब तरफ से आप पर प्रेशर पड़ना शुरू होगा, पूरा पूना कहेगा कि वह एक आदमी मर रहा है, आप क्या गड़बड़ कर रहे हो?

कल इससे ज्यादा ठीक से गांधी को समझ लिया जाता है, जैसा आप कहते हैं,
तो फिर गोडसे को इतना लोग बदनाम नहीं करेंगे।

गोडसे तो गलत है ही। न, न, न, गोडसे तो गलत है ही। गांधी गलत हैं, इसलिए गांधी को मारना थोड़े ही सही है। यह तो सवाल ही नहीं है। नहीं, मेरी आप बात नहीं समझे।

... एक आदमी को मार दिया।

मारना तो गलत है ही, क्योंकि मारने से गांधी की गलती को समझना मुश्किल
हो गया। गोडसे ने गांधी को महात्मा बना दिया, नहीं तो गांधी इतने बड़े महात्मा थे नहीं। आप समझते हैं न? गांधी इतने बड़े महात्मा कभी भी नहीं थे। यह गोडसे की कृपा है कि गांधी एकदम इतने बड़े महात्मा हो गए कि अब उनका आलोचना करना मुश्किल हो गया। गोडसे ने गोली मार कर जितना नुकसान किया है, उसका हिसाब नहीं। वह नुकसान गांधी को मारने का तो है ही, फिर गांधी तो खैर मर ही जाते, दो-चार-पांच साल में मरते, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन गांधी को मार कर गोडसे ने गांधीवाद पर ऐसी कील बिठा दी, जिसका कोई हिसाब नहीं है।
अगर जीसस को यहूदियों ने न मारा होता, तो शायद क्रिश्चिएनिटी कहीं भी नहीं होती। जीसस से कोई प्रभावित नहीं हुआ था, सूली से बहुत लोग प्रभावित हो गए। गांधी से आप इतने प्रभावित नहीं थे, गोली लगने से आप भी रोने लगे। और उस रोने में आप कोमल हो गए, एक साफ्ट कार्नर हो गया माइंड का गांधी के लिए कि बहुत बुरा हुआ गांधी के साथ, गोडसे बहुत बुरा आदमी है और इसकी तुलना में गांधी बहुत अच्छा आदमी है। वह गांधी का अच्छापन गोडसे की तुलना में हो गया। यानी जो कठिनाई हो गई न, कंट्रास्ट बहुत उलटा हो गया। गांधी को सोचा

जाना चाहिए था मार्क्स की तुलना में, महावीर की तुलना में, बुद्ध की तुलना में, फ्रायड की तुलना में। वह मामला खत्म हो गया। अब जब आप कहते हैं, गांधी, गोडसे, तो और बड़ी गड़बड़ हो गई। वह गोडसे बिल्कुल काली शक्ल है और गांधी उसके सामने बहुत प्रखर दिखाई पड़ने लगे। और गाली मार कर गोडसे ने बुरा किया, अच्छा नहीं किया। कोई आदमी कितना ही गलत है, उस गलत आदमी को अपनी गलत बात कहने का हक है। और कोई आदमी कितना ही सही है, तो भी गलत आदमी की आवाज बंद करने का कोई हक नहीं है। क्योंकि यह इसका मतलब यह हुआ, गोडसे जैसे लोगों की जो भूल है वह यह है कि गोडसे जैसे लोग गोली को आर्ग्युमेंट समझते हैं। कोई गोली आर्ग्युमेंट है? अगर आप एक लट्ठ मेरे सिर में मार दें तो मेरी बात गलत हो गई? और अगर आप लट्ठ मारते हैं, तो एक बात तो तय है कि आप मुझे ठीक मानते थे और मुझे गलत सिद्ध करने में असमर्थ थे। गोडसे की कंपनी जो थी इस मुल्क में, या है अभी भी, वह पूरी की पूरी कंपनी गांधी को जवाब देने में असमर्थ है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, वह चलेगा, चलेगा। नहीं, उसको भगवान बनाने की कोशिश चलेगी, भगवान गोडसे बनाने की कोशिश चलेगी।

उस आदमी को जिसको गोली मारी, उन्हीं को हम भगवान बना लेंगे।

न-न, वह तो चलेगी कोशिश।

प्रार्थना में उनका नाम लेते हैं...

नहीं, वह तो जिन्होंने मारा, कोई गोडसे अकेला नहीं था, वह एक प्रतिनिधि था एक वर्ग का। एक वर्ग है पीछे, वह आज भी है। वह बीस साल चुप रह लिया, क्योंकि... ।

अगर गांधी जी को काटना हो, तो आप जैसे लोग उसे ज्यादा अच्छी तरह काट सकते हैं।

वही जरूरी है, वही जरूरी है। गोडसे क्या करेंगे किसी को काट कर, गोडसे क्या काट सकते हैं? ये तो गधे हैं। इनकी नासमझी की वजह से तो भारी नुकसान होता है। ये आर्ग्युमेंट का मामला ही तोड़ देते हैं।

गांधी जी ने ऐसी कोई सख्ती तो नहीं की। गांधीवाद...

गांधी जी ने बहुत सख्ती की। गांधी की सख्ती का तो हिसाब नहीं है। इतनी
तो हिटलर ने भी नहीं की। वह तो दिखाई... वह तो पूरा गांधी का सब मामला पढ़ोगी तो बहुत घबड़ा जाओगी। लेकिन कोई पढ़ ही नहीं रहा है! क्योंकि हम तो सिर्फ नेतागण जो वाहवाही की बातें करते हैं, वह सुनते हैं।
कराची में कांफ्रेंस थी कांग्रेस की, कांग्रेस की बैठक थी। तो गांधी
जी तो हमेशा कहते थे, मेरा कोई वाद नहीं है। वहां कम्युनिस्टों ने काले झंडे दिखाए कराची में और गांधीवाद मुर्दाबाद के नारे लगाए। वे मंच पर बैठे थे। उसी वक्त झंडे निकाल कर उन्होंने चिल्लाया, गांधीवाद मुर्दाबाद। उनको एकदम गुस्सा आ गया। उन्होंने माइक पर जो शब्द कहे, वह भूल में निकल गए। फिर जिंदगी भर पछताए। शब्द ये निकल गए, कहा उन्होंने कि गांधी मर सकता है, गांधीवाद अमर है। और हमेशा कहते थे, गांधीवाद है ही नहीं। गांधी मर सकता है, गांधीवाद अमर है! यह जल्दी में और गुस्से में निकल गया। मेरा मतलब आप समझे न? लेकिन यह ज्यादा आथेंटिक है जो मैं सुबह कह रहा था।

सबकांशस से आया।

यह सबकांशस से आया। यह भीतर से आया, यह ऊपर से नहीं आया। लेकिन हमारी
तो क्या कठिनाई हो गई कि हम व्यक्तियों का विश्लेषण ही नहीं करते कि कुछ खोजें कि वह विश्लेषण पूरा का पूरा ख्याल में आ सके कि कहां से आ रहा है।

आपको उनका पहलू उखाड़ना पड़ेगा, इसमें आपकी काफी एनर्जी लग जाएगी।

मेरी एनर्जी लगती नहीं, मेरी एनर्जी लगती नहीं, क्योंकि उखाड़ना मुश्किल है। क्योंकि आम आदमी गोडसेवादी होता है। अगर उसकी बात न मानूं, तो मारने की तबीयत होती है उसकी। अभी मुझे कितनी चिट्ठियां पहुंचती हैं कि आप फलां बात मत कहिए नहीं तो आपको गोली मार दी जाएगी। अब यह कोई गोडसे नहीं है, बेचारों के दिमाग वही है।
अभी पटना में मैं शंकराचार्य के खिलाफ बोला, बस उसी समय एक चिट्ठी पहुंच गई कि अगर आप शंकराचार्य के खिलाफ एक शब्द बोले तो आप पटना से जिंदा नहीं जा सकेंगे! अब गोडसेवादी कौन है? हम सब गोडसेवादी हैं!
अब बाप की अगर बेटा न माने, बाप कहता है, एक चपत लगाऊंगा, ठीक कर दूंगा।
वह क्या कह रहा है, वह गोडसेवादी है। वह यह कह रहा है कि हम बाप हैं, हम तुमको मार सकते हैं अगर नहीं माना तुमने तो। लड़का कहता है, मुझे फलां लड़की से शादी करना है, बाप कहता है, नहीं करने देंगे। अगर करोगे तो घर से बाहर निकाल देंगे। वह गोडसेवादी है।
गोडसेवादी का मतलब क्या होता है? गोडसेवादी का मतलब यह होता है कि बुद्धि को, विचार को नहीं मानता, मार-पीट को मानता है। उसका और कोई और मतलब नहीं होता। हम सब मार-पीट को मानते हैं। हम सब भीतर से मानते यह हैं कि अगर नहीं मानता कोई आदमी तो उसका सिर खोल दो, फिर मान जाएगा। वह जिनको तुम गांधीवादी कहते हो, उसमें से निन्यानबे परसेंट गोडसेवादी हैं।
अभी राजकोट में उन्होंने यह किया कि जहां मेरी मीटिंग रखी, वहां हाल कैंसिल करवा दिया। ग्राउंड, तो ग्राउंड नहीं देंगे। अखबार में खबर नहीं छापेंगे, एडवरटाइजमेंट भी नहीं लेंगे कि मैं आया हूं राजकोट में, यह भी पता न चल सके! अब यह क्या है? यह सब गोडसेवाद है। इसका मतलब यह है कि मैं जो कहना चाहता हूं, वह नहीं सुनने दिया जाए लोगों को? अगर कोई तरह से मैंने कहना जारी रखा तो आखिरी उपाय यह है कि गर्दन काट दो, फिर यह बोल ही नहीं सकेगा! मगर ये तरकीबें वही हैं। हॉल कैंसिल करवा दो, मीटिंग मत होने दो, अखबार में खबर मत निकलने दो! आप क्या कह रहे हैं? आप यह कह रहे हैं, इस आदमी को हम बोलने नहीं देंगे। लेकिन अगर यह आदमी बोलता ही चला जाए और आपका कोई उपाय न चले, तो आप कहेंगे, गोली मारो, जिसमें यह बोल न सके! मारते किसलिए हैं? वह इसलिए कि यह आदमी जो कर रहा है, वह न कर सके। मगर यह दलील नहीं होगी, यह कमजोरी होगी। गोडसे जो है एकदम कमजोर आदमी है। और इस तरह के सब लोग कमजोर हैं। लेकिन में गांधी का विरोध करता हूं, तो कोई यह नहीं कहता कि यह गोडसे कोई अच्छा आदमी है। गोडसे तो गलत आदमी ही है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बहुत से कारण हैं ताकत के। कारण बहुत हैं ताकत के। अकेला सत्य ही कारण नहीं होता। अकेला सत्य ही कारण नहीं होता, हजार कारण होते हैं ताकत के। जैसे...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न, फोर्स लाने के तो हजार रास्ते हैं। पहली तो बात यह है कि आम आदमी को सत्य तो समझ में नहीं आता, स्वार्थ समझ में आता है। और स्वार्थ बड़ी ताकत है। जैसे आज मजदूरों को जा कर एक आदमी समझाए कि तुम इकट्ठे हो जाओ, हम

फैक्टरी पर तुम्हारा कब्जा करवा देंगे। तो उस मजदूर को कोई कम्युनिज्म थोड़े ही समझ में आ रहा है। उसको तो कुल इतना समझ में आ रहा है कि यह तो बहुत बढ़िया है, अगर फैक्टरी पर कब्जा हो जाए। उसे कम्युनिज्म से थोड़े ही मतलब है। उसे कोई कम्युनिज्म का सत्य थोड़े ही समझ में आ रहा है। उसे समझ में यह आ रहा है कि ठीक है, अच्छा है। तो चलो बहुत रौब दिखा लिया मालिक ने, अब अपन भी जरा इस पर कब्जा कर लें। ताकत इकट्ठी हो गई, उतने स्वार्थ इकट्ठे हो गए। मालिक भी कोई फैक्टरी पर इसलिए कब्जा नहीं किए हुए है कि मजदूरों का भला कर रहा है। उसका अपना स्वार्थ है। अब दो स्वार्थ हैं, एक मालिक का और एक मजदूरों का। जिसमें जो बड़ा होगा, वह जीत जाएगा। इसमें सत्य का कोई सवाल नहीं है। दो स्वार्थ लड़ेंगे, जो ताकतवर होगा, वह जीत जाएगा। अगर मालिक की पुलिस, अदालत साथ है, तो पूना में मालिक जीत जाएगा। कलकत्ते में मालिक हार जाएगा, क्योंकि वहां पुलिस और अदालत मजदूर के साथ होगी। जो संघर्ष चल रहा है जगत में, वह स्वार्थों का संघर्ष है। और सत्य तो सिर्फ उसको दिखाई पड़ सकता है, जिसका कोई स्वार्थ न हो। और इसलिए सत्य बहुत कम लोगों को दिखाई पड़ता है। बहुत कम लोगों को दिखाई पड़ता है। सत्य की ताकत जो है उसका दूसरा अर्थ है।

लेकिन रूस को तो स्टैलिन उन्नति की ओर ले गया?

हां-हां, बिल्कुल ले गया, बिल्कुल ले गया। लेकिन वह इस ढंग से ले गया
कि अब सारा मुल्क स्टैलिन को गाली दे रहा है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न-न, वह पहले समझ में आने भी नहीं देता वह। वह तो गोली का मामला था न, गोडसेवादी हैं सब। स्टैलिन तो समझ... स्टैलिन के जिंदा रहते हुए तो आप--अब मैं कल सुना रहा था न, ख्रुश्चेव की कह रहा था न आपसे। कल मैं कह रहा था कि ख्रुश्चेव एक मीटिंग में बोल रहा था। उनकी जो कॉमनटन है, सारे बड़े कम्युनिस्ट नेताओं की, तीस सदस्यों की, उसमें वह बोल रहा था और उसने स्टैलिन का उसमें विरोध किया। मर जाने के बाद स्टैलिन के! तो एक सदस्य ने पीछे से आवाज लगाई कि आप तब कहां थे जब स्टैलिन जिंदा था? तब आपने क्यों नहीं विरोध किया? और आप तो जीवन भर से स्टैलिन के साथ थे? तो ख्रुश्चेव एक क्षण रुका और उसने फिर पूछा कि यह किस सज्जन ने आवाज लगाई है, कृपया खड़े होकर अपना नाम बता दीजिए? तो कोई खड़ा नहीं हुआ, कोई नाम नहीं आया! ख्रुश्चेव ने कहा, बस यही कारण मेरे साथ था, जो तुम अपना नाम नहीं बता पा रहे हो। जो मैं तुम्हारे साथ कर सकता हूं, वह स्टैलिन मेरे साथ करता। वह नहीं बता सका आदमी, क्योंकि बताना, मतलब मरना है। ख्रुश्चेव ने कहा, यही मामला मेरा था। मैं भी सब सुनता था, देखता था, लेकिन बोल नहीं सकता था। लेकिन मुल्क ने बहुत बुरा बदला लिया स्टैलिन के साथ। पहले उसकी कब्र बनाई क्रेमलिन के पास जहां लेनिन की कब्र है। फिर कब्र को उखाड़ा, हटाया वहां से। वहां से हटा दी कब्र को, लाश को हटा दिया वहां से, वहां नहीं रखने दिया फिर पीछे। अब स्टैलिन ने काम बहुत किया, लेकिन काम जिस ढंग से किया--कोई अस्सी लाख आदमियों की हत्या की रूस में। अकेले स्टैलिन की हुकूमत ने अस्सी लाख लोग मारे होंगे!

इनको बचाया जा सकता था।

अस्सी लाख को बिल्कुल बचाया जा सकता था। इतनी बड़ी संख्या में हिंसा
की जरूरत नहीं थी। लेकिन हिंसा अगर बचाई जाती तो स्टैलिन को नहीं बचाया जा सकता। स्टैलिन खो जाता। स्टैलिन खो जाता फिर, दूसरे लोग ताकत में आ जाते।
तो जो भी ताकत में आ सकता था, उसको खत्म कर दिया फौरन।

देश का भला कर दिया... ।

देश का भला थोड़ी दूर तक तो दिखाई पड़ेगा, लेकिन बहुत गहरे में तो खुद का डिक्टेटरशिप ही राज थी। देश में इसके भले तो हमारे बहुत कुछ जस्टिफिकेशंस होते हैं कि जो हम कर रहे हैं, वह उतने साफ नहीं होते।

क्रेमलिन से स्टैलिन की कब्र खोद कर फेंकी गई, यह क्या घृणा थी या कोई राजनीति का पाट अर्ज किया गया।

घृणा और रिवेंज और बदला ख्रुश्चियों का! असल में होता क्या है, अंडर-डॉग जो होते हैं, वे पीछे, उनको क्रोध तो रहता ही है हमेशा। अब ख्रुश्चेव को जिंदगी भर, जब तक स्टैलिन जिंदा था, जी-हजूरी करनी पड़ी। जो स्टैलिन कहे, वही सत्य था। इसमें कोई ना-नूच करने की जरूरत न थी। लेकिन मन में तकलीफ तो होती है, अपमान तो होता ही है इस सबसे।

... कि नेहरू को लोकप्रिय देखा था ख्रुश्चेव ने। भारत में नेहरू इस वक्त लोकप्रिय हैं। काश वह स्टैलिन ने कर ली। तो भारत रूस के मुकाबले बहुत ही जल्दी आ जाएगा। इसलिए असली शुरुआत, अपना पिछला दाह मिट जाएगा मेरा, और खास बात नेहरू भुलावे में आ जाएगा। और...

भारत तो कभी भी रूस... , एक। और ख्रुश्चेव को भारत-वारत से कोई डर नहीं होता। उस सबसे कोई मतलब नहीं है। और यह जो लोकप्रियता होती है, नेहरू जैसी लोकप्रियता, यह किसी डिक्टेटर को कभी नहीं मिल सकती। यह मिल ही नहीं सकती।

बाद में नहीं, पहले ही मिल जाती है।

डिक्टेटर को कभी नहीं मिल सकती।

डिक्टेटर बनने के लिए लोकप्रियता ही खास बीज है।

रूस में मामला बहुत अजीब है। रूस में पता ही नहीं चलता कि कल कौन आदमी
बन जाएगा। क्योंकि थोड़ा सा ग्रुप सब मैनेज कर रहा है। छोटा ग्रुप। बहुत थोड़ा सा ग्रुप है जो मैनेज करता है। कुछ पता नहीं चलता वहां। जनता से कोई मतलब नहीं है।

चीन के हमले का कारण क्या था भारत पर खास?

बहुत कारण, लेकिन, बहुत कारण, बड़ा कारण तो यह था कि चीन जांच-परख कर रहा
है अपने आस-पास कि कौन कितना ताकतवर है, सिर्फ। वह जांच-परख, हमला करने में सिर्फ एक ख्याल था कि जांच-परख हो जानी चाहिए आस-पास दुश्मन कौन ताकतवर है। और किससे टक्कर हो सकती है। वह भारत से ही टक्कर एशिया में हो सकती थी। और भारत को उसने जान लिया कि कोई खतरा नहीं है, कभी भी टक्कर ली जा सकती है। तो इसलिए वापस लौट गया। अब वर्ल्ड फोर्से.ज में किससे टक्कर ली जा सकती है? तो दो ही फोर्सेज हैं, अमरीका है या रूस है। अमरीका से टक्कर लेना मंहगा पड़ सकता है। रूस से टक्कर लेना सस्ता पड़ेगा।
चीन के इरादे वर्ल्ड डामिनेशन के हैं। माओ के पास वही दिमाग है जो हिटलर के पास था, नेपोलियन के पास था, सिकंदर के पास था, वही दिमाग है। वह अपनी पूरी कोशिश करेगा। एशिया में एक से ही डर था, सिर्फ भारत से। एशिया में किसी और से तो डर का कारण ही नहीं। एशिया में, बाकी पूरा एशिया दो दिन में रौंदा जा सकता है। और भारत की जांच कर ली कि कितनी ताकत है। भारत को कभी रौंदा जा सकता है, दिक्कत नहीं है कोई।

वह तो नीचे ही नहीं आया।

नहीं, दिक्कत नहीं है, दिक्कत नहीं है भारत के साथ। इसकी जांच हो गई, मामला खत्म कर लिया। इसकी जांच कर लेनी जरूरी, दुश्मन से हम लड़ते हैं न--दो आदमी कुश्ती लड़ते हैं, तो पहले हाथ मिलाते हैं। जनता सोचती होगी कि हाथ प्रेम से मिला रहे हैं। वे एक-दूसरे का हाथ दबा कर देखते हैं कि ताकत कितनी है। पहलवान लड़ने जाते हैं न, तो पहले ऐसा हाथ मिलाते हैं, तो लोग यह समझते हैं कि ये सिर्फ सदभाव प्रकट कर रहे हैं। सदभाव नहीं है वह। वह तो हाथ को दबा कर देखते हैं कि मामला कितना है, हमें कैसे आदमी से जूझना है।
वह सिर्फ हाथ दबा कर देखा भारत का और समझ में आ गया कि मामला बिल्कुल बोगस है भारत के पास। यह कभी भी तोड़ा जा सकता है, इसलिए पीछे लौट गया।

इससे उसको चायना को नुकसान हुआ या फायदा हुआ?

इससे फायदा हुआ चायना को। चायना कोई नुकसान ही नहीं हो रहा पंद्रह साल से।

इंडिया भी ताकतवर बन जाएगा, चायना ने अटैक किया तो।

यह भी समझ लिया, यह भी समझ लिया। हमारी साइकोलॉजी समझना बहुत आसान है दुनिया में। और यही हम नहीं जानते। इसीलिए चुपचाप वापस लौट गया। क्योंकि अगर वह लड़ाई जारी रखे, तो हिंदुस्तान ताकतवर हो सकता है। वह वापस खींच लिया हाथ अपना। बात ही खत्म कर दी। और साल भर बाद आपने सारे अरेंजमेंट तोड़ दिए जो आप तैयारी भी कर रहे थे। अब आप कोई तैयारी नहीं कर रहे हैं। आपके दिमाग को समझ लिया गया है कि आप जब लड़ाई होगी, तभी तैयारी करते हो। आगे- पीछे तैयारी नहीं करते। आपका माइंड साफ है, बहुत साफ है। यानी हम उन लोगों में से हैं कि जब मकान में आग लग जाएगी तो कुआं खोदेंगे! मकान में आग बुझ गई, कुआं खोदना बंद कर दिया! इसलिए वह तो, वह सिर्फ एक...

सारा मुल्क ऐसा है।

हमारा माइंड ऐसा है कि उसकी तैयारी करनी चाहिए।

नये भारत की खोज
आठवां प्रवचन

अच्छे लोग और अहित

प्रश्नकर्ताः आप जो विस्फोटक बातें देश के जीवन और गांधी जी के संबंध में कह रहे हैं, उससे तो लोग आपसे दूर चले जाएंगे।

उत्तरः मैं इसके लिए जरा भी ध्यान नहीं रखता हूं कि लोग मेरे करीब आएंगे या मुझसे दूर जाएंगे। वह मेरा प्रयोजन भी नहीं है। जो ठीक है और सच है, उतना ही मैं कहना चाहता हूं। सत्य का क्या परिणाम होगा, इसकी मुझे जरा भी चिंता नहीं है। अगर वह सत्य है तो लोगों को उसके साथ आना पडेगा, चाहे वह आज दूर जाते हुए मालूम पडे। और लोग पास आएं इसलिए मैं असत्य नहीं बोल सकता हूं। फिर, सत्य जब भी बोला जाएगा, तभी प्राथमिक परिणाम उसका यही होगा कि लोग भागेंगे। क्योंकि हजारों वर्ष से जिस धारणा में वे पले हैं, उस पर चोट पडेगी। सत्य का हमेशा ही यही परिणाम हुआ है। सत्य हमेशा डेवेस्टेटिंग है, एक अर्थों में--कि वह जो हमारी धारणा है, उसको तो तोड डालो। और अगर धारणा तोडने से हम बचना चाहें, तो हम सत्य नहीं बोल सकते। जान कर मैं किसी को चोट नहीं पहुंचाना चाह रहा हूं, डेलिब्रेटलि मैं किसी को चोट पहुंचाना नहीं चाहता हूं। लेकिन सत्य जितनी चोट पहुंचाता है, उसमें मैं असमर्थ हूं, उतनी चोट पहुंचेगी; उसको बचा भी नहीं सकता। फिर मैं कोई राजनितिक नेता नहीं हूं कि इसकी फिकर करूं कि लोग मेरे पास आएं। कि मैं इसकी फिकर करूं कि पब्लिक ओपीनियन क्या है?
मैं इस चिंता में हूं कि लोक मानस सत्य के निकट पहुंचना चाहिए। मैं लोक मानस के अनुकूल बनूं, इसकी मुझे जरा भी चिंता नहीं है। सत्य के अनुकूल लोक मानस बनाया जाए, इसकी मुझे चिंता है। और निश्चित ही बहुत सी बातें मैं कह रहा हूं, जो को चोट करने वाली हैं, आघात करने वाली हैं और विध्वंसकारी है। अभी मैं सच में कहा जाए तो पूरी बातें नहीं कह रहा हूं, जो कि और भी चोट करने वाली होंगी, और भी विध्वंसकारी होंगी। तो जैसे-जैसे लोगों की सुनने की भूमिका विकसित होती चली जाएगी, मैं उन सारी चीजों को कहना चाहूंगा।
तो यह प्रारंभ है यात्रा का। अभी इसमें और बहुत कुछ कहने जैसा है। जैसे जीवन के सारे मसलों पर हमारी दृष्टि थोथी और झूठी है, तो मैं जीवन के प्रत्येक मसले पर जहां-जहां झूठ है, वह कहना चाहूंगा। और न केवल कहना चाहूंगा, बल्कि अगर संभावना बन सकी और शक्ति इकट्ठी हो सकी तो उस चीज को बदलने के लिए भी चेष्ठा करूंगा। जैसे कि सेक्स के बाबत अभी मैंने कहा। इधर तीन वर्षों तक सिर्फ मैंने भूमिका बनाने की फिकर की। कभी-कभी थोडा मैं कुछ बोल रहा था--कभी ब्रह्मचर्य के संबंध में, कभी किसी और के संबंध में, लकिन पूरी बात नहीं कही थी। फिर मुझे लगा कि अब भूमिका बनी है, अब इस बात को कहा जा सकता है, तो मैंने कही। लेकिन अभी भी सेक्स पर बहुत कुछ कहने को है। और वह जैसे भूमिका बनेगी तो मैं कहूंगा।
ऐसी ही शिक्षा पर, ऐसे ही परिवार पर, ऐसे ही आर्थिक व्यवस्था पर, ऐसे
ही देश की राजनीति पर।
मुझे लगता ऐसा है कि हिंदुस्तान में दि-तीन हजार वर्षों से जो लोग हुए विचारक, उनमें से कोई भी चोट करने के लिए हिंमत नहीं जुटा पाया। तो उसने ज्यादा से ज्यादा फिकर यह की कि वह पुराने ढांचे में ही पुराने शब्दों का ही उपयोग कर ले। पुरानी मान्यता को ही स्वीकार करके थोडी बहुत हेर-फेर कर सके तो करे। लेकिन सीधी चोट करने की हिंमत नहीं जुटाई जा सकी। इसलिए हिंदुस्तान में विज्ञान पैदा नहीं हुआ। क्योंकि साइंस तभी पैदा हो सकती है, जब हम अनन्य रूप से सत्य के प्रति समर्पित हों। हम इसकी फिकर छोड दें कि क्या परिणाम होगा। जो सत्य है, नग्न सत्य, उसको स्वीकृत करने की हिंमत से विज्ञान शुरू होता है, और नहीं तो फिर आदमी फिकशन में जीता है। हमारा मुल्क पुराण कथाओं में जी रहा है विज्ञान में नहीं। उसके चिंतन का ढंग साइंटिफिक नहीं है।

जो तकलीफ है, वह यह है कि हम सब व्यक्तियों से बंधे हुए हैं--कोई महावीर से बंधा हुआ है, कोई कृष्ण से बंधा हुआ है, कोई गांधी से बंध गया है।
जो लोग भी व्यक्तियों से बंध जाते हैं, उनकी सत्य के प्रति यात्रा बंध हो जाती है। क्योंकि फिर वह सदा यह सोचते हैं कि इसने जो कहा है वही सत्य है। इससे अन्यथा सत्य नहीं हो सकता।
तो अभी तो मैं सिद्धातों पर चोट कर रहा हूं, जो कि उतनी खतरनाक नहीं है। आने वाले दिनों में मैं व्यक्तियों पर भी चोट करूंगा, जो कि ज्यादा खतरनाक और डेवेस्टेटिक मालूम होगी। क्योंकि अगर मैं अहिंसा केसंबंध में कुछ करता हूं तो उतनी चोट नहीं पहुंचाती है। अगर मैं कहूं कि महावीर यह गलत कहते हैं, तो वह चोट और ज्यादा पहुंचने वाला है। क्योंकि व्यक्तियों से हमारे मोह ज्यादा हैं।

प्रश्नकर्ताः नेहरू ने कहा है कि... (अस्पष्ट)

उत्तरः इतनी आंखों के केंद्रित बन जाने से वह खुद हिप्नोटाइज हो रहा है। तो व्हिस्की का असर हो सकता है। नेहरू ने गलत नहीं कहा। इसलिए मैं व्यक्तियों पर चोट करने की तैयारी करूंगा, क्योंकि जब तक उन पर चोट नहीं की जा सकती, इस मुल्क में चिंतन पैदा नहीं किया जा सकता।

प्रश्नकर्ताः आप कम्पेयर कर रहे हैं?

उत्तरः न-न, कंपेयर नहीं कर रहा हूं, लेकिन जहां तक हिप्नोटाइज करने
का सवाल है, वे कंपेयर किए जा सकते हैं। और किसी मामले में मैं कंपेयर नहीं करता हूं। यानी वह तो कोई भी नेता--नेतागिरी हिप्नोसिस पर खडी हुई है, लीडरशीप जो है, वह हिप्नोसिस पर खडी हुई है। लीडर होने का मतलब है कि जाने अनजाने हिप्नोटाइज करना, नहीं तो आप लीडर बन नहीं सकते। और जिस दिन दुनिया में हिप्नोटाइज के बाबत पूरी जानकारी हो जाएगी, उस दिन लीडर की मौत हो जाने वाली है, लीडर जिंदा नहीं रह सकता। तो अब वे सफल हिप्नोसिस के रास्ते खोज रहे हैं, जिनमें कि आपको ऊपर से भी पता न चले।
अभी मैंने पढा, एक एक्सपरिमेंट वे अमरीका में करते हैं--कि अभी फिल्म
के ऊपर एडवरटाइजमेंट करते हैं आपके सामने। तो सामने का आदमी सचेत हो गया है एडवरटाइजमेंट से, क्योंकि एडवरटाइजमेंट कि जो हिप्नोसिस है, वह अमरीका में आज जाहिर हो गई है। एक लक्स टायलेट साबुन को बार-बार रिपीट करने से आदमी हिप्नोटाइज हो जाता है। तो अब जनता को पता चल गया है। तो अब एक रेसिस्टेंस पैदा हो रहा है। तो अब उसको इतने सूक्ष्म रूप से करना है कि उसको पता न चले। बडी अजीब बात निकाली है उन्होंने! वह यह है कि फिल्म चल रही है, चलती हुई फिल्म के बीच में, सेकंड के हजारवें हिस्से में लक्स टायलेट का बीच में से स्नेप निकल जाएगा। वह किसी को दिखाई पडेगा? फिल्म चल रही है, आप फिल्म देख रहे हैं, कहानी चल रही है, बीच में लक्स टायलेट सोप! आपको दिखाई नहीं पडेगा आंख से। तो इसको वे एक्सपरिमेंट कर रहे हैं। और इसका यह परिणाम हुआ कि वह दिखाई तो नहीं पड रहा है आंख से, लेकिन अनकांशस माइंड उससे इंप्रेस हो जाता है। और अगर वह एक फिल्म में तीस बार दिखा जाए, आपको पता भी नहीं चलेगा कि लक्स टायलेट साबुन कोई अच्छा साबुन है, लेकिन वह आपका माइंड पकड लेगा गहरे में और उसमें वह माइंड काम करेगा। तो जैसे ही हिप्नोसिस की पूरी जानकारी हमें हो जाएगी, तो लीडरशीप के नए रास्ते खोजने शुरू करने पडेंगे, लेकिन लीडरशीप हमेशा से हिप्नोटाइज करती रही है--चाहे वह जानकर हो, चाहे वह बे-जानकर हो।
तीन तरह के लीडर हैं। जो लीडर जन्मजात हिप्नोटाइजर हैं, उनको कभी पता नहीं रहता कि हम हिप्नोटाइजर कर रहे हैं। उनको वही पता नहीं रहता! वह तो उनके जावन का हिस्सा है, वह चलता चला जाता है दूसरे वे हैं, जो व्यवस्था से लीडरशिप पैदा करते हैं। पूरे कांशस होते हैं वे, कि क्या करना, क्या बोलना, कैसा कपड़ा पहनना--हाउ टु इंप्रेस की पूरी व्यवस्था है। तीसरे वे हैं जिन्हें जबरदस्ती लीडर बना दिया जाता है। उनको न पता होता, न उनको कोई सहज

भाव होता। वे बेचारे सिर्फ थोप लिए गए लीडर हैं। ये तीन तरह के लीडर्स हैं। इसमें हिटलर दूसरे तरह का लीडर है, जो पूरी की पूरी व्यवस्था से लीडशिप पर जा रहा है। स्टेलिन दूसरे तरह का लीडर है। नेहरू पहले तरह के लीडर हैं। कोई व्यवस्था नहीं हैं, लेकिन हिप्नोसिस तो है और वह जन्मजात है, वह व्यक्तित्व का हिस्सा है।

प्रश्नकर्ताः बड़े लोगों को तो हिप्नोटाइज नहीं किया जा सकता है।

उत्तरः उनको नहीं हिप्नोटाइज किया जा सकता है। सच तो यह है कि वह कोरिस्पॉन्डन्ट को हिप्नोटाइज कराने के लिए पहले दस लाख लोगों को हिप्नोटाइज करना जरूरी है। वह उनकी हिप्नोटाइज करने का ही हिस्सा है। आप मुझसे प्रभावित होंगे, जब दस लाख आदमी मुझसे प्रभावित दिखेंगे--तब कोरिस्पॉण्डण्ट प्रभावित होता है। कोरिस्पॉण्डण्ट तो प्रभावित होता है दस लाख के हिप्नोसिस को देखकर। तब वह सोचता है कि यह आदमी अर्थ का है, इसकी बात अर्थ की है। अगर मेरे पास एक आदमी भी नहीं हो, तो आप मुझसे पूछने नहीं आएं कि मैं क्या कर रहा हूं।
मेरा मतलब इण्डीवीजुअल नहीं है, मास हिप्नोटिजम की संभावना पूरी है।
और इंडीवीजुअली हिप्नोटाइज करने में तो देर लगती है, मास हिप्नोसिस बहुत आसान है। एक एक आदमी को हिप्नोटाइज करने में एक एक आदमी रेजिस्ट करता है। मास हिप्नोटिजम में तो रेजिस्टेंस नहीं है किसी का। और आपके आसपास के लोग हिप्नोटाइज हो गए, तो आपको पता नहीं चलता कि आप कब हिप्नोटाइज हो गए हैं। तो एक इंडीवीजुअल को हिप्नोटाइज करना कठिन है हमेशा, क्राउड को हिप्नोटाइज करना हमेशा आसान है। क्योंकि क्राउड के पास रेजिस्टेंस नहीं रह जाता। इसलिए जितने लीडर हैं, वे सब क्राउड लीडर हैं। पर्सनल रिलेशनशिप में हिप्नोटाइज करना कठिन बात है, क्योंकि आप पूरे ही इंप्रेसड हैं। मैं यह जान कर हैरान हुआ कि अगर मैं आपसे बात कर रहा हूं और आपने प्रश्न पूछा है, तो उस प्रश्न के उत्तर में आपको प्रभावित करना ज्यादा कठिन है और शरद बाबू बैठे सुन रहे हैं, न उन्होंने प्रश्न पूछा, वह सिर्फ सुन रहे हैं; उनको प्रभावित करना ज्यादा आसान है, क्योंकि उनका कोई रेजिस्टेंस नहीं है। आप यह मत सोचना कि मैंने पूछा है तो यह गलत कह रहे हैं कि सही कह रहे हैं। आप रेजिस्ट कर रहे हैं। लेकिन पास बैठे हुए लोग हैं, उनका कोई सवाल नहीं है, उनका कोईरेजिस्टेंस नहीं है। इसलिए भीड हमेशा जल्दी ही हिप्नोटाइज होती है। और भीड को हिप्नोटाइज देखकर जो आदमी आता है, उसमें, इंडीवीजुल वह हिप्नोटाइज होता है। उसको तो कुछ समझ में ही नहीं आता--कि जहां दस लाख लोगों को देखा, वह एकदम से, जो दस लाख का एकदम से साइकिक एटमासफीअर है, वह उसमें डूब जाता है।
तो चाहे कोई जानता हो, चाहे कोई न जानता हो, आदमी को हिप्नोटाइज किया
जा रहा है। और अगर हम मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से सफल बनाना चाहते हैं, तो उसे सचेत करना जरूरी है कि वह हिप्नोटाइज न हो। उसको इतना सचेत करना जरूरी है। उसको इतना सचेत करना जरूरी है कि वह सम्मोहित होकर प्रभावित न हो। प्रभावित हो वह बिल्कुल दूसरी बात है, वह रेशनल बात है। आपको मैं समझाऊं, तर्क करूं, विचार करूं और ओपन छोड दूं कि आपकी मर्जी, तो मैं आपको हिप्नोटाइज नहीं कर रहा हूं। लेकिन हिप्नोसिस एक तरह की ट्रिक है। न मैं आपको समझाता हूं, न आरग्यु करता हूं, लेकिन आपको बेहोशी के रास्ते से आपको पकडने की कोशिश करता हूं।
अब यह एक बल्ब लगा हुआ रास्ते पर। पूरे वक्त जल रहा है और बुझ रहा है
और आप को एडवरटाइज किया जा रहा है। पहले उनको पता था कि आप देखते थे कि एडवरटाइजमेंट स्थिर था, वह जलता-बुझता नहीं था। अभी वह हिप्नोटिस्ट ने बताया कि बुझाने से हिप्नोसिस आता है और रिपीट होता है। वैसे रिपीट नहीं होता है। लिखा है हमाम, तो आपने पढ लिया कई दफा, खत्म हो गई बात। लेकिन वह फिर जला, फिर बुझा। जितनी बार वह जला बुझा, उतनी बार आप को पढना पडा, हमाम। तो मजबूरी हो गई। वह तो हिप्नोटिस्ट बता रहे हैं, कि इसके जलाओ बुझाओ

जल्दी जल्दी, ताकि वह आदमी निकलते-निकलते बीस दफे पढे कि हमाम, हमाम। बीस दफे पढने से रिपीट होगा तो उसके भीतर घुस जाएगा।
अब यह बदमाशी है। यह आदमी को नुकसान पहुंचाता है। इससे हम कुछ भी कर सकते हैं। इसका मतलब यह है-- और आज तो ब्रेन वाश, माइंड वाश इस पर चीन में इतना काम हो रहा है कि आप यह समझ लीजिए कि आदमी की स्वतंत्रता मुश्किल से पचास वर्ष बचने वाली है, अगर आदमी नहीं समझ गया तो। बिल्कुल पचास वर्ष से ज्यादा बचने वाली नहीं है आदमी की स्वतंत्रता। अभी हम बैठकर इतनी बार बात कर रहे हैं, यह संभावना रह जाने वाली है। क्योंकि आपके माइंड को कंट्रोल भीतर से किया जा सकता है। और आपको पता भी न चले कि जो आप बोल रहे हैं, वह आपसे बुलवाया जा रहा है। जो आप कह रहे हैं मुझसे, कहलवाया जा रहा है। और स्तर इतना अभी तो साधन टेप्स है और इन सबका काम जितना बढ गया है, वह इतना घबडाने वाला है कि इलेक्ट्रोड आपके माइंड में रखा जा सकता है। और ट्रांसमीटर मेरे हाथ में है, मैं दुनिया में कहीं भी रहूं और मैं वहां से कहूं कि आप इस वक्त सो जाइए, तो आपको सोना पडेगा उसी वक्त। वह माइंड में आपके जो इलेक्ट्रोड रख दिया है, वह बिल्कुल ट्रांसमीशन का काम कर रहा है रेडियो जैसा। वह कहेगा नींद आ रही है, नींद आ रही है, नीण्द आ रही है। तो इस बात की संभावना बन गई है अब, शायद आज की मनुष्यता को कंट्रोल किया जा सकता है। और बदमाश आदमी किछ भी कंट्रोल कर सकता है और कुछ भी करवा सकता है। और इतना काम उस तरफ हो रहा है कि अगर हम लोगों को सचेत नहीं करते तो आने वाले चालिस पचास वर्षों में मनुष्यता की सारी स्वतंत्रता खत्म हो जाने वाली है। कोई स्वतंत्रता नहीं रह जाएगी।
अभी पीछे कोरियन वार में जिन अमरीकन कैदियों को चीन ने पकड रखा था, उनका पूरा माइंड वाश करके भेजा उन्होंने। नौ महीने में वे माइंड वाश कर देते हैं! नौ महीने बाद जब वे अमरीका पहुंचे, तो वे कम्युनिज्म की प्रशंशा करते हुए पहुंचे और अमरीका को गाली देते हुए पहुंचे कि यह कैपिटलिज्म सब खराब है। और वह यह कहते हुए पहुंचे कि हमारे साथ बहुत अच्छा सलूक किया गया है। उनके साथ बहुत बुरा सलूक किया गया है, लेकिन उनके माइंड में रिपीटेडलि यह डाला गया है कि उनके साथ बहुत अच्छा सलूक किया जाता था।
रूस में जितनी भी ट्राइल्स हैं पिछले चालीस वर्षों में सारी ट्राइल्स में जिस आदमी को सजा दी, उसी से कन्फेस करवा लिया कि हमने यह पाप किया। एक आदमी ने रेजिस्ट नहीं किया, वह मामला है! और अच्छे-अच्छे लोगों से, जो कि बडी कोटि के विचारक थे, उनसे अदालत में यह कहलवा लिया कि हमने यह किया, हमने पाप किया, हमने स्टेलिन को मारने की कोशिश की। न तो गवाही के जरूरत रखी कुछ और सिर्फ माइंड वाश किया उन बेचारों का। उनको छःछः सात-सात महीने बंद रखकर उनके माइंड में रिपीटेडलि भाव डलवाया कि तुमने स्टेलिन की हत्या की कोशिश की। एक आदमी को सात दिन जगाया जाए, सोने न दिया जाए और सात दिन हर हालत में जगाए रखा जाए और सजेस्ट किया जाए कि तुमने स्टेलिन को मारने की कोशिश की। दो तीन दिन तक तो वह कहेगा, नहीं; मैंने कहां कोशिश की अहि? फिर नींद की कमी और उसको शक पैदा होगा कि कहीं मैंने की तो नहीं, लोग मुझसे कह रहे हैं। और सात दिन में वह आदमी कहने लगेगा, सातवें दिन कि मैंने कोशिश की है स्टेलिन को मारने की। अदालत में खड़ा करके उनसे कन्फेस करवा दिया कि मैंने स्टेलिन को मारने की कोशिश की।
मेरी तो चेष्टा यह है कि लीडरशिप अब खतरनाक रास्तों पर आदमी को ले जाएगी, तो उसे इस हिप्नोटिक स्थिति के प्रति सचेत करना जरूरी है। जैसा आप कहते हैं, मेरी बात उस वक्त कई भाव पैदा कर देती है आपके मन में, लेकिन अभी कोई रास्ता नहीं है, जब तक कि वह भाव पैदा न करूं। वह भाव पैदा होगा तो आप पूछेंगे, सवाल उठेंगे। और मैं तैयार हूं सवाल जवाब के लिए। मैं तो पूरे मुल्क को एक डायलॉग में डाल देना चाहता हूं। तो जितने प्रश्न उठेंगे, उतनी बातें साफ हो सकेंगी। यह तो स्वाभाविक है कि मुझे सुन कर पच्चीस प्रश्न आपको उठते हों। मैं तो कहता हूं कि उठने चाहिए। सिर्फ जो जड बुद्धि हैं, उनको नहीं उठेंगे। लेकिन जो विचारशील होंगे, उनको उठना चाहिए।

प्रश्नकर्ताः आप मटिअॅरिअॅल डेवलपमेंट पर जोर दे रहे हैं, जब कि गांधी स्पीचुअल।

उत्तरः मेरी दृष्टि में मेअॅटिअॅरिल डवलपमेंट जो हैं, वह फिलासफिक डवलपमेंट की पहली सीढ़ी है। कोई भी देश, कोई भी समाज, जब तक आर्थिक, भौतिक समृद्धि से भरा हुआ न हो तब तक उसका दार्शनिक विकास नहीं हो सकता है। और नहीं हो सकता है, क्योंकिदार्शनिक विकास के लिए एक बुनियादी जरूरत है कि भौतिक रूप से समृद्ध हो।
जब आदमी की रोटी की, कपड़े की, छप्पर की चिंता समाप्त हो जाती है, तब पहली दफा स्प्रिचुअल अर्ज पैदा होती है। तब वह पहली दफा पूछता है कि और क्या? जिसको रोटी नहीं मिल रही, कपड़ा नहीं मिल रहा, मकान नहीं मिल रहा, उससे आप कह रहे हैं, आत्मा परमात्मा का चिंतन करो, तो आप निहायत फिजुल बात कर रहे है। हिंदुस्तान में भी जिन दिनों धार्मिक चिंतन हुआ और फिलासफिक डवलपमेंट हुआ--बुद्ध या महावीर या कृष्ण, ये सारे के सारे लोग समृद्ध हिंदुस्तान की पैदाइश हैं। एक समृद्धि थी मुल्क में, लोग खुशहाल थे।। और उसमें भी बड़े मजे की बात यह है कि ये खुशहाल लोगों में से ही नहीं, ये सब राजपुत्रों के लडके हैं, ये सब शाही घरों केलडके हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम, सब राजाओं के लडके हैं। जहां लक्जरी पूरी होती है, जिंदगी में जहां सब समाप्त होता है, मनुष्य उन चीजों को पूछता है जो कि पहले पूछ ही नहीं सकता है। तो मेरी दृष्टि में आने वाली फिलासफिक जो भी संभावनाएं हैं, वे रूस और अमरीका में फलित हो सकती हैं, हिंदुस्तान में नहीं।
तो मेरी दृष्टि में, जैसा अब तक समझा जाता रहा कि रिलिजियस, फिलासफिक
या स्प्रिचुअल डवलपमेंट, मटिअरिअल डवलपमेंट विरोधी बाते हैं, ऐसा मैं नहीं मानता। मैं मानता हूं मटिअरिअल डवलपमेंट नेसेसरी स्टेप है, स्प्रिचुअल डवलपमेंट के लिए।
कैसे यह हिंदुस्तान में आएगा?
दो तीन बातें मुझे दिखाई पडती हैं। एक तो, कि हिंदुस्तान की पूरी चिंतना बदलनी पडेगी। इस संबंध में, समृद्धि का विरोधी है हिंदुस्तान और गरीबी का पक्षपाती है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण दृष्टि है। तो पहले तो हमारे मुल्ककी हमें यह दृष्टि बदलनी पडेगी कि समृद्धि कोई अशुभ बात नहीं है। बल्कि समृद्ध होंगे, तो ही हम धार्मिक हो सकेंगे। अभी क्या हमारे मन में बात है कि धार्मिक होने के लिए दरिद्र होना जरूरी है। यह बिल्कुल ही पागलपन की बात है। तोएक तो हमें इस मुल्क के विचार से यह बात निकाल देनी है कि गरीबी कोई पूजा की चीज है, या गरीब होना कोई बहुत अच्छी बात है। कि एक आदमी कोई लंगोटी लगाकर खड़ा हो जाता है तो कोई बहुत महान कार्य कर रहा है। तो अभी एक फिलासफिक आफ पार्वटी, दरिद्रता का दर्शन हमारे चित्त में बैठा रहा है। कम से कम चीजें, कम से कम आवश्यकता--छोटे से छोटा मकान, दाल रोटी खा ली और अपना एक चादर ओढ़ लिया और गुजार दिया। जितनी कम जरूरत हो सके, उतनी कम रखो। कम जरूरत जिन लोगों के ख्याल में बहुत महत्वपूर्ण है वे देश को दरिद्र बना देंगे। मैं कहता हूं, जरूरत इतनी बढ़नी चाहिए। जरूरत इतनी बढाओ कि तुम्हें जरूरत बढाने से नये-नये मार्ग खोजने पड़ें, उनको पूरा करने के लिए, नई दिशाएं खोजनी पडें, तो समृद्धि की तरफ गति शुरू होती है। तो पहले तो एक समृद्धि का दर्शन चाहिए। यह दरिद्रता का दर्शन हटाने की जरूरत है मेंटली इसकी तैयारी करनी चाहिए।। पहले तो मेंटल तैयार करना पडे, तब मटिअरिअल तैयार होती है। वह दूसरी बात है। पहले तो मेंटली तैयारी बहुत जरूरी है।
अभी तो माइंड से हम गरीब हैं, और गरीब रहने को हम तत्पर हैं! बल्कि सच
यह है, जो अमीर हैं, जिन से हम भीख मांग रहे हैं, उनको हम गाली दे रहे हैं, कि वे लोग अमीर हैं तो भौतिकवादी हैं। यह बड़े मजे की बात है कि अमरिका से हम भीख मांगकर जी रहे हैं और अमरीका को गाली दिए जा रहे हैं कि तुम भौतिकवादी हो, तुम मटिअरिलिस्ट हो; तुम फलां हो, ढिकां हो। हम आध्यात्मिक है! और तुम्हारा अध्यात्म यह है कि तुम्हें भौतिकवाद से भीख मांगनी पड रही है! तो पहले तो हमारे मन में यह साफ हो जाना चाहिए कि समृद्धि लक्ष्य है--एक-एक

व्यक्ति के मन में और मस्तिष्क में। आने वाली पीढी और विधार्थियों के मन में समृद्धि का विचार गहराई से डालने की जरूरत है। ताकि हजारों साल की दरिद्रता का पागलपन खत्म हो जाए।
दूसरी बात कोई भी मुल्क तभी समृद्ध हो सकता है, जब टेकनोलॉजी में विकसित हो। और हमारा मुल्क टेकनोलॉजी में विकसित नहीं रहा, बल्कि हम टेकनोलॉजी के दुश्मन रहे अब तक। और गांधी ने और मुसीबत खडी कर दी है पीछे। वह टेकनोलॉजी के दुश्मन हैं, वह विनोबा भी टेकनोलॉजी के दुश्मन हैं। तो इस मुल्क मेंटेकनोलॉजी के खिलाफ एक हवा चल रही है। वह यह है कि अगर पैदल चलना है और चल सकें, तो कार की जरूरत क्य है? कार की जरूरत क्या है, हवाई जहाज की जरूरत क्या है? बडीमशीन की जरूरत क्या है? चर्खे से काम चलाओ, तकली कात लो! अब अगर तकली और चर्खा हम कातेंगे, तो हम कभी समृद्ध नहीं हो सकते, क्योंकि समृद्धि मूलतः नब्बे परसेंट टेकनोलॉजी का फल है। जो संपत्ति पैदा होती है वह सौ में से नब्बे प्रतिशत टेक्नालॉजी, टेक्नीक का फल है। तो हिंदुस्तान के माइंड को टेकनोलॉजिकल बनाने की जरूरत है। यह बेवकूफी खादी की, चर्खे की, तकली की; आग लगा देने की जरूरत है। यह ग्रामोद्योग और बकवास बंध करने की जरूरत है। बडा उद्योग, केंद्रित उद्योग चाहिए। यह विकेंद्रीकरण की बात घातक है कि डेसेंट्रलाइज करो। क्योंकि जितना डिसेंट्रलाइजड हुई इकोनामी, उतनी ही गरीब होगी।

प्रश्नकर्ताः टेक्नालॉजी को डवलप करने के लिए फायनेंस कहां से आएगा?

उत्तरः मेरे लिए तो बडा सवाल यह है, वह तो दूसरा सवाल है। बडा सवाल यह
है कि हमारा माइंड टेकनोलॉजी के लिए राजी है कि नहीं। माइंड राजी हो तो रूस ने कहां से, किससे फाइनेंस किया है, पिछले पचास सालों में? और 1917 की क्रांति के बाद रूस की हालत हमसे बदतर थी, हमसे बेहतर नहीं थी। तो रूस को तो कोई सहायता नहीं थी दूसरे मुल्कों से; क्योंकि दूसरे मुल्क तो नष्ट करने को तैयार थे रूस को। लेकिन पचास साल में टेक्नालॉजिकलि वह अमरीका से भी किन्हीं मामलो में आगे हो गया है!
मेरी मान्यता यह है कि जो डेमोक्रसी लोगों को काम करने ने के लिए कंपेल न कर सके, वह निकम्मी डेमोक्रसी है। बिल्कुल निकम्मी डेमोक्रसी है। असल में हम शब्दों से इतना ज्यादा परेशान है। यह मामला कुछ ऐसा हो गया है कि डेमोक्रसी, अगर ठीक से समझी जाए तो वह भी एक समृद्ध समाज का जीवन-व्यवस्था है। एक दरिद्र समाज डेमोक्रसी होने की बात करता है, तो वह वैसे ही है, जैसे कि एक आदमी घर में हवाई जहाज रखने की बात करता है। डेमोक्रसी जो है, वह पूर्ण शिक्षित, समृद्ध, संपन्न समाज की व्यवस्था है। जब तक समाज उतना संपन्न, सुशिक्षित नहीं हो जाता, तब तक डेमोक्रसी का मतलब सिर्फ इतना ही होगा कि वह सदय डिक्टेटरशिप हो। उसका यही मतलब होगा।

प्रश्नः क्या डेमोक्रसी नुकसान पहुंचा रही है?

उत्तरः बिल्कुल ही, डेमोक्रसी नुकसान पहुंचा रही है, बीस साल में मुल्क को भारी नुकसान पहुंचाई है। आज तो जरूरत है कि हम तीस-चालीस साल तक मुल्कको एक मिल्ट्री कैंप की शक्ल में खड़ा कर के और मेहनत करें, तो हम समृद्ध हो सकते हैं। नहीं तो कोई समृद्धि नहीं हो सकती। यह इस तरह समृद्धि नहीं आने वाली है। बल्कि बीस साल का फल यह हुआ है कि अंग्रेज के समय में हमारी जितनी इफिसिएंसि थी, बहुत नीचे गिर गई है। काम करने की क्षमता भी नीचे गिर गई है, काम करने का मन भी नीचे गिर गया है। कोई काम नहीं करना चाहता। और यह एक ख्याल पैदा हो गया है।
रूस में क्रांति हुई तो वहां एक मजाक चला। जिस दिन 1917 में पहले दिन क्रांति हुई अक्टूबर में और मास्को क्रांतिकारियों के हाथ में चला गया, तो एक मोटी औरत बीच रास्ते पर चलती हुई पाई गई। तो पुलिस के आदमी ने कहा, तुम यह कहां चलीं, बीच में रास्ता चलने का है? उसने कहा अब हम स्वतंत्र हो

गए! अब तो हम स्वतंत्र हो गए, अब हमें कोई यह नहीं कह सकता कि बाएं चलो कि दाएं चलो।
स्वतंत्रता का मतलब और लोकतंत्र का मतलब ऐसा ही हम पकडे हुए हैं इधर बीस साल से। नहीं, स्वतंत्रता का मतलब है कि दायित्व और बढ गया है। लोकतंत्र का मतलब है कि हमारी रिस्पोंसबिलिटि और गहरी हो गई है। एक डिलिवरेट डिक्टेटरशिप से ही यह लोकतंत्र आगे बढेगा और डेमोक्रसी बन सकती है। तो हिंदुस्तान मेंअभी पूर्ण लोकतंत्र की बात ही करनी फिजूल है। प्रश्न कर्ता-- आप कहते हैं कि डिलिवरेट डिक्टेटरशिप से ही लोकतंत्र आगे बढेगा, लेकिन आप अपनी धारणा को स्पष्ट...
उत्तर-- तभी तो धीरे-धीरे बात चल पाती है। नहीं मुझे मौका ही नहीं मिल
पा रहा है, ऐसा मुश्किल हो गया है। मुझे इतनी बातों पर बात करनी है, न मंच है, न मौका है। तो यह तो जो लोग मंच बना लेते हैं, वे जैसे ही मंच बना लेते हैं, वह बात मुझे करनी पडती है।
वह तो होगा मैं आपको पूरा इंटरव्यू दूं। और आप चाहें तो मैं पूरा इंटरव्यू दूं, आप उसके लिए बात करें। मैं चाहता हूं, इधर मैं यह कह रहा हूं मित्रों से कि आने वाले दिनों में बंबई में चार दिन इस संबंध में एक चार लिक्चर रखें, तो मैं कुछ कह सकूं। तो जरूरी है और मुझे तो इतना नुकसानदायक लग रहा है डेमोक्रसी किइ बातचीत, कि इतनी खतरनाक है कि हमको नष्ट किए दे रही है। अभी मुल्क को कोई जरूरत नहीं है डेमोक्रसी की।
तो मैं एक डिलिवरेट डिक्टेटरशिप चाहता हूं, एक सदय अधिनायकशाही मुल्क मैं होनी चाहिए और टेक्नालॉजी पर हमें फोर्स करना पडेगा, क्योंकि मुल्क का इनरशियां पांच हजार साल पुराना है।। आप बिना फोर्स किए कुछ कर नहीं सकते। अगर आप सोचते हों, बस हम कह देंगे कि बर्थ-कंट्रोल कर दो और बर्थ-कंट्रोल हो जाएगा, तो यह हद्द बेवकूफी की बात है। इधर तो जब तक बंदुक सामने नहीं होगी, तो बर्थ-कंट्रोल होने वाला नहीं है। आपने कह दिया कि बस टेकनोलाजी-- तो वह जो चर्खा चलाने वाला आदमी है वह एकदम से आटोमैटिक मशीन पर पहुंच नहीं सकता, उसका माइंड कैसे पहुंच जाएगा? उसको पहुंचाना पडेगा और फोर्स करना पड़ेगा। एक पंद्रह और बीस साल के लिए सारे मुल्क को सैन्य शिविर की तरह व्यवहार करना पडेगा तो फिर हम उस हालत में पहुंचेंगेकि डेमोक्रसी फिर हम ला सकें। तो तकनीक पर मेरा जोर है दूसरा। और तकनीक को बढाने के लिए हमें मुल्क पर दबाव डालना पड़ेगा। ऐसे काम नहीं चलने वाला है।
हां, यूथ फोर्स मैं बना रहा हूं, उसमें मैं इस बात का प्रचार करने का प्रयास करूंगा।
और तीसरी बात। जिन मुल्कों में भी संपत्ति आई है, वह संपत्ति जैसे लोग सोचते हैं कि कहीं रखी हुई है--संपत्ति कहीं रखी हुई नहीं है, वह तो क्रिशन है, कैपिटल टु बी क्रिएटेड। कहीं है नहीं कि हम गए और हमने उसको उठाकर कब्जा कर लिया। वह तो क्रिएशन है। तो उसके क्रिएशन करने के लिए मुल्क की जिंदगी की सारी जीवन चर्या को बदलनी पडेगी। यह जीवन-चर्या उसे क्रिएट करने वाली नहीं है, क्योंकि जो हमारा ढंग है अभी--उठने, बैठने, चलने, सोने का, यह उससे पैदा होने वाली नहीं है। हमें पूरी की पूरी जीवन-चर्या मुल्क की बदलनी चाहिए। और इसके लिए खासकर मास्टर्स और विद्यार्थियों में मैं काम करना चाहता हूं। इसलिए कि मैं युवकों को इस योग्य बना सकूं कि वे यह समझें कि कितनी देर में हम कितना पैदा कर सकतें हैं, और कैसे कर सकते हैं, कितने कितने सहयोग से कर सकते हैं। कितने लोगों की जरूरत पडेगी, कितनी मशीन कीजरूरत पडेगी और हम कितने कम समय में कितना ज्यादा पैदा कर सकेंगे। एक यह ध्यान रखना है कि कम शक्ति में, कम समय में, कम श्रम से, अधिकतम कैसे पैदा किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ताः तो फिर इसे कम्युनिजम कहें?

उत्तरः एक तरह से तो कमुनिजम लाना ही पड़ेगा। हां-हां, कम्युन, कम्युन
की जरूरत पडेगी। मैं इसके बाबत विचार करता हूं निरंतर कि जरा एक हवा पैदा हो तो मैं पूरे मुल्क में छोटे-छोटे कम्युन बनाऊं, जिनकी सोशल लिविंग हो।

बच्चे भी सामूहिक रूप से पालें जाएं, सामूहिक रूप से शिक्षित हों, सारे लोग सामूहिक रूप से फार्मों पर काम करें और टेकनोलॉजी पर ज्यादा से ज्यादा जोर दें, और आदमी के श्रम को कम से कम उपयोग में लाएं। जितना आदमी का श्रम बचता है उतना श्रम इंटलेक्ट में ट्रांसफार्म होता है, मेरी अपनी समझ यह है। इस मुल्क में इंटलेक्ट विकसित नहीं हो सकी, क्योंकि हम आदमी को सारा का सारा शारीरिक श्रम में लगा देते हैं। एक आदमी आठ घंटे चर्खा चलाएगा तो उसकी बुद्धि विकसित होने वाली नहीं है। उसकी बुद्धि चर्खे टाइप की हो जाने वाली है; उतनी ही उससे ज्यादा नही। जितना शरीर श्रम से हम आदमी को मुक्त करते हैं, उतनी उसकी शक्ति इंटेलिजंस में विकसित होनी शुरू होती है। इंटेलिजंस उन समाजों में विकसित होती है जहां लकजरी पैदा हो सकती है।

प्रश्नकर्ताः लेकिन तब इंडीवीजुअल का विकास...

उत्तरः इंडीवीजुअल है कहां, आपको सिर्फ ख्याल है! है कहां? इंडीवीजुअल है कहां? आपसे थोडी बाद में बात करूंगा, लेकिन इंडीवीजुअल है नहीं कहीं। अभी भी नहीं है। आपको सिर्फ भ्रम है कि आपसे कांप्लेशन नहीं आ रहा है। आपकी पत्नी आपको खींच रही है, आपके पिता आपको खींच रहे हैं, स्टेट खींच रही है, समाज खींच रहा है, बाप खींच रहा है। आप सिर्फ भ्रम में जी रहे हैं कि आप कंपेल्ड नहीं हैं, आप एक-एक इंच कंपेल्ड हैं। सच तो यह है कि जितना सामुहिक लिविंग होगा और जितना मशीनसेंटर्ड उत्पादन हो जाएगा, उतना ही व्यक्ति को मुक्त किया जा सकता है।

प्रश्नः आप किससे प्रभावित हैं? रामकृष्ण परमहंस है, भगवान महावीर और बुद्ध हैं-- इनमें से किसी से भी आप प्रभावित हैं?

उत्तरः नहीं, किसी व्यक्ति से म प्रभावित नहीं हूं। लेकिन कुछ-कुछ चीजें सब में हैं जो मुझे प्रीतिकर हैं और मेरा जोड बडा अजीब है। कुछ चीजें मुझे मार्कस में उतनी ही प्रीतिकर है, जितनी बुद्ध में। कुछ मुझे नीत्शे में प्रीतिकर है और गांधी में भी। तो मेरे सामने कोई एक व्यक्ति नहीं है, जो मुझे प्रीतिकर है। सारे जगत की जो देन है, उसमें जो भी मुझे सत्यतर लगता है, चाहे वह किसी से आता हो, तो वह मुझे अंगीकार है। तो मेरे साथ बडी कठिनाई हो गई है। कभी मैं मार्कस की प्रशंसा में भी बोलता हूं, कभी नीत्शे की प्रशंसा में भी बोलता हूं। कभी मैं गांधी के खिलाफ बोलता हूं। कभी बुद्ध की प्रशंसा भी करता हूं और कभी बुद्ध के खिलाफ भी बोलता हूं। कभी रामकृष्ण की प्रशंसा भी करता हूं और कभी खिलाफ भी बोलता हूं। तो लोगों को बहुत मुश्किल हो गई है। मैं किसी व्यक्ति के पक्ष में नहीं हूं। मुझे जो ठीक दिखाई पडता है, वह जिस व्यक्ति में भी दिखाई पडता है, मैं उसकी प्रशंसा करनी शुरू कर देता हूं।

प्रश्नकर्ताः तो आप किसी एक से प्रभावित नहीं है?

उत्तरः नहीं, बिल्कुल जरा भी नहीं। मुझे तो सारा हेरिटिज पूरी मनुष्यता का प्रीतिकर है। उस पूरे हेरिटिज पर ड्राइव करना है, जो कुछ ड्राइव करना है। उसमें मेरे मन में जरा भी भाव नहीं आता है कि यह मुहम्मद का है, कि क्राइस्ट का है। सारी दुनिया में जो भी मनुष्य ने आज तक सोचा है, उसकी जो भी क्रीम है, वह सब मुझे अंगीकार है; उसमें जो भी श्रेष्ठतर है, सब स्वीकार है। वह चाहे एक ऐसे आदमी ने कहा हो, जो वेश्यागामी है, शराब पीता है, इसकी मुझे फिक्र नहीं है। वह अगर सत्य है तो मुझे अंगीकार है। और चाहे वह ऐसे आदमी ने कहा जो जो शराब नहीं पीता, ब्रह्मचारी है और दिन-रात भजन कीर्तन करता है, लेकिन बेवकूफी की बातकही है, तो वह बेवकूफी की बात है। उसमें मैं फर्क नहीं करता। तो सारी मनुष्यता का जो आज तक का अनुभव है, उस सारे अनुभव से मुझे प्रेम है। उस अनुभव में जो भी श्रेष्ठतर है, उसे मैं

हमेशा स्वीकार करता हूं। लेकिन मेरे मन में किसी व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है।।

प्रश्नकर्ताः इंडस्ट्रलाइजेशन के लिए फॉरिन कैपिटल भी तो नहीं है हमारे पास।

उत्तरः असल बात यह है, जो मैंने तीन बातें कही हैं, जब तक वे नहीं हो जातीं... आपको फॉरिन कैपिटल भी मिल जाए तो भी आप इंडस्ट्रलाइज नहीं कर पाएंगे, क्योंकि माइंड का मेकप हमारा इंडस्ट्रियल नहीं है। वह क्रांति नहीं हो सकती यहां, जो औद्योगिक क्रांति पश्चिम में हुई। उस क्रांति के पहले जो रिनेसंस का युग बीता, उसने सारे माइंड को बदल दिया यूरोप के। वैसा कोई रिनेसंस भारत में कभी हुई नहीं। हमारा माइंद तो वही फावडा खुर्पी वाला है--माइंड। और बडी इंडस्ट्री आप खडी भी कर दो, तो वह हम से चलने वाली नहीं है। वह हमसे चलने वाली नहीं है। कैपिटल का सवाल नहीं है कभी भी। मेरे लिए सारा सवाल माइंड का है। एक बार सारा माइंड तैयार हो तो जिन मुल्कों में, यूरोप में इंडस्ट्री बनी, वे कहां से फॉरिन कैपिटल ले आए थे? आज से डेढ सौ साल पहले वह कहां की इंडस्ट्री थी? हम समझ लें कि उसी हालत में हैं। मैं पूछता हूं, यूरोप में डेढ सौ साल पहले कहां से कैपिटल आई, कहां से इंडस्ट्री आई, कहां से टेकनीशियंस आए? कहीं से भी नहीं आए, वह तो उन्हों ने पैदा किया।

प्रश्नकर्ताः हमारे सामने तो पापुलेशन का सवाल है?

उत्तरः यह सवाल नहीं है। अगर पापुलेशन प्राब्लम उनके सामने बडा होता,
तो इंडस्ट्री और बडी आती। माइंड का सवाल है। आपके सामने पापुलेशन प्राब्लेम आज है, पचास पहले तो नहीं था और आपने तब इंडस्ट्री क्यों नहीं पैदा कर ली?

प्रश्नकर्ताः गुलाम थे हम उस वक्त।

उत्तरः और गुलाम भी आप क्यॉ थे। ये सारे मामले तो इन्टरकनेक्टेड हैं
न! आप गुलाम भी क्यों हैं? गुलाम भी आप इसीलिए हुए कि टेकनिकली आप कभी विकसित नहीं हुए। इसलिए जल्दी टेकनिकली ज्यादा विकसित आपके मुकाबले आ गए, आपको हार जाना पडा। आप हैरान होंगे पिछले हजार साल का इतोहास देखकर किजब भी आप हारे, तो जिससे आप हारे, वह कौम आपसे ज्यादा ताकतवर नहीं थी, सिर्फ टेकनिकली आपसे ज्यादा ताकतवर थी!
पहली दफे मुसलमान हिंदुस्तान में आए, तो हिंदुस्तान का राजा हाथी पर लडने गया। वह टेकनिकली बेवकूफ था, घोडे पर लडने वाले से हार जाएगा। घोडे पर लडने वाला टेकनिकली होशियार है, क्योंकि घोडा ज्यादा तेज जानवर है। जल्दी से बचता है, भागता है। हाथी बिल्कुल बेहूदा जानवर है। उस पर आप सवारी निकालिए किसी महाराज की, तो वह ठीक है, लेकिन वह युद्ध के मैदान का जानवर थोडे ही है। तो आप हाथी पर लडने गए, टेकनिकली गलत थी यह बात। घोडे पर लडने वाला जीत गया। जो आए थे लडने, वे आपसे कमजोर कौमें थीं! आपसे ज्यादा ताकतवर कौमें नहीं थीं, न उनकी संख्या ज्यादा थीं, न कुछ था! न उनके पास रोटी थी खाने को, न कुछ और था! सिर्फ टेकनिकली वे आपसे ज्यादा इंप्रूव्ड साधन लेकर आए थे, वे आ गए घोडा लेकर। इसके बाद आप जब भी हारे-- आप बंदूक लेकर लडते तो दूसरा तोप लेकर आ गया। अंग्रेज से हारने का कुल कारण इतना था कि आपके पास बंदूकें थीं, अंग्रेजों के पास तोपें थीं। टेकनिकली वे आपसे ज्यादा होशियार थे। अंग्रेज की ताकत कितनी थी हिंदुस्तान में जीत जाने की? हिंदुस्तान में उतने दूर देश से आकर एक कौम खडी हो जाए, और हमारा नेता बेवकूफी की बातें समझाता है कि चूंकि हममें भेदभाव था! ये बिल्कुल कनिंगनेस की बातें हैं, ये असली बातें नहीं हैं। असली बात यह थी कि आप

हमेशा टेकनिकली पीछे थे। जब भी दुश्मन आया सामने, वह टेकनिकली ज्यादा बडा साधन लेकर आया था। आप ठप्प हो गए थे।
अभी आज भी आप पर चीन आ जाए तो आप हारने ही वाले हैं। यह कहेगा कौन? क्योंकि टेकनिकली चीन से आप पीछे हैं। आप जीत नहीं सकते चीन से। और आप यह पक्का मानिए कि दस साल में आप पाकिस्तान से भी टेकनिकली पीछे हो जाने वाले हैं, क्योंकि आपका पूरा माइंड नान-टेकनिकल है। बडा मजा यह है। अभी आप बडा खुश हो लिए हैं, थोडी सी जीत हो गई। एक दस साल के भीतर आप पाकिस्तान से भी जीतने में समर्थ नहीं रह जाएंगे, क्योंकि टेकनिकली वह आगे निकलता जा रहा है। वह अणु भट्टियां खडी कर रहा है वह सब कर रहा है और यहां बेवकूफ विचार करतें हैं कि अणु बनाना है कि नहीं बनाना है। यही बेवकूफी हजार सालसे गुलाम रखी आपको, क्योंकि बंदूक वाला सोचता था, तोप बनाना है कि नहीं बनाना है, और दूसरा बनाकर आ गया था। उसने नहीं पूछा कि बनानी है कि नहीं बनानी है। और अणु बनाओ कि नहीं बनाओ। कि महावीर स्वामी क्या कहते हैं, बुद्ध भगवान क्या कहते हैं, महात्मा गांधी क्या कहते हैं--ाणु बनाना है कि नहीं बनाना है? अहिंसा की फिलॉसफि क्या कहती है? तुम यह सोचना! दस साल में पाकिस्तान अणु बना लेगा।

प्रश्नकर्ताः तो आप पूर्णतः टेकनोलॉजी के पक्ष में हैं?

उत्तरः बिल्कुल ही पाजिटिवली टेकनोलॉजी, फार टेकनोलॉजी। एटम बम का सवाल नहीं है। टेकनोलॉजिकली हमें श्रेष्ठतम होना चाहिए। हर दिशा में श्रेष्ठतम होना चाहिए। अणु-बम टेकनोलॉजी का श्रेष्ठतम हिस्सा है, वह हमें बनाना चाहिए। जरूरी नहीं है कि हम लडने जाएं, लेकिन आणविक इनर्जी की टेकनोलॉजी जान लेनी चाहिए, खडी कर लेनी चाहिए, क्योंकि बच्चों के लिए सवाल कल खड़ा हो सकता है। आइ एम फार टेकनोलॉजी। इसलिए अणु-बम का सवाल नहीं है, सारी चीजों का सवाल है। अब दुनिया में एलोपेथी विकसित हो रही है, यहां के बेवकूफ आयुर्वेद की बातें किए चले जाते हैं, और उनको गवर्नमेंट सहायता दे रही है! टेकनोलॉजीकली हर जगह हम बेवकूफी की बातें करते है। यानी दो हजार साल में मेडिकल साइंस कहां से कहां पहुंच गई, वे इधर जडी बूटियों की बातें कर रहे हैं! और गवर्नमेंट दान देगी। औषधालय बनवाओ, और यह करो और आयुर्वेद हमारा है! हमारा तुम्हारा सवाल नहीं है। टेकनोलॉजिकली कौन आगे है? तो हर चीज में यह देखना है कि कौन आगे है। जब हम सारे जीवन में टेकनोलॉजी का ध्यान देकर चलेंगे, तो मैं आपसे कहता हूं कि पचास साल में हिंदुस्तान बिना किसी से सहायता लिए खड़ा हो सकता है। लेकिन माइंड का मेकप होना मुश्किल बात है।

प्रश्नः आप अपनी बात कनविन्स क्यों नहीं करते?

उत्तरः मैं तो जो कह रहा हूं, मैं कहूंगा, अगर उसमें कोई सचाई है तो कनविंस हो जाएगी। यदि कनविंस नहीं होगी, तो मुझे उसकी फिकर नहीं है। मैं तो यह कहता हूं कि टेक्नालॉजिकली जो मुल्क पीछे है, वह मुल्क गुलाम होने की तैयारी कर रहा है, वह बच नहीं सकता। इसमें कनविंस करने की दिक्कत नहीं है।

प्रश्नकर्ताः आपकी सारी बातें युटोपिआ नहीं हैं?

उत्तरः नहीं, जरा भी नहीं। बिल्कुल ही प्रेक्टिकल होने की कोशिश करनी है। यह सवाल नहीं है। लेकिन उन्हें, बिना एब्यूज किए पब्लिक का माइंड बदला नहीं जा सकता, क्योंकि वही उसके माइंड को पकडे हुए है।

प्रश्नकर्ताः पब्लिक का माइंड बदलने के लिए आपको तो उसके पास आना पडेगा न?

उत्तरः हां, वह तो मैं कोशिश करूं। उसमें आप सहयोगी बनिए। लेकिन सवाल
यह है कि अगर हिंदुस्तान का माइंड गांधी की पूजा करता चला जाता है तो मैं मानता हूं कि टेकनिकली हिंदुस्तान विकसित नहीं होगा। ये दोनों बातें जुडीं हुई हैं। क्योंकि गांधी बिल्कुल ही टेक्नालॉजी के दुश्मन हैं। तो मैं अगर टेक्नालॉजी के लिए लोगों को विकसित करना चाहता हूं, तो गांधी मुझे आड़े आते हैं और मुझे कोई आड़े नहीं आता। यानी गांधी से मुझे लड़ना पड़ेगा। गांधी अच्छे आदमी हैं, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। लेकिन अच्छे आदमी को क्या करेंगे? सवाल तो यह है कि वह जो फिलॉसफी खड़ी कर रहे हैं, वह मुल्क के लिए घातक है। तो मुझे तो उनकी बात करनी पेगी। तो जब मैं टेक्नालॉजी की बात करूं, तो जो भी सीधा सवाल उठाता है, वह फिर पूछता है कि गांधी के बाबत आपका क्या ख्याल है? कि टेक्नालॉजी की मैं बात करूं, कि ग्रामोद्योग की बात मैं करूं? और मैं मानता हूं किग्रामोद्योग की बात करने वाला मुल्क का हत्यारा है। वह मुल्क को डुबा देगा, मार डालेगा।। ग्रामोद्योग तो चल रहा है पांच हजार साल से और हम मरते जा रहे हैं!

प्रश्नकर्ताः आप मानते हैं कि गांधी जी हत्यारे थे मुल्क के, तो आपकी
भी क्यों न हत्या कर दी जाए?

उत्तरः उसमें कोई हर्जा नहीं। एक दफा मेरी हत्या हो जाए, तो गांधी से मेरी टक्कर सीधी-सीधी हो जाए। मेरा मतलब नहीं समझे आप। नहीं, काम नहीं रुकेगा। एक दफा मेरी हत्या हो जाए तो फिर गांधी से मेरा मुकाबला सीधा-सीधा हो जाए। फिर टेकनोलॉजी के पक्ष में भी कोई आदमी अगर मरता है, तो मुल्क में विचार शुरू हो जाए। उसमें कोई हर्जा नहीं है। मेरे मरने से क्या फर्क पड़ता है? लेकिन मेरे मरने से पचास लोगों के मन में ख्याल आ सकता है और बात चल सकती है। पच्चीस दूसरे लोग खड़े हो जाएंगे। लेकिन टेकनोलॉजी के लिए कोई मरे भी तो? टेक्नालॉजी के लिए कोई मरा नहीं है इस मुल्क में आज तक! कोई हर्जा नहीं है, मर जाएं। यानी मेरे मरने से क्या फर्क पड़ता है।

प्रश्नकर्ताः काम रुक जाएगा।

उत्तरः कुछ भी नहीं रुकता है। किसके मरने से काम रुकता है? क्राइस्ट
मर गए तो कोई काम रुकता है क्रिश्चिएनिटी का? कुछ काम-वाम नहीं रुकता। मार्कस मर गया तो कोई कम्युनिजम रुकता है? आदमी मर जाते हैं और जिन विचारों के लिए मरते हैं, वे विचार बलशाली हो जाते हैं उनके मरने से, वे खाद बन जाते हैं उन विचारों के लिए। उसमें कोई हर्जा नहीं है। उसमें जरा भी हर्ज की बात नहीं है। एक दफा कोई मार ही डाले, तो बडा अहित हो जाए। उससे कोई समस्या नहीं है।

प्रश्नकर्ताः एक बात पूछना है आचार्य जी। हम तो देख रहे हैं जहां- जहां कुछ व्यक्तियों से भेंट होती है, वहां-वहां नार्मली...

उत्तरः बहुत कुछ किया जा सकता है। यानी मेरी जो बेसिक थीसिस है सारी बातों में। हिंदुस्तान में अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना चाहिए, ऐसी धारणा है सदा से! धारणा है इसलिए नहीं आता। वह नहीं आता है, वह अगर आता तो क्यों होता यह सब? यानी मेरा कहना यह है अच्छा कि आदमी राजनीती में नहीं आता है, क्योंकि उसे यह समझाया गया है हमेशा कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं आना चाहिए। यह तो बदमाशों की चीज है। इस समझाने का परिणाम यह हुआ कि बदमाश ही बदमाश वहां इकट्ठे हो गए हैं। अच्छा आदमी वहां जाता नहीं। और अगर अच्छा आदमी जाए तो आप उसको कहोगे कि तुम भी हो गए गडबड। तो इसकी जरूरत है मुल्क में कि हम अच्छे आदमी को कहें कि तुम आओ राजनीति में। तुम वहां प्रवेश करो, तो हम उसे बदमाशों से बचा सकेंगे।

प्रश्नकर्ताः उसके पास साधन नहीं हैं, शक्ति नहीं है, संपत्ति नहीं है।

उत्तरः ऐसा जरूरी नहीं है कि अच्छे आदमी के पास साधन नहीं, शक्ति नहीं। अच्छे आदमी के पास भी साधन, शक्ति, संपन्नता है। लेकिन अच्छे आदमी के पास साहस नहीं है।

प्रश्नः तो क्या गांधी जी में साहस की कमी थी!

उत्तरः वह सिर्फ इसीलिए कि मेंटल मेकप हमारा जो है। मेंटल मेकप हमारा
यह है, कि अभी मैं हूं, अगर मैं कल राजनीति में जाता हूं तो वह जो मेरी पूजा करता है, कहेगा, यह भी गडबड हो गए फिर, राजनीति में चले गए। तो गांधी, हिंदुस्तान की हुकूमत हाथ में आ गई, तो गांधी साहस नहीं जुटा पाए कि वह एक्जिक्युटिव बाडी में खडे हो जाएं, किवह प्रधान मंत्री बन जाएं। क्योंकि वह प्रधान मंत्री बनते तो सदा के लिए महात्मा खत्म होगए होते उसी वक्त। वे फिर महात्मा कभी नहीं कहे जा सकते थे। अब महात्मा को बचाना है, कि प्रधान मंत्री बनना हैं?
तो एक अच्छे आदमी थे गांधी मेरी दृष्टि में, आदमी के लिहाज से गांधी
एक अच्छे आदमी थे। उनकी अच्छाई में कोई इंच भर की कमी नहीं है। उनकी समझ में कितनी ही गल्तियां हों, उनकी बुद्धिचाहे कितनी ही साधारण हो, लेकिन आदमी बहुत अदभूत थे। लेकिन वह गडबड हो गई बात। अगर गांधी वहां हुकूमत में बैठते तो दो परिणाम होते। एक तो गांधी की अच्छाई का परिणाम होता, और अच्छे लोग पूरे मुल्क के आकर्षित होते और राजनीति तरफ जाते। क्योंकि जब गांधी जाते तो भय टूट जाता। खत्म हो जाती बात। दूसरा यह होता कि गांधी को एक मौका मिलता कि वे जो बात कह रहे थे, उनको प्रयोग करके दिखलाते। या तो वे प्रयोग कर लेते तो मुल्क बदल जाता, और या असफल हो जाते तो हमारी गांधी से झंझट छूट जाती। दो में से कुछ भी फल हो जाता। तो होशियारी हो गई, गांधी वहां से बच गए जाने से। उन्हों ने अपना महात्मापन बचा लिया और राजनीति में वह नहीं गए।

प्रश्न कर्ताः तो अच्छा आदमी दिया मुल्क को--नेहरू जैसे आदमी को दिया।

उत्तरः जरा भी नहीं दिया। नेहरू और गांधी में जमीन-आसमान का फ र्क है। नेहरू और गांधी में जमीन आसमान के फर्क थे। नेहरू पॉलिटिशियन हैं, गांधी पॉलिटिशियन नहीं हैं। और यही फर्क बुनियादी है। गांधी पॉलिटीशियन नहीं हैं! राजनीतिक बिल्कुल नहीं हैं गांधी। वह एक सीधे सच्चे आदमी हैं। उनको सचाई ज्यादा मूल्यवान है, बजाय राजनीति के। नेहरू तो पॉलिटीशियन हैं। तो नेहरू ने जो पॉलिटिक्स के खेल थे, वह आते ही शुरू कर दिए। वह सारे खेल शुरू हुए। जितने नेहरू के नीचे अच्छे आदमी थे, जिनसे नेहरू को खतरा हो सकता था, उनको धीरे-धीरे कांग्रेस के बाहर फेंकने के सब उपाय कर दिए--चाहे जयप्रकाश हों, और चाहे कृपलानी हों, चाहे कोई हो। जिन लोगों से भी नेहरू को कंपीटीशन का डर था, उनकी जडें काट दी उन्होंने। पॉलिटिशियन हमेशा अपने सेछोटे आदमी को पास रखना पसंद करता है। अपने से बराबर के आदमियों से बात नहीं करता। क्योंकि उससे कल खतरा है। कल वह जगह ले सकता है, छीन सकता है। तो चाहे राजगोपालाचार्य हों, चाहे जयप्रकाश हों, चाहे कोई भी हो--धीरे-धीरे एक-एक आदमी की जड काट कर सारे अच्छे आदमियों को, कीमती आदमियों को अलग कर दिया। दो कौडी के आदमी धीरे-धीरे उनकी जगह बिठाल दिए, जो कि हमेशा जी-हजूरी करें। मुल्क में बदमाशों को इकट्ठा करने का काम नेहरू के ऊपर है।
इसमें इस जिम्मे से उनको बचाया नहीं जा सकता। क्योंकि सारे अच्छे आदमियों की जडें काट डालीं। और सारे साधारण आदमियों को ऊपर ले आए, क्योंकि वे हमेशा जी हजूरी करेंगे। राजनीति का माइंड यह है कि हमेशा अपने से छोटे आदमी की भीड को चारों तरफ से घेर कर रखो। अपने मुकाबले का आदमी कभी साथ न आ जाए। तो नेहरू और गांधी में तो जमीन आसमान के फर्क हैं।

अगर गांधी ने हिंमत जुटाई होती, तो यह कभी नहीं हो सकता था कि जयप्रकाश, कृपलानी और राजगोपालाचारी कांग्रेस के बाहर जाते। असंभव था। यह बिल्कुल ही असंभव था। हिंदुस्तान के सारे अच्छे आदमी गांधी के साथ खडे होते। हिंदुस्तान की हुकूमत दूसरी शक्ल की हुकूमत बनती। उसमें नेहरू भी होते, उसमें एक जयप्रकाश भी होते, उसमें लोहिया भी होते, उसमें राजगोपालाचारी भी होते। उसमें मुलक के सारे अच्छे लोग होते, एक शक्ल बदल जाती हिंदुस्तान की। लेकिन गांधी महात्मापन को बचा गए, हिंदुस्तान को डुबा गए! उनके तो सामने तो विकल्प सीधा है कि करना क्या है, क्योंकि सारा मुल्क कहता कि अरे बस, डावांडोल हो गए! और जैसे ही गांधी ने हाथ में सता नहीं ली, सारे मुल्क ने कहा, यह है सच्चा महात्मा! और पता नहीं कि सच्चा महात्मा कितना मंहगा पड़ गया यह हमारे लिए!

प्रश्नः आप गांधी जी और नेहरू जी में न केवल कर रहे हैं, वरन उनके व्यक्तित्व, शक्ति पर भी आप...

उत्तरः मैं समझा, मैं समझा। गांधी और नेहरू में मैं जो फर्क कर रहा हूं, वह फर्क यही कर रहा हूं कि गांधी के व्यक्तित्व के साथ बहुत से बड़े लोग खडे हो सकते हैं। नेहरू के व्यक्तित्व के साथ बहुत से बड़े लोग खड़े नहीं हो सकते। यह मैं नहीं कहता हूं कि गांधी के साथ खड़े हो सकते थे। एम. एन. राय खड़े नहीं हो सकते थे, सुभाष खड़े नहीं हो सकते थे। लेकिन ये बहुत इक्के-दुक्के मामले थे। और गांधी इतने कुशल और समझदार आदमी थे कि सुभाष को भी खड़ा कर सकते थे। यह इतनी कठिनाई नहीं थी।
गांधी अगर सत्ता में गए होते, तो हिंदुस्तान की सत्ता की पूरी शक्ल बदल गई होती। नीचे से ऊपर तक के मुल्क का सारा ढांचा बदल गया होता। और सारे मुल्क से जिन लोगों को जाने का मौका मिलता, वह दूसरे तरह के लोग होते। वह टाइम बदल गया होता। और वह गांधी हिम्मत नहीं जुटा पाए, और हमने नहीं जुटाने दी हिंमत! सारे मुल्क को कंपेल करना था गांधी को कि हम आपको भेजेंगे, आपको जाना चाहिए। लेकिन सारा मुल्क खुश हुआ कि महात्मा हमारा कितना सच्चा है कि आ गई राजगद्दी हाथ, और लात मार दी! क्योंकि हजारों साल से यह माइंड है कि राजगद्दी को जो लात मार दे, वह बड़ा ऊंचा आदमी है, चाहे उसका कल कुछ भी हो।
तो मैं कहता हूं, मेरे लिए सारा चिंतन जो है बेसिक, वह यह कि पूरे माइंड का फ्रेम हमारा बदले। अच्छा आदमी राजनीति में पहुंचाना चाहिए। तो मेरी दृष्टि है कि गांव-गांव में नागरिक समिति होनी चाहिए, मोहल्ले- मोहल्ले में। काम बढ़े तो मैं चाहता हूं कि एक-एक गांव में नागरिक समिति हो। वह नागरिक समिति यह तय करे कि जो आदमी अपने तरफ से खड़ा हो जाएगा और कहे कि मैं अच्छा हूं, उम्मीदवार हूं, उसको हम वोट नहीं देंगे। इसको हम डिसक्वालीफिकेशन समझेंगे कि यह आदमी खुद अपने को कहता है कि मैं अच्छा उम्मीदवार हूं, मुझको भेजो! नागरिक समिति अच्छे लोगों सेप्रार्थना करेगी कि खडे हो जाएं, और आप खडे होते हैं तो नागरिक समिति आपका समर्थन करेगी। न हम दल की फिकर करना चाहते हैं कि तुम किस दल के हो। तुम अच्छे आदमी हो, तुम चिंतनशील हो, हम तुम्हें भेजना चाहते हैं। अगर पंद्रह बीस वर्ष मुल्क के कोने-कोने में नागरिक समितियां हैं, जो आदमियों को एप्रोच करे और कहे कि इस आदमी को हम खड़ा करना चाहते हैं, और इसको नागरिक समिति पूरा समर्थन देगी। और कोई दल का हम विचार नहीं करते--किसी का हो, कम्युनिस्ट हो, कांग्रेसी हो, सोशलिस्ट हो। आदमी अच्छा हो--यह हम अनुभव करते हैं, तो इसको हम भेजेंगे।
तो अच्छे आदमियों को बीस साल तक मुल्क से हमें भेजने की चेष्ठा करनी चाहिए। और एक फिकर करनी चाहिए कि अच्छा आदमी धीरे-धीरे बुरे आदमी को रिप्लेस कर दे। अभी यह हो रहा है कि अच्छे आदमी को बुरा आदमी रिप्लेस कर रहा है! बुरा आदमी एक दफा जब अच्छे आदमी को हटाता है तो उसका परिणाम यह होता है कि पांच साल बाद उससे भी बुरा आदमी उसको हटा सकेगा। उससे और बुरा आदमी हटा सकेगा। और हर पांच साल में हिंदुस्ताम और गुंडों के हाथ में चला

जाएगा, क्योंकि जो वहां बैठा है, उसको अब इससे बड़ा गुंडा ही हटा सकता है, इससे छोटा गुंडा नहीं हटा सकता। तो हर पांच साल में हिंदुस्तान पूरा गुंडाइज्म का मुल्क होगा, जहां अच्छे आदमी को तो जाने का सवाल नहीं है, जीना मुश्किल हो जाएगा। तो कुछ सचेत होना पड़ेगा और कुछ करना पड़ेगा। उसके सामने तो हम नागरिक समितियां खड़ी करेंगे। अच्छे आदमी को प्रोत्सान दें, अच्छे आदमी को हिंमत दें और इस बात की हवा पैदा करें कि यह अच्छे आदमी का कर्तव्य है कि वह राजनीति में जाए, यह ड्युटी का हिस्सा है।

प्रश्नकर्ताः लेकिन समय बहुत लगेगा?

उत्तरः यह कोई चिंता की बात नहीं है। जो हम कर सकें, वह हमें करना चाहिए। वह कितने दिन में हम कर सकते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई जिनको ठीक लगेगा, वे पकड़ लेंगे। हम उतरते चले जाएंगे। आदमी की उम्र बड़ी कीमती नहीं है बहुत। लेकिन आदमी अगर पचास साल भी हिंमत से सत्य के लिए कुछ करे तो अपनी जिंदगी में ही परिणाम देख सकता है।